तुलसी-पूर्व राम-साहित्य



तुलसी-पूर्व राम-साहित्य

[लखनऊ विश्वविद्यालय की पी० एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

डॉ० अमरपाल सिंह

रचना प्रकाशन
इलाहाबाद

प्रकाशक
रचना प्रकाशन
५ खुसरोबाग रोड
इलाहाबाद—१

●

प्रथम संस्करण १९६८

●

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

मूल्य अठारह रुपये

निवेदन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में तुलसी-पूर्व हिन्दी राम साहित्य का अध्ययन किया गया है। यह साहित्य अद्यावधि प्राय अज्ञात एवं अविवेचित रहा है। आचार्य शुक्ल ने गोस्वामी तुलसीदास का परिचय देते हुए अब से तीन दशक पूर्व लिखा था— यद्यपि रामानन्द जी की शिष्य-परम्परा के द्वारा देश के बड़े भाग में राम भक्ति की पुष्टि निरन्तर होती आ रही थी और भक्त लोग फुटकल पदों में राम की महिमा गाते आ रहे थे पर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस भक्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास की वाणी द्वारा स्फुरित हुआ। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने भाषाकाव्य की सारी पद्धतियों के बीच अपना चमत्कार दिखाया। आशय यह है कि रामभक्ति का वह परम विशद साहित्यिक सन्दर्भ इन्हीं भक्त शिरोमणि द्वारा संघटित हुआ जिससे हिन्दी काव्य की प्रौढ़ता का युग आरम्भ हुआ। रामभक्ति के इस परम विशद साहित्यिक सन्दर्भ के संघटन का श्रेय गोस्वामी तुलसीदास की अप्रतिम प्रतिभा को दिया गया है और इस महाकवि के महिमा प्रकाशन में हिन्दी समाज गर्व का अनुभव करता रहा है। प्रस्तुत लेखक का यह विनम्र मत है कि गोस्वामी जी की अनुपम कृतियों के उचित मूल्यांकन के लिए राम साहित्य के विकास क्रम एवं परम्पराओं का अनुसंधान परमावश्यक है। इस दृष्टि से पूर्वापर सन्दर्भ का समुचित आकलन अनिवार्य है। गोस्वामी जी ने अन्य कवियों के साथ 'जे प्राकृत कवि परम सयाने भाषा जिन्ह हरिचरित बखाने' का उल्लेख कर तथा उनकी वन्दना कर अपने पूर्ववर्ती कवियों एवं पूर्ववर्ती हिन्दी राम-साहित्य की ओर संकेत किया है। इस दिशा में खोज करना हमारा कर्तव्य है।

हिन्दी के इतिहासों ने तुलसी-पूर्व हिन्दी राम-साहित्य की सूचना नहीं दी है। आचार्य शुक्ल ने गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व में केवल ईश्वरदास की चर्चा की है। उन्होंने इससे अधिक और कोई सूचना नहीं दी। डा० दीनदयालु गुप्त को अष्टछाप के प्रथम चार कवियों से पहले राम काव्य परम्परा में आने वाले किसी ग्रंथ का पता अभी तक नहीं मिला था। डा० राम निरंजन पाण्डेय ने तुलसीतर हिन्दी के रामभक्त कवियों में सूर का स्थान प्राय सर्वप्रथम माना है। इधर डा० माताप्रसाद गुप्त और डा० बुल्के ने इस विषय में कतिपय अति संक्षिप्त सूचनाएँ दी हैं। इस प्रकार तुलसी के पूर्व का हिन्दी राम-साहित्य अब तक दृष्टिगत नहीं

हो सका। इस कारण संस्कृत प्राकृत में उपलब्ध साहित्य के उपरान्त राम-साहित्य की गौरवगाथा परम्परा तुलसीदास जी के आविर्भाव के पूर्व अनिश्चित ज्ञात पड़ता थी। इस भ्रान्ति शृंखला को तोड़ने तथा तुलसी पूर्व के लगभग आठ सौ वर्षों में रचित राम-साहित्य पर प्रकाश डालने का कार्य शेष बना रहा। प्रस्तुत शोध प्रबंध में इस अवधि में उपलब्ध राम साहित्य की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास इस आशा से किया गया है कि इसके पश्चात् विद्वानों का ध्यान इस शेष कार्य की ओर आकर्षित होगा।

तुलसी पूर्व हिन्दी राम साहित्य प्रायः अनुपलब्ध है। जो सामग्री मिलती भी है वह अधिकांशतः अप्रकाशित है। सामग्री सम्बन्धी यह कठिनाई दुर्भाग्य सिद्ध हुई है। गत वर्षों में हुए शोध-कार्यों तथा खोज के फलस्वरूप कतिपय ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं किन्तु आचार्यपीठों, शास्त्र भण्डारों तथा निजी संग्रहों में अभी कितनी सामग्री भरी पड़ी होगी इसकी कल्पना करना भी कठिन है। हस्तलेखों तथा अन्य सूत्रों से मिलनेवाली सामग्री की प्रामाणिकता तथा उसका काल निर्धारण एक अत्यन्त कठिन समस्या है। आगे और कार्य होने पर इन समस्याओं का निराकरण हो सकेगा ऐसी मुझे आशा है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध नौ अध्यायों में विभाजित है। सुविधा की दृष्टि से रामचरित मानस के रचनाकाल संवत् १६३१ के पूर्व रचित ग्रन्थों को तुलसी-पूर्व हिन्दी राम साहित्य के अन्तर्गत लिया गया है।

प्रथम अध्याय में आदिकाल से लेकर ईसा की प्रथम सहस्राब्दी तक उपलब्ध राम साहित्य का संक्षेप में विवेचन किया गया है। इस साहित्य पर विचार हिन्दी राम साहित्य की पृष्ठभूमि के रूप में किया गया है। रामकथा के पात्रों के नामों का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। भारतीय परंपरा वेदों में रामकथा निहित मानती रही है किंतु आधुनिक शोधकर्ता वैदिक साहित्य में रामकथा का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। राम साहित्य की उत्पत्ति परम्परानुसार इक्ष्वाकु के वंशगाथा राजवंश में आख्यानों के रूप में हुई थी। महर्षि वाल्मीकि ने सर्वप्रथम इन आख्यानों को संकलित कर अपने महाकाव्य की रचना की थी। महर्षि वाल्मीकि की आदि रचना का समय विवादग्रस्त है किन्तु उपलब्ध सामग्री तथा आनुषंगिक प्रमाणों के आधार पर उसका रचनाकाल ०० ई० पूर्व से पहले का माना जाना चाहिए। रचनाकार की भांति आदिकाव्य का वर्तमान स्वरूप भी विवादग्रस्त है। विद्वानों ने इस महाकाव्य में प्रक्षेपों की कल्पना की है और बाल काण्ड उत्तरकाण्ड तथा अवतार निरूपण सम्बन्धी स्थलों को प्रक्षिप्त माना है। उनके तर्कों पर संक्षेप में विचार किया गया है। आदि काव्य में सर्वप्रथम सम्पूर्ण रामचरित आदर्श चरित के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परवर्ती महाभारत में

भी रामकथा मिलती है किन्तु उसका आधार वाल्मीकि रामायण ही है। वाल्मीकि रामायण और महाभारत के पश्चात् संस्कृत साहित्य में विशाल राम साहित्य की रचना हुई। पुराण साहित्य में रामकथा का प्रचार किया गया है। योग वासिष्ठ रामायण अध्यात्म रामायण आदि साम्प्रदायिक रामायणों की रचना हुई। काव्य-नाटक साहित्य में कालिदास के रघुवंश तथा भास के प्रतिमा और अभिषेक नाटकों से लेकर परवर्तीकाल में विपुल राम साहित्य की रचना की गयी। यह समस्त साहित्य अपूर्व काव्यश्री सम्पन्न है। इस साहित्य में रामकथा के स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया गया है। रामकथा की लोकप्रियता से प्रभावित होकर बौद्धों तथा जैनियों ने भी इसे अपनाया। बौद्ध साहित्य में तीन जातकों में रामकथा मिलती है। उनका आधार ब्राह्मण रामकथा है किन्तु उनमें विभिन्नता पायी जाती है। इसी प्रकार धार्मिक आग्रह के कारण रामकथा को जैन साहित्य में परिवर्तित किया गया और कथा को जैन धर्म के अनुकूल बनाया गया। जैनाचार्यों ने प्राचीन काल से राम साहित्य का प्रणयन किया है। ईसा की प्रथम शताब्दी में विमलसूरि से लेकर आधुनिक काल तक जैन कवियों ने पुष्कल राम-साहित्य की रचना की है जिसमें विस्तृत रामकथा मिलती है। भक्ति के उदय के पश्चात् संस्कृत राम-साहित्य में रामकथा में किंचित परिवर्तन भक्ति भावना की तुष्टि के लिए किये गये। ये परवर्ती साहित्य में लक्षित होते हैं। यह समस्त सामग्री हिन्दी राम-कवियों के सामने थी। पृष्ठभूमि के रूप में उपलब्ध सामग्री के विवेचन में डा० बुल्के तथा अन्य विद्वानों के शोधकार्य से बड़ी सहायता मिली है, लेखक उनके प्रति आभार प्रकट करता है।

इस संक्षिप्त सिंहावलोकन के अंतर्गत रामभक्ति के विकास तथा शिल्प में रामकथा पर विचार किया गया है। रामभक्ति का सम्बन्ध अवतारवाद की भावना से है। इस कारण अवतारवाद के विकास तथा आलवारों तक भक्ति के विकास पर दृष्टिपात किया गया है। भक्ति आन्दोलन तथा मध्यकालीन हिन्दी भक्ति-साहित्य का अभिन्न सम्बन्ध है। इसी प्रकार भारतीय शिल्प में रामकथा मिलती है। गुप्तकालीन शिल्प तथा परवर्तीकाल में निर्मित मन्दिरों, मूर्तियों में रामकथा का अंकन हुआ है। रामकथा के इस पक्ष पर संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय में जैन द्वारा अपभ्रंश में रचित राम-साहित्य का विवेचन किया गया है। अपभ्रंश में सात महाकवियों के राम-साहित्य का पता चलता है। अपभ्रंश का सर्वप्रथम महाकाव्य स्वयंभू कृत पउम चरिउ है जिसमें जैन धर्म के अनुसार रामकथा का विस्तृत वर्णन किया गया है। स्वयंभू आठवीं शताब्दी में

वतमान थ। उन्होंने अपनी रचना विमल सूरि की परम्परा म की है। दसवीं शताब्दी म महाकवि पुष्पदन्त ने महापुराण की रचना की जो आदि पुराण और उत्तर पुराण दो खण्डो म विभक्त है। उत्तरपुराण के अन्तगत ग्यारह सन्धियो म रामकथा का वणन किया गया है जिसे पउम चरिउ अथवा पद्म-चरित कहा जाता है। पुष्पदन्त न रामकथा की रचना गणभद्राचाय की परम्परा म की है। तीसरे जन महाकवि रइधू ने पद्मपुराण की रचना की है। यह ग्रथ अप्रकाशित है। रइधू विक्रम की पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त म वतमान थ। इन तीनो महाकवियो की रचनाओ पर सक्षेप म प्रकाश डाला गया है।

ततीय अध्याय म दशावतार वणन परम्परा तथा हिन्दी म इस विषय पर उपलब्ध रासो म दशावतार वणन पर विचार किया गया है। दशावतार वणन की परम्परा ईसा का प्रथम सहस्राब्दी के मध्य म मिलती है। इसके अन्तगत अवतारो की कथा तो का सक्षेप म वणन किया गया है। इस परम्परा के अन्तगत मिलनेवाली सामग्री का सकलन लखक ने विभिन्न सूत्रो से किया है। ११ वी शताब्दी म रचित क्षमेन्द्र का दशावतार चरितम इस परम्परा की विशिष्ट रचना है। इन अवतार वणनो म अन्य अवतारो की कथा के साथ रामकथा भी मिलती है। रासो क द्वितीय समय म जिसे दशावतार वणन के कारण अन्य दसम कहा गया है रामकथा दी गयी है। इसम राम रावण युद्ध का वणन विस्तार स किया गया है। अन्य प्रसगो का सक्षेप म निर्देश किया गया है। अवतार वणन क रूप म रामकथा का वणन परवर्तीकाल म भी मिलता है। इस दृष्टि से रासो का अन्य दसम तथा उसके अन्तगत आयी रामकथा महत्वपूण है।

चतुथ अध्याय म मध्ययुगीन धार्मिक चेतना क नेता स्वामी रामानन्द के जीवनवत्त उनकी रामभक्ति तथा उनके नाम से मिलने वाली हिन्दी रचनाओ का अध्ययन किया गया है। स्वामी रामानन्द का स्थितिकाल विवादग्रस्त है। प्रस्तुत लेखक न सम्प्रदाय म मान्य ग्रथ अगस्त्य सहिता क आधार पर रामानन्द जी का स्थितिकाल विक्रम सवत १३५६ से लेकर १४६७ तक माना है। उनके जीवन वत्त क सबध म प्रामाणिक सामग्री का अभाव है। अगस्त्य सहिता तथा अन्य सूत्रो म मिलने वाली सामग्री का उल्लेख इस सबध म किया गया है। नाभादास के साक्ष्य पर तथा स्वामी जी के दो प्रामाणिक ग्रथ वष्णवमताब्जभास्कर तथा श्री रामाचन पद्धति क आधार पर उनकी शिष्य परम्परा रामभक्ति, सबधी सिद्धान्त तथा रामभक्ति क प्रचार क सबध म विचार किया गया है। स्वामी रामानन्द क नाम म अब तक जितनी हिन्दी रचनाओ की सूचना मिली है उनका उल्लेख इस परिच्छेद म किया गया है और उन पर विचार किया गया है। इन रचनाओ

की प्रामाणिकता विवादग्रस्त है। प्रस्तुत लेखक ने हनुमान-स्तुति सम्बन्धी पद को छोड़ शेष रचनाओं को प्रामाणिक नहीं स्वीकार किया है। इनमें से कई रचनाएँ स्पष्टतः स्वामी रामानन्द कृत नहीं हैं। रचनाओं के जब तक प्राचीन हस्तलेख न मिल जायें तब तक उनकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में निभ्रान्त मत व्यक्त नहीं किया जा सकता। भक्ति आन्दोलन के प्रसार तथा हिन्दी भक्ति साहित्य के निर्माण में स्वामी रामानन्द के अमूल्य योग का उल्लेख तथा मूल्यांकन इस परिच्छेद में किया गया है।

पाँचवें अध्याय में आदिकाव्य के भाषा रूपान्तर की परम्परा तथा गोस्वामी विष्णुदास कृत भाषा वाल्मीकि रामायण का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। वाल्मीकि रामायण महाभारत तथा श्रीमद्भागवत का भाषा रूपान्तर प्रस्तुत करने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। महाभारत तथा श्रीमद्भागवत के हिन्दी रूपान्तर उपलब्ध हैं। वाल्मीकि रामायण का भाषा रूपान्तर पहले-पहल गोस्वामी विष्णुदासकृत भाषा वाल्मीकि रामायण में मिलता है। इस ग्रन्थ की एकमात्र उपलब्ध हस्तलेख म्युनिसिपल संग्रहालय इलाहाबाद में सुरक्षित है। इस ग्रन्थ में वाल्मीकि रामायण का संक्षिप्त रूपान्तर तीन काण्डों में किया गया है। उत्तरकाण्ड अपूर्ण है। गोस्वामी विष्णुदास विक्रम की १५ वीं शताब्दी के अन्त में वर्तमान थे। इस रचना की अन्य प्रतियाँ मिल जाने पर इसका स्वरूप निश्चित किया जा सकेगा। गोस्वामी विष्णुदास ने तुलसीदास जी से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व महत्वपूर्ण रचनाएं की हैं हिन्दी साहित्य के इतिहास में उन्हें गौरवपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

छठे अध्याय में दास्य भक्ति के विकास तथा ईश्वरदास की रचनाओं का अध्ययन किया गया है। स्वामी रामानन्द ने विक्रम की १४ वीं १५ वीं शताब्दी में राम की दास्य भक्ति का प्रचार किया था। इस दास्य भक्ति का हिन्दी राम साहित्य में प्रथम साक्षात्कार ईश्वरदास की रचनाओं में होता है। ईश्वरदास की रामभक्ति सम्बन्धी तीन रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं। ये हैं—भरत विलाप अंगद पैज और राम जन्म। ईश्वरदास की एक अन्य रचना सत्यवती कथा है। रामचरित सम्बन्धी इन रचनाओं में जिस दास्य भक्ति का पल्लवन हुआ है उसका विशुद्ध विकास रामचरित मानस तथा तुलसीदास जी की अन्य रचनाओं में मिलता है। ईश्वरदास की रचनाएं गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व दास्य भक्ति परंपरा में कड़ी के रूप में दृष्टिगत होती हैं। ईश्वरदास ने सत्यवती कथा का रचनाकाल संवत् १५५८ दिया है। इस प्रकार वे विक्रम की १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वर्तमान थे। इनकी रचनाएं अत्यन्त

महत्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में ईश्वरदास को समुचित स्थान दिया जाना चाहिए।

सातवें अध्याय में महात्मा सूरदास द्वारा रचित रामचरित का अध्ययन किया गया है। श्रीमद्भागवत की योजना का अनुसरण करते हुए सूरदास जी ने नवम स्कन्ध में रामचरित का वर्णन किया है। सूरदास का वर्णन भागवत के वर्णन से भिन्न एवं नितान्त मौलिक है। भागवत में नवम स्कन्ध के दो अध्यायों में रामकथा को संक्षेप में निर्गुण राम की महिमा का वर्णन करने के लिए दिया गया है। किन्तु सूरदास ने रामकथा विस्तार से कही है। उन्होंने भागवत के अतिरिक्त अन्य सूत्रों से सामग्री ग्रहण की है तथा मार्मिक प्रसंगों की उद्भावना में विलक्षण कुशलता का परिचय दिया है। बाललीला, सीता स्वयंवर, केवट प्रसंग, पुरवधू प्रसंग, जलनिधि संतरण, अंगद प्रतिज्ञा, संजीवनी लाते समय हनुमान का अयोध्या में उतरना आदि प्रसंगों का सरस एवं मौलिक वर्णन सूरदास ने किया है। प्रस्तुत लेखक ने राम साहित्य में इन कथा प्रसंगों का विकास विविध सन्दर्भों में सूचित किया है। सूरदास ने रामचरित का वर्णन अभेदोपासना की दृष्टि से किया है। गेय पदों में रामकथा का वर्णन सर्वप्रथम सूरसागर में मिलता है। सूर का राम चरित वर्णन अब तक अविवेचित रहा है। हिन्दी राम साहित्य में सूरदास के सर्वथा उल्लेखनीय योग का विवेचन इस परिच्छेद में लेखक ने किया है।

आठवें अध्याय में रसिक परम्परा में निर्मित राम साहित्य का अध्ययन किया गया है। भक्तों का एक वर्ग प्राचीन काल से रसिक भाव से सीताराम की भक्ति तथा सेवा का विधान करता आ रहा है। ये भक्त अपने इष्ट की मधुर लीलाओं का ध्यान करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास के समय में नाभादास तथा उनके पूर्व अग्रदास की भक्ति-पद्धति रसिक भाव की थी। इस सम्प्रदाय के आरम्भ के राम भक्तों की हिन्दी रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं। सर्वप्रथम स्वामी अग्रदास की रचनाएं मिलती हैं। इनकी रामभक्ति सम्बन्धी मुख्य रचनाएं ध्यानमंजरी तथा पदावली प्रकाश में आई हैं। साहित्यिक दृष्टि से ये अत्यन्त प्रौढ़ रचनाएं हैं। इनमें राम के दिव्य गुण-सौन्दर्य तथा उनके मधुर चरित का सरस वर्णन किया गया है। इन रचनाओं की संक्षेप में समीक्षा की गयी है। तुलसीदास जी के परवर्ती काल में रसिक रामभक्तों ने विशाल परिमाण में राम साहित्य की रचना की है। इन भक्तों द्वारा रचित राम साहित्य अधिकांशतः अप्रकाशित है। पिछले दशक में शोधकर्ताओं ने रसिक भक्तों की रचनाओं का नये सिरे से मूल्यांकन किया है। तुलसीपूर्व काल में मिलने वाली सामग्री तथा रसिक भक्ति पद्धति का संक्षेप में इस परिच्छेद में उल्लेख किया गया है।

नवें अध्याय म अल्पज्ञात रामकविया तथा उनकी रचनाओ के सबध म सूचनाए दी गयी हैं। य सूचनाए खोज रिपार्टो तथा अय सूत्रो से सकलित की गयी ह। इन कविया क सम्बध म अधिक सूचनाएँ उपलब्ध नही है तथा उनकी रचनाए अप्रकाशित हैं। इनम जन कविया का उल्लेख महत्वपूण है। अनेक जन कविया की रामचरित सम्बधी रचनाओ की सूचना मिलती है। सूचनाए एकत्र करन म श्री अगरचद नाहटा से लेखक को बहुत सहायता मिली । उन्होंने जन कविया तथा राजस्थानी म राम साहित्य सम्बधी सामग्री एव सूचनाए प्रदान की। इस अध्याय म कतिपय अय हिन्दी कविया तथा हिन्दीतर प्रातो क राम साहित्य क प्रणेताओ का भी उल्लेख किया गया है। अत म तुलसी-पूव हिदी राम साहित्य क अतगत आनेवाली कतिपय रचनाए परिशिष्ट म हस्तलेखा से सकलित कर दी गयी है।

तुलसी-पूव राम साहित्य पर काय करने की प्रेरणा मुझे अपन गुरु हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एव कला सकाय के अधिष्ठाता श्रद्धेय डा० दीनदयालु गुप्त से मिली थी। उनका स्नेह एव सत्परामश मेरा सबल रहा है। प्रस्तुत शोध प्रबध मेरे गुरु एव निर्देशक डा० विपिनविहारी त्रिवेदी की कृपा एव मागदशन का ही फल है। अपने इन गुरुजनो के प्रति आभार प्रकाशन अक्षम्य औपचारिकता होगी।

इस विषय पर काय करते समय श्री अगरचद नाहटा डा० भगवती प्रसाद सिंह, बडौदा विश्वविद्यालय के ओरियटल इन्स्टीट्यूट के नियामक प्रा० श्री० ज० सान्डेसरा, डा० बल्देव प्रसाद मिश्र आदि विद्वानो न परामश एव सामग्री निर्देशन म अनुग्रहीत किया। लेखक इनके प्रति आभार प्रकट करता है। अन्त म मुझे आशा ही नहीं वरन पूण विश्वास ह कि इस प्रयास क प्रकाश म आ जाने पर अय सभी गुरुजन अपना बहुमूल्य सहयोग देकर मुझे अनुग्रहीत करेंगे। इस विश्वास के साथ यह प्रबध प्रस्तुत किया जा रहा है।

अक्तूबर, १९६४ —अमरपाल सिंह

विषय-सूची

तुलसी-पूर्व राम-साहित्य

अध्याय १

राम-साहित्य ईसा की प्रथम सहस्राब्दी तक—संक्षिप्त विवेचन

(क) रामकथा का उद्गम एवं क्रमिक विकास

रामकथा की उत्पत्ति इक्ष्वाकु के वंशवर्ती राजवंश में हुई थी। इसकी रचना इस वंश के सूतों द्वारा आरम्भ में आख्यानों के रूप में हुई थी। वाल्मीकि रामायण में कथा के मूलस्रोत के सम्बन्ध में चर्चा है जिसमें कथा आरम्भ करते हुए कवि कहते हैं कि वैवस्वत मनु से लेकर अब तक जिन जयशाली राजाओं के अधिकार में समग्र पृथिवी थी उन इक्ष्वाकु वंशी महात्मा राजाओं के वंश में रामायण नाम का महान आख्यान उत्पन्न हुआ।[1] सूतों द्वारा जिन आख्यानों की सृष्टि हुई थी वे अब उपलब्ध नहीं हैं। निश्चित आधार के अभाव में उनका रचना काल निर्धारित करना भी कठिन है किन्तु इतना निर्विवाद है कि इन आख्यानों की उत्पत्ति ईसा की छठी शताब्दी के पूर्व हो चुकी थी। राम तथा इक्ष्वाकु वंश के अन्य राजाओं के सम्बन्ध में ये स्फुट आख्यान दीर्घकाल तक समाज में प्रचलित रहे। आगे चल कर जब इन आख्यानों को संकलित कर कथासूत्र में ग्रथित किया गया तब रामायण की उत्पत्ति हुई। स्फुट आख्यान-काव्य तथा रामायण आदि रूप में अब उपलब्ध नहीं है। रामकथा के प्रारम्भिक स्वरूप तथा उसके क्रमिक विकास के सम्यक् ज्ञान के लिए प्राचीन साहित्य का अनुशीलन अनिवार्य है। सर्वप्रथम वैदिक साहित्य में रामकथा सम्बन्धी जो उल्लेख आये हैं उन पर विचार करना होगा।

वैदिक साहित्य में रामकथा— वैदिक साहित्य में रामकथा के पात्रों के नाम आये हैं। ऋग्वेद में धनवान और प्रतापवान राजा इक्ष्वाकु का (१० ६ ४)

१—सर्वा पूर्वमियं येषामासीत्कृत्स्ना वसुन्धरा। प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम्। येषां स सगरो नाम सागरो येन खानितः। षष्टिः पुत्रसहस्राणि यं यान्तं पर्यवारयन्।
इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्। महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्॥ (वा० रा० १ १)।

उल्लेख हुआ है। अथववद म भी इक्ष्वाकु का नाम एक बार (१९ ३९ ९) आया जिससे पता चलता है कि उस समय इ वाकु वार क रूप म प्रसिद्ध थ।

दशरथ का नाम एक दान स्तुति म अन्य राजाओं के नाम के साथ ऋग्वेद म (१ १२६ ४) आया है। इस स्थल पर कहा गया है कि राजा दशरथ क चालीस भूरे रग के घोड़ एक हजार घोड़ों के दल का नतत्व कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त दशरथ नाम का और कोई उल्लेख नहा मिलता।

वदिक साहित्य म राम का नाम कई स्थलों पर आया है किन्तु इन उल्लेखों म भिन्न व्यक्ति लक्षित हुए हैं। तत्तिराय आरण्यक म (५ ८ १२) राम शब्द का उल्लेख पुत्र क अथ म हुआ है। ऋग्वद (१० ९३ १४) म राम का नाम अन्य राजाओं-दुःशाम पृथवान और वन क साथ आया है जिसस उनक राजा होन का सकेत मिलता है। एक राम मार्गवेय की चर्चा एतरय ब्राह्मण (७ २७ ३४) म आयी है जो ब्राह्मण थे और जनमेजय के समकालीन थ। इसक अतिरिक्त आचाय क रूप म शतपथ ब्राह्मण (४ ६ १ ७) म राम औपतस्विनि और जमि नीय उपनिषद ब्राह्मण (३ ७ ३ २) म राम क्रातुजातेय का उल्लेख हुआ ह। ये सभी उल्लेख भिन्न व्यक्तियों को लक्ष्य करके किय गये जान पडते है। राम नाम वदिक साहित्य म प्रचलित था यह सूचना इन उल्लेखों स मिलती है।

जनक का उल्लेख अपेक्षाकृत वदिक साहित्य म अधिक हुआ है। यह उल्लेख यज्ञादि के विवेचन क सम्बन्ध म कृष्णयजर्वेदीय तत्तिरीय ब्राह्मण (३ १० ९) शतपथ ब्राह्मण (११ ३ १ २ ४) जमिनि ब्राह्मण (१ १९) बृहदारण्यक उपनिषद (३ १ १ २) म हुआ है। जनक और याज्ञवल्क्य समकालीन बताये गये हैं और ज्ञान चर्चा म इनका साथ होने और इनके वार्तालाप का उल्लेख किया गया है। अश्वपति कक्य के सम्बन्ध म शतपथ ब्राह्मण (१० ६ १ २) और छान्दोग्य उपनिषद (५ ११ ४) म उल्लेख आया है।

वदिक साहित्य म सर्वाधिक उल्लेख सीता का हुआ है। इनम स एक सीता कृषि की अधिष्ठात्री दवी हैं और दूसरी सीता सूर्यपुत्री सीता सावित्री है। सीता सावित्री और सोम राजा का उपाख्यान कृष्ण यजर्वेद क तत्तिराय ब्राह्मण (२ ३ १) म मिलता है। इस उपाख्यान का प्रत्यक्ष सम्बन्ध रामायण की सीता म नहा है। लाङ्गल पद्धति के अथ म सीता का उल्लेख वदिक साहित्य म अनक स्थलों पर हुआ है किन्तु इसम व्यक्तित्व का आरोप नहा हुआ ह। कृषि की अधि ष्ठात्री क रूप म सीता का उल्लेख कई बार हुआ ह। सवप्रथम ऋग्वेद (४ ४७) म कृषि की अधिष्ठात्री सीता स प्रार्थना की गयी है। यहाँ सीता धरती की उवरा शक्ति की प्रतीक है और इसम दवत्व की कल्पना की गयी है। अथववेद (

१७) और यजुर्वेद (४, २ ५) में भी इसी देवी की प्रार्थना की गयी है। इसके अतिरिक्त गृह्यसूत्रों में सीता की प्रार्थना विविध अवसरों के लिए आया है। वैदिक साहित्य में अयोध्या, सरयू, गंगा, यमुना आदि का भी उल्लेख हुआ है।

डा० बुल्के ने वैदिक साहित्य में रामकथा का अभाव प्रतिपादित करते हुए लिखा है—वैदिक रचनाओं में रामायण के एकाध पात्रों के नाम अवश्य मिलते हैं लेकिन न तो इनके पारस्परिक सम्बन्ध की कोई सूचना दी गयी है और न इनके विषय में किसी तरह रामायण की कथावस्तु का किंचित भी निर्देश किया गया है। जनक और सीता का बार-बार उल्लेख होने पर भी दोनों का पिता पुत्री सम्बन्ध कहीं भी निर्दिष्ट नहीं हुआ है। अतः वैदिक काल में रामायण की रचना हुई थी अथवा रामकथा सम्बन्धी गाथाएँ प्रसिद्ध हो चुकी थीं, इसका निर्देश समस्त विस्तृत वैदिक साहित्य में कहीं भी नहीं पाया जाता। अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम रामायण के पात्रों के नाम से मिलते हैं इससे इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये नाम प्राचीन काल में भी प्रचलित थे।[1]

परम्परागत भारतीय मत इससे भिन्न रहा है। ज्ञान और परम्परा के मूल स्रोत वेद ही माने गए हैं। इसी विश्वास और मान्यता के आधार पर नीलकंठ ने मन्त्र रामायण की रचना की थी। इस ग्रन्थ में नीलकंठ ने वैदिक मन्त्रों का एक संग्रह कर बालकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक की रामकथा को मन्त्रों में प्रतिपादित किया है। रामकथा का वेदमूलत्व प्रतिपादित करने का यह प्राचीनतम प्रयास है। वेदों के परवर्ती साहित्य में भी कोसल जनपद, रामकथा से संबंधित नगर, नदी तथा भूखण्ड के वर्णन मिलते हैं जिनमें रामकथा को सुदृढ़ ऐतिहासिक आधार मिल जाता है। वाल्मीकि रामायण के अध्ययन से भी आदिकाव्य की कथावस्तु की ऐतिहासिकता में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

वाल्मीकि रामायण—वाल्मीकि रामायण रामकथा की प्राचीनतम रचना है। प्राचीन काल से ही वाल्मीकि आदिकवि माने गये हैं और वाल्मीकि रामायण को आदिकाव्य कहा गया है।[2] वाल्मीकि ने सर्वप्रथम स्फुट आख्यानों को सङ्कलित कर कथासूत्र में ग्रथित किया और विस्तृत महाकाव्य की रचना की।

वाल्मीकि रामायण का रचनाकाल अनिश्चित है। इस सम्बन्ध में विद्वानों ने भिन्न भिन्न मत प्रकट किये हैं। वाल्मीकि रामायण में ग्रन्थ के रचना-काल के

१—विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—डा० बुल्के: रामकथा पृ० २४-२६।
२—आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्। (वा० रा० ६ १३१ १०७)।

सम्बन्ध में कोई निर्देश नहीं है। अन्य किसी प्राचीन रचना में भी आदिकाव्य के रचनाकाल के सम्बन्ध में उल्लेख नहीं मिलता। प्रचलित रामायण तथा जन श्रुति से वाल्मीकि के कथानायक राम के समकालीन होने का संकेत मिलता है और कथा की रचना भी उसी समय की बतायी गयी है। रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों ने आनुषंगिक सामग्री पर विचार किया है और अपने अपने मत निर्धारित किये हैं।

रामायण के रचनाकाल के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने पहले अपने मत दिये। पश्चिम के देशों में लगभग एक शताब्दी पूर्व रामायण की चर्चा आरम्भ हो गयी थी और विद्वानों का ध्यान इसके रचनाकाल तथा अन्य विषयों की ओर गया था। इन विद्वानों ने रचनाकाल के सम्बन्ध में जो मत व्यक्त किये हैं उनमें समय का बड़ा अन्तर दिखाया गया है। दूसरी बात यह है कि ये सभी मत तर्काश्रित हैं। ए० श्लेगल[1] तथा जी० गारेसियो[2] ने रामायण का रचनाकाल क्रमशः ११वीं शताब्दी ई० पू० और १२वीं शताब्दी ई० पू० माना है। एच० याकोबी[3] प्रचलित रामायण का रचनाकाल दूसरी शताब्दी ई० मानते हैं। एम० विंटरनित्स भी प्रायः यही समय ठीक मानते हैं। रामायण का रचनाकाल निर्धारित करने में विद्वान रामायण के दो रूपों की कल्पना करते हैं। एक रूप वह जिसकी वाल्मीकि ने रचना की थी इसे वाल्मीकि की प्रामाणिक रचना अथवा आदि रामायण कहा गया है। दूसरा रूप वाल्मीकि रामायण का प्रचलित रूप है जो लम्बी अवधि के परिवर्द्धनों के अनन्तर प्राप्त हुआ है। इन दोनों रूपों के लिए भिन्न भिन्न समय निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। ए० बी० कीथ ने आदि रामायण की रचना चौथी शताब्दी ई० पू० में मानी है। एम० विंटरनित्स का मत है कि आदि रामायण की रचना तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व में हुई। डा० बुल्के इस मत से सहमत हैं।[6] पाश्चात्य विद्वानों के मतों में विभिन्नता अधिक है इनके विवेचन से एक सामान्य मत निश्चित नहीं हो सका है।

१—ए० श्लेगल—जर्मन ओरियंटल जर्नल भाग ।
२—जी० गारेसियो—रामायण भाग १० भूमिका।
—एच० याकोबी—दास रामायण पृ० १ ०।
४—एम० विंटरनित्स—हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर भाग १ पृ० ५१७।
५—ए० बी० कीथ—दि एज आफ दि रामायण—ज० रा० ए० सो० १९१५ १८ २८।
६—डा० बुल्के—रामकथा—पृ० ८।

वाल्मीकि रामायण के रचना काल पर विचार करते समय ग्रन्थ में आये कुछ तथ्यों तथा बहिःसाक्ष्यों पर विचार कर लेना चाहिए। रामायण में बुद्ध अथवा बौद्ध धर्म का उल्लेख नहीं है, अतएव इसकी रचना पाँचवीं शताब्दी ई० पू० में हुई होगी। प्रथम शताब्दी ई० पूर्व में कालिदास ने रघुवंश की रचना की थी। वाल्मीकि की काव्य परम्परा में रचित यह प्रथम महाकाव्य है। अतएव वाल्मीकि रामायण का वर्तमान रूप प्रथम शताब्दी ई० पू० का है। 'कल्पना मण्डितिका' में बौद्ध कवि कुमारलात (१०० ई०) ने जन साधारण में वाल्मीकि रामायण के पाठ का उल्लेख किया है। जैन-कवि विमलसूरि ने महावीर की मृत्यु के ५३० वर्ष पश्चात् पउम चरिय की रचना की थी। निश्चित तिथियुक्त यह प्रथम रचना है। विमलसूरि वाल्मीकि रामायण से परिचित थे और उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि उनके समय में समाज में ब्राह्मण रामकथा प्रचलित थी। महाकवि अश्वघोष (७८ ई०) ने अपने बुद्ध चरित में रामायण के आधार पर कई प्रसंगों का वर्णन किया है। महाभारत का वर्तमान रूप सन् ईसा के आरम्भ का माना जाता है। महाभारत रामकथा से पूर्णतः परिचित है। उसमें वाल्मीकि और रामायण का उल्लेख हुआ है और रामकथा भी दी गयी है। रामचन्द्र से सम्बन्धित स्थान महाभारत में तीर्थ माने गये हैं। वन पर्व ८४।७० में गोप्रतार तीर्थ माना गया है जो आजकल गुप्तारघाट के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार वन पर्व ८५।६५ में शृंगवेरपुर को तीर्थ माना गया है। रामचन्द्र से सम्बंधित स्थानों को तीर्थों का रूप दीर्घकाल में प्राप्त हुआ होगा। पाणिनि ने वाल्मीकि अथवा रामायण का उल्लेख नहीं किया है किन्तु सूत्रों में कौशल्या (५ १ १५) शूर्पणखा (६ २,१२०) कैकेयी (७ ३ २) का संकेत मिलता है। अतः पाणिनि के समय में रामकथा के प्रचार का संकेत मिलता है।

अन्तःसाक्ष्य के आधार पर रामायण-कालीन स्थिति पर विचार किया जा सकता है। रामायण में चित्रकूट के दक्षिण का देश विशाल अरण्यों के रूप में चित्रित किया गया है। यह स्थिति उस समय की सम्भव है जब दक्षिण में आर्य सभ्यता का प्रवेश नहीं हुआ था।

विश्वामित्र के साथ धनुष-यज्ञ में जाते समय राम ने गंगा पार किया था और गंगा शोण संगम प्रदेश से होकर गये थे। इस प्रदेश में ५०० ई० पूर्व में मगध नरेश अजातशत्रु ने पाटलिपुत्र नगर बसाया था। रामायण में पाटलिपुत्र का उल्लेख नहीं है। इससे जान पड़ता है कि रामायण का वर्णन पाटलिपुत्र नगर की स्थापना से पूर्व का है। इसी प्रकार रामायण में राम के गंगा पार कर विशाला नगरी में पहुँचने का उल्लेख मिलता है (बालकाण्ड ४ ८)। विशाला के राजा सुमति

ने विश्वामित्र सहित राम का स्वागत किया था। उस समय मिथिला और विशाला दो स्वतंत्र राज्य थे। आगे चल कर बुद्ध के समय में दोनों राज्य मिल कर एक हो गये और वैशाली के नाम से प्रसिद्ध थे। रामायण में वर्णित स्थिति बुद्ध पूर्व की है अतएव रामायण का समय बुद्ध पूर्व का माना जाना चाहिए। बुद्ध के समय में कोसल की राजधानी श्रावस्ती थी और वहाँ के राजा प्रसेनजित थे। रामायण में श्रावस्ती का उल्लेख नहीं है। इन तथ्यों के आधार पर रामायण की रचना काल ४०० ई० पूर्व से पहले मानना उचित होगा। इतना निश्चित है कि वाल्मीकि रामायण का वर्तमान रूप सन् ईस्वी के आरम्भ के पूर्व देश के विस्तृत भाग में प्रचलित हो चुका था।

प्रचलित रामायण के तीन पाठ मिलते हैं—दाक्षिणात्य पाठ, गौडीय पाठ और पश्चिमोत्तरीय पाठ। इन तीनों पाठों में विभिन्नता पायी जाती है। इन पाठों में प्रत्येक में ऐसे स्थल मिलते हैं जो दूसरे पाठों में नहीं पाये जाते। आदि काव्य प्रारम्भ में मौखिक रूप से प्रचलित रहा और आगे चल कर विभिन्न प्रदेशों में लिपिबद्ध किया गया। पाठभेद का यह मुख्य कारण रहा है। विद्वानों ने पाठ भेद के कारण तर्क प्रस्तुत किया है कि वाल्मीकि ने जिस आदि रामायण की रचना की थी उसमें कालान्तर में परिवर्द्धन हुआ। यह परिवर्द्धन मुख्यतः बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड तथा अवतार सम्बन्धी स्थलों के रूप में अनुमान किया गया है। आदि रामायण का रूप निश्चित करने के लिए सामग्री एवं आधार का अभाव है। यह द्रष्टव्य है कि पाठभेद होते हुए भी विभिन्न संस्करणों में कथावस्तु में उल्लेखनीय अन्तर नहीं है। पाठभेद का सम्बन्ध प्रक्षिप्त सामग्री से है। कतिपय विद्वानों का मत है कि वाल्मीकि की रचना में केवल अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथा थी। युद्धकाण्ड के अन्त में प्राप्त फलश्रुति इस मत के समर्थन में उद्धृत की जाती है। कतिपय विद्वानों के अनुसार फलश्रुति से ग्रन्थ की समाप्ति का संकेत मिलता है। सम्पूर्ण बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड तथा वे स्थल जिनमें राम के अवतार होने का निर्देश है प्रक्षिप्त बताये गये हैं। इन विद्वानों के अनुसार आदिकाव्य आरम्भ में मौखिक रूप से प्रचलित था। कुशीलव इनका गान करते थे। ये कुशीलव काव्योपजीवी थे और उनकी परम्परा में दीर्घकाल तक आदि काव्य मौखिक रूप से प्रचलित रहा। श्रोताओं की रुचि एवं जिज्ञासा के आधार पर आगे चल कर काव्य में परिवर्द्धन किया गया। बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड की रचना इसी प्रकार हुई। अवतार सम्बन्धी स्थल आगे चल कर अवतारवाद के विकास एवं प्रचार के फलस्वरूप जोड़े गये। बौद्ध महाविभाषा में रामायण का विस्तार बारह हजार श्लोक परिमाण कहा गया है जो वर्तमान रूप का आधा

होगा। प्रक्षिप्त सामग्री का डा० बुल्के ने विवेचन किया है और यह मत व्यक्त किया है कि बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड तथा अवतार सम्बन्धी स्थल सभी प्रक्षिप्त हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक में रामायण का मूलरूप सुरक्षित है। इस सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि ऐसे अनेक काव्य मिलते हैं जो राम के अयोध्या प्रत्यावर्तन तथा राज्याभिषेक पर समाप्त होते हैं। आरम्भ में रामायण के प्रचलित दो ही पाठ थे दाक्षिणात्य और उदीच्य। कालान्तर में उदीच्य पाठ गौडीय पाठ तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ में विभक्त हो गया। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि रामायण के स्वरूप और प्रक्षेपों के सम्बन्ध में जो मत व्यक्त किये गये हैं वे तर्काश्रित हैं।

प्राचीन काल में रामायण के व्यापक प्रचार एवं उसकी लोकप्रियता का संकेत टीकासम्पत्ति से भी मिलता है। सबसे प्राचीन टीका कतक की मानी जाती है। सर्वाधिक प्रसिद्ध टीका नागेश भट्ट की तिलक टीका है। नागेश भट्ट ने कतक को प्रमाण रूप में स्वीकार किया है। रामायण की अन्य टीकाएँ इस प्रकार हैं—गोविन्द राजकृत शृंगार तिलक, रामानन्दतीर्थ कृत रामायणकूट, विश्वनाथकृत वाल्मीकि तात्पर्य तरणि और वरदराजकृत विवेक तिलक।

काव्य रचना की मूल प्रेरणा के सम्बन्ध में आदिकाव्य के आरम्भ में चर्चा है।[1] तपस्या और स्वाध्याय में निरत श्रेष्ठ वक्ता ज्ञानियों में श्रेष्ठ और मुनियों

१—तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम्।
कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः।
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः।
आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम्।
श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः।
श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत्।
बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः।

मे पुंगव नारद से वाल्मीकि ने पूछा—इस समय संसार में गुणवान् पराक्रमी धर्मज्ञ कृतज्ञ सत्यवक्ता और अपने व्रत में दृढ़ पुरुष कौन है। सदाचार से युक्त सब प्राणियों के कल्याण में तत्पर विद्वान् सामर्थ्यशाली और देखने में सबसे सुंदर पुरुष कौन है। मन को वश में रखने वाला क्रोध रहित कान्तिमान और डाह से हीन पुरुष कौन है। वह कौन पुरुष है जिसके रणभूमि में कुपित हो जाने पर देवता भयभीत हो जाते हैं यह मैं जानना चाहता हूं इसके लिए मेरे मन में बड़ा कौतूहल है। त्रिलोकी का वृत्तान्त जानने वाले नारद ने वाल्मीकि के ये वचन सुनकर कहा—अच्छा सुनिये आपने जो गुण गिनाये हैं उनमें से बहुत से दुर्लभ हैं। फिर भी हे मुने उनसे युक्त मनुष्य को मैं बताता हूं आप सुनें। वे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए हैं और लोक में राम इस नाम से विख्यात हैं।[१] इसके पश्चात् नारद ने रामचरित का संक्षेप में वर्णन किया है। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि वाल्मीकि उदार प्रतिष्ठित सर्वगुण सम्पन्न मनुष्य को अपने काव्य का नायक बनाना चाहते थे और इसी सम्बन्ध में उन्होंने नारद से जिज्ञासा की थी। अतः रामायण महापुरुषचरित काव्य सिद्ध होता है और इसकी रचना लोकमंगल की कामना से की गयी प्रमाणित होती है।

अनन्तर क्रौंच वध तथा धर्मात्मा ऋषि वाल्मीकि के क्रौंची का क्रन्दन सुनकर करुणाभिभूत हो जाने का उल्लेख आया है। नारद के चले जाने पर वाल्मीकि ऋषि अपने शिष्य भरद्वाज सहित आश्रम के निकट रमणीय तमसा तट पर स्नान के लिये गये। वहाँ से तटवर्ती सघन वन की शोभा देखने लगे और टहलने लगे। उस वन में हो उन्होंने एक क्रौंच के जोड़े को प्रसन्न मन से मधुर बोली बोलते हुए और विहार करते देखा। जब वाल्मीकि उन्हें देख रहे थे उसी समय एक दूषित विचार वाले और अकारण वैरी निषाद ने उनमें से एक अर्थात् पुरुष क्रौंच को मार डाला। उसे रुधिर से सने और धरती पर छटपटाते देख उस उसकी भार्या क्रौंची करुण स्वर से विलाप करने लगी। क्योंकि अभी अभी वह अपने साथ सम्भोग करते बिछुड़ी और अपने प्यारे पति से बिछुड़ी थी। इस प्रकार उस निषाद के द्वारा मरे हुए क्रौंच को देख कर धर्मात्मा ऋषि वाल्मीकि के मन में करुणा जाग गया। करुणा उत्पन्न होने के कारण और क्रन्दन करती हुई क्रौंची को देखकर उन्होंने निषाद के इस कार्य को अधर्म समझा और यह वचन कहा—निषाद तू ने काम मोहित क्रौंच के जोड़े में से एक (क्रौंच) का वध किया है। अतः तुम सदा के लिए प्रतिष्ठा

---

[१] इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान धृतिमान्वशी। (–वा० रा० १ १ १ ८)।

प्राप्त न करो।[1] ऐसा कहने के पश्चात् वे विचार करने लगे कि इस पक्षी के लिए शोकात मैंने क्या कह डाला। उन्होंने शिष्य से कहा—अनुष्टुप छन्द में बंधा और गुरु लाघवादि अक्षरों के वैषम्य से रहित और वाद्य पर गाये जाने योग्य यह श्लोक जो अभी मेरी शोकावस्था में उच्चरित हुआ है वह व्यर्थ नहीं हो सकता।[2] अनन्तर वहाँ ब्रह्मा ने उपस्थित होकर कहा—आपका वह वाक्य श्लोक था। मेरी इच्छा से ही आपके मुख से यह वाणी प्रकट हुई है। ऋषि सत्तम, धर्मात्मा राम के चरित को जैसा नारद से सुना है गान करिये। ब्रह्मा के चले जाने पर शिष्यों सहित वाल्मीकि को विस्मय हुआ। शिष्य उनके श्लोक का बार बार पाठ करने लगे। शोकावस्था में महर्षि का शोक ही श्लोक में परिणत हो गया था। अनन्तर वाल्मीकि ने श्लोकों में रामकथा निबद्ध की।[3] अनुष्टुप छंद के आविष्कारक वाल्मीकि माने जाते हैं। सम अक्षर से युक्त तथा लघुगुरु नियमबद्ध अनुष्टुप का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि ने लौकिक काव्य में किया है।

आदिकाव्य के आरम्भ में वाल्मीकि नारद-संवाद, क्रौंच वध, वाल्मीकि का शोक तथा श्लोक में उसकी परिणति के प्रसंग अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। भारतीय काव्य के उद्गम का यह विशिष्ट स्वरूप निर्णायक सिद्ध हुआ। उक्त प्रसंग से रामकाव्य ही नहीं समस्त संस्कृत काव्यधारा की दिशा निर्दिष्ट हो गयी। आदिकाव्य की महिमा देवकाव्य के रूप में नहीं नरकाव्य के रूप में है। नायक का चयन गुणों की विशिष्टता के आधार पर किया गया है जिसमें चारित्रण मुख्य है। वाल्मीकि ने नारद से पूछा था—चारित्रेण च को युक्तः और नारद ने उत्तर दिया

---

[1]—मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्। (वा० रा० १ २ १५।)

[2]—पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा॥ (वही १ २ १८)।

[3]—श्लोक एव त्वया बद्धो नात्र कार्या विचारणा।
मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन्प्रवृत्तेयं सरस्वती॥
रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम।
धर्मात्मनो गुणवतो लोके रामस्य धीमतः॥
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्।
रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः॥
समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा।
सोऽनुव्याहरणाद्भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः॥ (वही १ २ ३१ ४०)।

था— तयक्त श्रूयतां नर। नायक का अनुसंधान लोक अर्थात मानव समाज में किया गया था। लोक मंगल की कामना काव्यरचना की मूल प्रेरणा थी।

आदिकाव्य का मुख्य रस करुण है। काव्य के आरम्भ में क्रौंचवध प्रसंग तथा महर्षि वाल्मीकि के शोक से इस काव्य का आरम्भ होता है। इसकी परिणति सीता के पृथ्वी के गर्भ में अन्तर्धान होने के करुण प्रसंग में होती है। करुण रस की अविच्छिन्न धारा संस्कृत वाङ्मय में मिलती है। महर्षि वाल्मीकि के शोक के श्लोक में परिणत होने की चर्चा कविकुलगुरु कालिदास ने रघुवंश में की है। भवभूति ने करुण रस को उत्तर रामचरितम में मुख्य रस माना है। आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में क्रौंच वध और श्लोक के आविर्भाव का उल्लेख किया है। समग्र संस्कृत साहित्य इस भावधारा से प्रभावित हुआ है और आज भी यह काव्य क्षेत्र तथा जनमानस में प्रतिष्ठित है। भारतीय वाङ्मय तथा भारतीय जन जीवन में मर्यादाएं आदिकाव्य की रचना से संभव हो सकी हैं।

वाल्मीकि रामायण को चतुर्विंशति साहस्री संहिता कहा गया है। इस महाकाव्य में चौबीस हजार श्लोक हैं उतने हजार जितने गायत्री मंत्र के अक्षर हैं। इस महाकाव्य को उपजीव्य ग्रंथ कहा गया है। इससे प्रेरणा ग्रहण कर परवर्ती काल में विशाल राम साहित्य की रचना हुई है। आदिकाव्य को आदर्श मान कर समग्र कवि समाज ने वाल्मीकि का ऋण निरंतर स्वीकार किया। काव्य के आरम्भ में आदिकवि की वंदना की एक परम्परा पायी जाती है। दशम शतक में पुष्पदन्त और राजशेखर के समकालीन कवि त्रिविक्रम भट्ट ने आदिकवि की वन्दना की है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में इसी प्रकार आदि

१—तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः॥ रघुवंशम १४७ ॥

२—एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्
भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरंगमयान्विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम्॥ उत्तररामचरितम ४७॥

३—काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥ ध्वन्यालोक १ ५॥

४—सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा॥—त्रिविक्रम भट्ट।

कवि का ऋण स्वीकार किया है और उनकी वन्दना की है। भारतीय कवियों ने आदिकाव्य से स्फूर्ति ग्रहण कर नाना रचनाओं में नाना प्रकार से राम चरित का गायन किया। रामकथा के रूप में आदिकाव्य के महिमाशाली उत्स से निस्सृत रामकाव्य परम्परा में आज भी राम साहित्य का सृजन हो रहा है।

महाभारत में रामकथा—वाल्मीकि रामायण के पश्चात् रामकथा का सविस्तार वर्णन महाभारत में मिलता है। महाभारत का वर्तमान रूप रामायण के बाद माना जाता है। रामकथा का वर्णन महाभारत में चार स्थलों पर हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थलों पर रामकथा का निर्देश किया गया है।

महाभारत में द्रोण पर्व तथा शान्ति पर्व में रामकथा का वर्णन आया है। प्रसंग दोनों स्थलों पर समान हैं। द्रोण पर्व में पुत्र की मृत्यु से संजय का शोक होना है। उन्हें सान्त्वना देने के लिए नारद ने सोलह राजाओं की कथा सुनायी है। राजा अपने समय में प्रतापी थे किन्तु काल पूरा होने पर उन सबको मृत्यु ने ग्रस लिया कोई न बचा। अतः मृत्यु अनिवार्य है उसके लिए शोक व्यर्थ है। इन राजाओं की कथा को षोडश राजोपाख्यान कहा गया है। इस उपाख्यान के अन्तर्गत राम कथा का भी वर्णन किया गया है। इसमें आरम्भ के श्लोकों में वनवास से लेकर अयोध्या लौटने तक की कथा वर्णित है। अनन्तर राम तथा रामराज्य की महिमा की अन्य अनेक कथा का वर्णन किया गया है। बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड के प्रसंगों का अभाव है। इसी प्रकार का एक प्रसंग शान्ति पर्व में (१२-२९-४६-५५) आया है। इसमें कृष्ण ने युधिष्ठिर को षोडशराजोपाख्यान सुनाया है। इस प्रसंग में रामराज्य की महिमा का वर्णन किया गया है कथा का अंश न्यून है। रामाश्वमेध तथा राम के ग्यारह सहस्र वर्ष तक राज्य करने का उल्लेख किया गया है।

रामकथा का वर्णन महाभारत के आरण्यक पर्व में दो बार आया है। एक बार यह कथा भीम हनुमान संवाद (१४७. २८-३८) के रूप में वर्णी गयी है। हनुमान ने वनवास से लेकर अयोध्या लौटने तक की कथा ग्यारह श्लोकों में कही है। इसमें बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड की सामग्री का निर्देश नहीं है। रामकथा का मुख्य वर्णन इस पर्व में द्रौपदी हरण के प्रसंग का उल्लेख किया गया

१—बन्दौं मुनि पद कंजु रामायन जेहि निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषण सहित॥
—रामचरित मानस—१।१४।

ै। इस रामापाख्यान कहा गया है जिसमे रामकथा का सविस्तार वणन आया है। द्रौपदी हरण के प्रसग म शोक स सतप्त युधिष्ठिर विचार करते हैं कि क्या मुझसे भी अधिक मन्दभाग्य कोई व्यक्ति ससार म होगा (अस्ति नून मया कश्चि दल्पभाग्यतरो नर)। मार्कण्डेय युधिष्ठिर को सात्वना देते हैं और रामचरित सुना कर धैय बधाते है। यहा रामचरित का वणन ७०४ श्लोको म किया गया है। इस विस्तृत रामकथा के सम्बन्ध म विद्वानो ने विभिन्न मत व्यक्त किये है। कतिपय विद्वानो का मत है कि रामोपाख्यान वाल्मीकि रामायण का आधार है। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण से रामोपाख्यान को प्राचीन सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। कुछ अन्य विद्वानो का मत है कि रामोपाख्यान रामायण के पूव रूप पर आधारित है अथवा कोई ऐसा मूलस्रोत रहा होगा जिससे रामोपाख्यान और रामायण दोनो का स्वतत्र रूप से विकास हुआ। अन्य विद्वानो का विचार है कि रामोपाख्यान वाल्मीकि रामायण का सक्षेप है। रामोपाख्यान को रामायण से प्राचीनतर मानने वालो के लिए मूलस्रोत की कल्पना अथवा रामायण के मूलरूप की चर्चा पाश्चात्य विद्वानो ने की है। इनमे ई हापकिंस डा० वेबर ए ल्युडविग डा याकोबी आदि विद्वान मुख्य है। डा० सुकठणकर ने रामोपाख्यान म ऐसे अनेक स्थल उद्धृत किये हैं जिनमे वाल्मीकि रामायण से शाब्दिक साम्य मिलता है। रामोपाख्यान की कथा कोई विशेषता लिए हुए नही है। युद्धकाण्ड की कथा का विस्तार अधिक है इसका वणन तीन सौ से अधिक श्लोको म किया गया है। इसमे हनुमान द्वारा औषधिपवत लाना सीता की अग्नि परीक्षा आदि कथाए छोड दी गयी हैं। राम के अयोध्या लौटने तथा राज्याभिषेक के साथ रामोपाख्यान समाप्त हो जाता है। कथा के आरम्भ म रावण जन्म आदि सक्षेप म दे दिया गया है रामायण के उत्तरकाण्ड की शेष सामग्री का अभाव है। रावण जन्म के सम्बन्ध म विश्रवा की तीन पत्नियाँ बताया गया हैं। पुष्पोत्कटा (रावण कुम्भकण की माता) मालिनी (विभीषण की माता) और राका (खर शूपणखा की माता)। रामायण म कैकसी को रावण कुम्भकर्ण विभीषण और शूपणखा की माता कहा गया है। क्षेमेन्द्र ने दशावतारचरितम म पुष्पोत्कटा को रावण आदि की माता कहा है। ये विभिन्नताए अधिक महत्वपूर्ण नही हैं। वस्तुत रामोपाख्यान का आधार स्वतत्र नहीं है। रामोपाख्यान रामायण के आधार पर ही रचित है। महाभारत म अन्यत्र वाल्मीकि और रामायण का उल्लेख आया है। यह मान्य मत है कि रामोपाख्यान का आधार वाल्मीकीय रामायण ही है। अत यह सिद्ध होता है कि वतमान महाभारत म रामायण की कथावस्तु आदिकाव्य के अनुसार रखी गयी।

कथानक का चीनी भाषा में अनुवाद ४७२ ई॰ में हुआ था जो त्स-पो निंग किंग नामक चीनी त्रिपिटक के अन्तर्गत मिलता है।

दशरथ जातक के अनुसार दशरथ वाराणसी के राजा थे। ज्येष्ठा रानी से उनके तीन सन्तान थीं—दो पुत्र राम पंडित और लक्खण और एक पुत्री सीता देवी। प्रथम रानी की मृत्यु के उपरान्त दूसरी रानी अग्रमहिषी हुई और उसके एक पुत्र था भरत कुमार। राजा ने रानी को उसी अवसर पर एक वर दिया। भरत जब सात वर्ष के हुए तब रानी ने भरत के लिए राज्य माँगा। राजा ने रानी के षड्यंत्र की आशंका से राम पंडित और लक्खण को बुलाकर अन्य राज्य या वन में जाकर रहने को तथा अपनी मृत्यु के उपरान्त आकर राज्य पर अधिकार प्राप्त करने के लिए कहा। राम, लक्खण और सीतादेवी हिमालय पहुँच और वहाँ आश्रम बनाकर रहने लगे। दशरथ की पुत्रशोक के कारण मृत्यु हो गया। भरत सेना लेकर राम को वापस बुलाने के लिए हिमालय स्थित आश्रम में गये। वहाँ उन्होंने राम को राजा दशरथ की मृत्यु की सूचना दी। पिता की मृत्यु सुन कर राम ने शोक नहीं किया और न वे रोये। लक्खण और सीता को जब पिता की मृत्यु की सूचना मिली तब वे अत्यधिक दुखी हुए। इस पर राम ने उन्हें आश्वस्त किया और अनित्यता का धर्मोपदेश किया। उपदेश सुनकर लक्खण और सीता शोक रहित हो गये। राम वापस लौटने को तैयार नहीं हुए। उन्होंने भरत को अपनी तृण पादुकाएँ दीं। भरत, लक्खण और सीता वाराणसी लौट आए। पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर राजकार्य करने लगे। अन्याय होने से पादुकाएँ एक दूसरे पर आघात करती थीं, न्याय होने पर वे शान्त रहती थीं। तीन वर्ष पूरा होने पर राम ने लौट कर अपनी बहन सीता देवी से विवाह किया और सोलह हजार वर्ष धर्मपूर्वक राज्य करने के उपरान्त स्वर्ग चले गये।

महात्मा बुद्ध ने दशरथ जातक की कथा जेतवन में कही थी। उन्होंने किसी गृहस्थ को देखा जिसने पिता की मृत्यु के शोक से अपना सारा कर्तव्य छोड़ दिया था। महात्मा बुद्ध ने कहा कि प्राचीन काल में पंडित लोग पिता की मृत्यु पर शोक नहीं करते थे। दशरथ की मृत्यु पर राम पंडित ने शोक नहीं किया। उन्होंने राम के धैर्य का उदाहरण देते हुए उक्त जातक कथा को सुनाया और समाधान इस प्रकार किया—उस समय शुद्धोदन दशरथ थे, महामाया राम पंडित की माता, यशोधरा सीता, आनन्द भरत और मैं राम पंडित था।

अनामक जातक में रामकथा के पात्रों के नाम नहीं दिये गये हैं किन्तु कथा में वनवास, सीताहरण, जटायु मृत्यु, बालि-सुग्रीव युद्ध, सेतुबंध, सीता की परीक्षा

आदि वृत्तान्तों के संकेत मिलते हैं। अपने मामा के आक्रमण के भय से राम स्वयं राज्य छोड़ कर वन में चले जाते हैं। दशरथ कथानम् की विशेषता यह है कि उसमें सीता का अथवा किसी राजकुमारी का उल्लेख नहीं है। दशरथ की चार रानियां थीं जिनसे एक एक पुत्र हुए थे। तीसरी रानी के कहने से दशरथ ने अपने दो पुत्रों को वनवास दिया था और बारह वर्ष बाद लौटने को कहा था। शेष कथा में कोई विशेषता नहीं है।

बौद्ध जातकों में सुरक्षित रामकथा को कतिपय विद्वानों ने रामकथा का मूलरूप माना है। डा० बुल्के ने इस विषय पर उपलब्ध सामग्री का विश्लेषण करके यह मत व्यक्त किया कि दशरथ जातक का वृत्तान्त ब्राह्मण रामकथा का विकृत रूप मात्र है।[1] बौद्ध साहित्य में रामकथा का अंश स्वल्प है। जातक रामकथा का मूल स्रोत बौद्ध नहीं है। बौद्ध त्रिपिटक के रचना काल में रामकथा सम्बन्धी आख्यान प्रचलित हो गए थे। इस आख्यान साहित्य की कुछ सामग्री का समावेश पाली गाथाओं में हो गया। बौद्ध रामकथा के सम्बन्ध में डा० बुल्के का मत समीचीन जान पड़ता है और अधिकांश विद्वान इस मत से सहमत हैं।

संस्कृत साहित्य में रामकथा—वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत की रचना के बाद संस्कृत साहित्य में ब्राह्मण रामकथा पर आधारित प्रचुर परिमाण में राम-साहित्य का सृजन होता रहा। पुराण ललित साहित्य धार्मिक साहित्य सभी प्रकार का साहित्य रामचरित विषयक उत्कृष्ट रचनाओं से सर्वाधित हुआ। पुराण साहित्य में हरिवंश तथा प्रधान महापुराणों में विष्णु तथा वायुपुराण में संक्षिप्त रामकथा वर्णित है। श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्ध में रामचरित का वर्णन है। कूर्म पुराण में राक्षसवंश तथा सूर्यवंश वर्णन में रामचरित आया है। ये कथायें मूल रामकथा के अनुसार हैं। इसी प्रकार वाराह पुराण में रामकथा दी गयी है। अन्य पुराणों तथा उप पुराणों में भी रामकथा वर्णित है। कथावस्तु की दृष्टि से इन वर्णनों में कोई विशेषता नहीं है ये सभी वर्णन आदिकाव्य के अनुसार हैं।

पुराणों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में रामायणों की रचना हुई। इनमें से अधिकांश का समय ईसा की प्रथम सहस्राब्दी के बाद का जान पड़ता है। योगवाशिष्ठ रामायण की रचना सम्भवतः आठवीं शताब्दी में हुई थी। अध्यात्म रामायण। अद्भुत रामायण। में सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि रामभक्ति के विकास में

1—विस्तृत विवेचन के लिए दृष्टव्य—डा० बुल्के—रामकथा पृ० 81 106।

इस ग्रथ का विशेष योग रहा है। अद्भुत रामायण और आनन्द रामायण की रचना अध्यात्म रामायण के बाद हुई। नीलकण्ठ के मत्र रामायण का उद्देश्य रामायण के वेदमूलतत्व का प्रतिपादन है।

संस्कृत ललित साहित्य में भी कथानक में परिवर्तन नहीं पाया जाता। ललित साहित्य में रामचरित की काव्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है। प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व में जब आदिकाव्य अपना वर्तमान रूप प्राप्त कर चुका था कालिदास ने रघुवंश की रचना की थी। रघुवंश की रचना आदिकाव्य का प्रसाद गुण सम्पन्न रस शैली में की गयी है जो आगे आधुनिक काल तक संस्कृत साहित्य को प्रभावित करती रही है। रघुवंश के पश्चात रामचरित सम्बन्धी महाकाव्यों की एक शृंखला मिलती है। सेतुबंध अथवा रावणवह (महाराष्ट्री प्राकृत) की रचना सम्भवत ५वीं शताब्दी में हुई थी। इसके रचयिता प्रवरसेन बताये गये हैं। इसमें १५ सर्गों में राम रावण युद्ध का वर्णन किया गया है। भट्टिकाव्य की रचना छठवीं शताब्दी में हुई थी। इस महाकाव्य में २२ सर्ग हैं जिनमें युद्धकाण्ड तक की रामकथा वर्णित है। कुमारदास का महाकाव्य जानकी हरण आठवीं शताब्दी का बनाया जाता है। राजशेखर ने कुमारदास को कालिदास की परम्परा में कहा है। इस ग्रंथ के केवल प्रथम पन्द्रह सर्ग उपलब्ध हैं। नवीं शताब्दी में अभिनन्द ने ६ सर्गों में रामचरित की रचना की थी इसमें वनवास से लेकर युद्धकाण्ड तक रामायण की कथा वर्णित है। ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में क्षेमेन्द्र ने ५ ८६ श्लोकों में रामायण की कथा का संक्षेप रामायणमंजरी में प्रस्तुत किया। उन्होंने दशावतारचरित की भी रचना की जिसमें अन्य अवतारों के साथ राम का चरित वर्णित है। इसी प्रकार रामचरित संबंधी महाकाव्यों की रचना परवर्ती काल में भी होती रही।

महाकाव्यों के अतिरिक्त संस्कृत नाटकों के रूप में रामकथा साहित्य पल्लवित हुआ। रामकथा सम्बन्धी सबसे पहले प्रतिमा और अभिषेक नाटक मिलते हैं। ये भास रचित बताये गये हैं। इन दो नाटकों के पश्चात रामचरित का वर्णन करने वाले दो महान नाटक भवभूति कृत मिलते हैं। भवभूति का समय आठवीं शताब्दी है। उन्होंने वीर रस प्रधान महावीरचरित में रामकथा का वर्णन किया है। करुणरस प्रधान उत्तररामचरित में सात अंकों में उत्तरकाण्ड की कथा परिवर्तन के साथ प्रस्तुत की गयी है। अनंगहर्षकृत उदात्तराघव दिङ्नागकृत कुन्दमाला तथा मुरारिकृत अनर्घराघव में रामकथा के विभिन्न अंशों का वर्णन किया गया है। दसवीं शताब्दी में राजशेखर ने बाल रामायण विस्तृत नाटक की रचना की उसके दस अंकों में रामाभिषेक तक की कथा वर्णित है। इसमें

नाटक अथवा महानाटक ग्यारहवीं शताब्दी की रचना बतायी गयी है। नवीं शताब्दी में शक्तिभद्रकृत आश्चर्यचूडामणि में सात अंक हैं जिनमें पंचवटी से लेकर सीता की अग्नि-परीक्षा तक की कथा वर्णित है। जयदेवकृत प्रसन्नराघव तथा सोमेश्वरकृत उल्लाघराघव में रामकथा का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त रामकथा के आधार पर अनेक अन्य नाटक रचे गये और यह परम्परा आगे चलती रही।

महाकाव्यों और नाटकों के अतिरिक्त कथा-साहित्य में भी रामचरित मिलता है। किन्तु इस प्रकार की कोई विस्तृत परम्परा नहीं पाई जाती। गुणाढ्यकृत बृहत्कथा का रूपान्तर सोमदेव ने ग्यारहवीं शताब्दी में कथा सरित्सागर के रूप में किया था। इस ग्रन्थ में तीन बार रामकथा वर्णित है।[1] इसके बहुत पहले जैनाचार्य संघदास ने पाँचवीं शताब्दी में बृहत्कथा का जैन रूपान्तर वसुदेव हिंडि में प्रस्तुत किया था। इस ग्रन्थ की रचना प्राकृत गद्य में की गयी है। कथा जैन धर्म से प्रभावित है किन्तु कथानक वाल्मीकि रामायण से भिन्न नहीं है। वसुदेवहिंडि में कदाचित् पहली बार सीता के मंदोदरी की पुत्री होने का उल्लेख है।

जैन राम-साहित्य—बौद्ध साहित्य की भाँति जैन साहित्य में भी रामकथा मिलती है। जैनाचार्यों द्वारा रचित राम-साहित्य अत्यन्त विस्तृत है। जैन धर्म में रामकथा के पात्रों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उनकी गणना जैन धर्म के त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों में की गयी है। ये त्रिषष्ठि शलाका पुरुष २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव हैं। जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में महापुरुषों के चरित इतिहास तथा पुराणों में वर्णित हैं उसी प्रकार इन त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों के चरित जैन महापुराणों तथा पुराणों में वर्णित हैं। इन श्लाघ्य चरित वाले पुरुषों का वर्णन पहले त्रिषष्ठि लक्षण महापुराण में मिलता है। इस महापुराण के दो भाग हैं जिनसेन कृत आदिपुराण (नवीं शताब्दी) और गुणभद्र कृत उत्तरपुराण (८९७ ई०)।

जैन मान्यता के अनुसार प्रत्येक कल्प में ये महापुरुष होते हैं। इनमें से राम (पद्म), लक्ष्मण और रावण क्रमशः आठवें बलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव होते हैं। ये समकालीन होते हैं। बलदेव (बलभद्र) और वासुदेव (नारायण) किसी राजा की विभिन्न रानियों के पुत्र होते हैं। प्रतिवासुदेव सदैव वासुदेव का

[1]—कथा सरित्सागर—नवम लंबक प्रथम तरंग १२ लंबक ५ तरंग और १८ लंबक ३ तरंग।

विरोध करता है। वासुदेव अपने भाई बलदेव के साथ इससे युद्ध करते हैं और प्रति वासुदेव का वध करते हैं। वध करने के कारण उन्हें नरक जाना पड़ता है। बलदेव अपने भाई की मृत्यु के कारण शोकाकुल होकर जैन दीक्षा लेते हैं और मोक्ष प्राप्त करते हैं। रामकथा के ये सभी पात्र जैनमतावलम्बी मान गये हैं।

जैन राम साहित्य की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। इसके अनुसार राक्षस और वानर मनुष्य थे। ये विद्याधरवंश के थे। उन्हें कामरूपत्व आकाशगामिता विद्याएँ सिद्ध थीं। रामचरित सम्बन्धी असम्भव वृत्तान्तों को सम्भव रूप में चित्रित करने का प्रयास जैन राम साहित्य की एक अन्य विशेषता है। इसमें वृत्तान्तों का तर्कसंगत रूप में परिवर्तन कर चित्रित किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि जैन राम साहित्य की रचना वाल्मीकि रामायण के वर्तमान रूप ग्रहण कर लेने के पश्चात् हुई। जैन रामकथा संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश तथा अन्य भाषाओं में मिलती है।

जैन साहित्य में रामकथा की दो परम्पराएँ मिलती हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में विमलसूरि की रामकथा प्रचलित है और दिगम्बर सम्प्रदाय में विमलसूरि और गुणभद्राचार्य दोनों की रामकथाओं का प्रचार है।

विमलसूरि ने रामकथा का जैन रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने प्राकृत में पउम चरियं की रचना की। उन्होंने लिखा है कि मैं उस रामकथा अथवा पद्मचरित को कहता हूँ जो आचार्यों की परम्परा में चली आ रही है और नामावली निबद्ध था।[1] विमलसूरि के पूर्व जैन परम्परा में सम्भवतः रामचरित नामावली के रूप में होगा अर्थात् उसमें कथा के प्रधान प्रधान पात्रों के उनके माता पिताओं के नाम ही होंगे। वह पल्लवित कथा के रूप में न होगा और उसी को विमलसूरि ने विस्तृत चरित के रूप में रचना की होगी। विमलसूरि ने अपनी रचना का समय दिया है। इसके अनुसार पउम चरियं की रचना वीर निर्वाण संवत् ५ अथवा विक्रम संवत् ६ में हुई थी। इसका संस्कृत रूपान्तर रविषेणाचार्य

१—पउम चरियं—जैन प्रसारक सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित
णामावलियं निबद्धं आयरिय परंपरागयं सव्वं।
वोच्छामि पउमचरियं अहाणुपुव्विं समासेण। १ ८।
—नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य और इतिहास प ७८।
—पंचेव वाससया दुसमाए तीसवरस संजुत्ता।
वीरे सिद्धिमुवगए तओ निबद्धं इमं चरियं। १ । पऊम चरियं।

ने पद्मचरित्र के नाम से ६६० ई० में किया। हिन्दी खड़ीबोली में पद्मचरित का अनुवाद दौलतराम ने सं० १८१८ में किया था।

विमलसूरि की कथा के अनुसार राजा श्रेणिय (श्रेणिक) महावीर के प्रधान शिष्य गोयम (गौतम) से रामकथा को यथारूप जानने की जिज्ञासा करता है और गौतम उसे रामचरित सुनाते हैं। ग्रन्थ का आरम्भ विद्याधर लोक के वर्णन से होता है जिसमें राक्षसों और वानरों की उत्पत्ति दी गयी है। इसी के अन्तर्गत रावण चरित का वर्णन है। रावण, कुम्भकरण, चन्द्रनखा और विभीषण ये राजा रत्नश्रवा और केकसी की चार सन्तान थे। रत्नश्रवा ने जब पहले पहल अपने सुपुत्र रावण को देखा तब उसके गले में उसकी माता ने उत्तम हार पहना रखा था जिसमें बालक के दस सिर दिखायी देते थे। इस कारण पिता ने उसका नाम दशानन रखा। इन्द्र, यम, वरुण आदि कथा में देवता नहीं बल्कि राजा माने गये हैं। वरुण के विरुद्ध अभियान में हनुमान ने रावण की सहायता की थी और चन्द्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा से विवाह किया था। खरदूषण विद्याधर वंश का राजकुमार था। रावण की बहन चन्द्रनखा से उसका विवाह हुआ था। खरदूषण और चन्द्रनखा का पुत्र शम्बूक और पुत्री अनंगकुसुमा थी। रावण एक धर्मभीरु जैन मतावलम्बी के रूप में चित्रित किया गया है। उसने जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था और पशुबलि वाले यज्ञों पर रोक लगायी थी।

पउम चरियं के अनुसार राजा दशरथ की चार रानियाँ थीं—कौशल्या, सुमित्रा, कैकयी और सुप्रभा। इनसे क्रमशः राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चार पुत्र हुए। राजा जनक और रानी विदेह से पुत्री सीता और एक पुत्र भामण्डल उत्पन्न हुआ। राम वनवास सम्बन्धी कथा का अंश वाल्मीकीय कथा से भिन्न है। वनवास काल में राम और लक्ष्मण अनेक राजाओं से युद्ध करते हैं और उन पर विजय प्राप्त करते हैं। सीताहरण का कारण यह बताया गया है कि सूर्यहास खड्ग की सिद्धि के लिए तप करते हुए शम्बूक का लक्ष्मण ने वध किया था। समाचार सुन कर रावण वहाँ आया और सीता को देख कर आसक्त हो गया। उस समय लक्ष्मण जंगल में थे और राम कुटी में। रावण ने अवलोकनी विद्या से यह जान लिया कि लक्ष्मण ने राम को बुलाने के लिए सिंहनाद का संकेत बताया है। रावण

१—पद्म चरित्र—माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई से प्रकाशित।
द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्धचतुर्थवर्षयुक्ते।
जिनभास्करवर्धमानसिद्धे चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम्।१८०।

ने सिंहनाद किया और राम के लक्ष्मण के पास प्रस्थान करने पर उसने सीता का हरण किया। सुग्रीव का वृत्तांत भी वाल्मीकीय कथा से भिन्न है। रामायण के युद्धकाण्ड की घटनाओं में भी परिवर्तन किया गया है। समुद्र एक राजा था जिससे नील ने युद्ध किया था। लक्ष्मण के शक्ति लगने पर चिकित्सा द्रोणमेघ की कन्या विशल्या ने की थी जिसके साथ लक्ष्मण ने विवाह किया। रावण का वध लक्ष्मण ने किया। राम और लक्ष्मण ६ वर्ष तक लंका में रहे। अयोध्या लौट कर राम और लक्ष्मण राज्य करने लगे। राम के आठ हजार और लक्ष्मण के तेरह हजार रानियाँ थीं। सीता निर्वासन और सीता परीक्षा वाल्मीकीय रामायण के अनुसार है। परीक्षा में सफल हो कर सीता ने जैन धर्म की दीक्षा ली और वे स्वर्ग गयीं। राम और लक्ष्मण का प्रेम परखने के लिए दो स्वर्गवासी देवताओं ने लक्ष्मण को यह विश्वास दिलाया कि राम की मृत्यु हो गयी है। इस पर शोक के कारण लक्ष्मण की मृत्यु हो जाती है। और रावण-वध के कारण वे नरक जाते हैं। लक्ष्मण की अंत्येष्टि करके राम विरक्त हो जाते हैं और दीक्षा के उपरान्त साधन करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।

जैन रामकथा का दूसरा रूप पहले पहल गुणभद्राचार्य के उत्तर पुराण में मिलता है। गुणभद्र जिनसेन स्वामी के शिष्य थे और कर्णाटक प्रांत के रहने वाले थे। जिनसेन ने आदिपुराण की रचना की थी। गुणभद्र ने अपने गुरु के आदिपुराण के अन्तिम १६२ श्लोक रच कर उसे पूरा किया और उत्तरपुराण की रचना की। उत्तरपुराण के अन्तर्गत ६७वें तथा ६८वें पर्व में १११७ श्लोकों में रामकथा वर्णित है। इस कथा में सीता को रावण की पुत्री माना गया है। उत्तरपुराण का रचना-काल ८९७ ई० है।[1] गुणभद्र विमलसूरि और संघदास की रचनाओं से अवश्य परिचित रहे होंगे। उनके गुरु जिनसेन ने आदिपुराण में सूचित किया है कि उन्होंने अपनी रचना कवि परमेश्वर की गद्यकथा (कवि परमेश्वर निगदितगद्यकथामातृकं पुरोश्चरितम्) के आधार पर की है। कवि परमेश्वर की कृति अब अप्राप्य है। अपने गुरु के समान गुणभद्र ने भी कदाचित् कवि और परमेश्वर की रचना के आधार पर रामकथा लिखी हो। सम्भवतः पउम चरिय और उत्तरपुराण की रामकथा की दो धाराएं अलग अलग स्वतन्त्र रूप में निर्मित हुई और वे ही आगे प्रवाहित होती हुई हम तक आयीं। इन दो धाराओं में गुरु-परम्परा भेद भी हो सकता है। एक परम्परा ने एक धारा को अपनाया और दूसरी ने दूसरी को।

१—नाथूराम प्रेमी जैन धर्म और इतिहास पृ० २८२।

गुणभद्र की रामकथा के अनुसार दशरथ वाराणसी के राजा थे। उनकी सुबाला के गर्भ से राम, कैकयी से लक्ष्मण और आगे चलकर जब दशरथ राजधानी साकेत में स्थापित करते हैं तब किसी अन्य रानी के गर्भ से (कैकयी-स्थित) भरत और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। रावण विद्याधर वंश के पुलस्त्य का पुत्र था। उसकी मन्दोदरी के गर्भ से सीता उत्पन्न हुईं। ज्योतिषियों ने सूचना दी कि पुत्री रावण का नाश करेगी। एक मंजूषा में रखकर रावण उसे मारीच द्वारा मिथिला में गड़वा देता है। हल की नोक से उलझ कर मंजूषा मिलती है और जनक के पास ले जाया जाता है। मंजूषा में जनक बालिका को देखते हैं और उसका नाम सीता रखते हैं। जनक अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को बुलाते हैं। यज्ञ समाप्त होने पर राम और सीता का विवाह होता है। लक्ष्मण का भी विवाह होता है। इसके बाद दोनों वाराणसी में रहने लगते हैं। कथा के इस में वनवास का प्रसंग इस कथा में नहीं है। नारद से रावण ने सीता के सौन्दर्य का वर्णन सुना। वाराणसी के निकट चित्रकूट में वाटिका में राम और सीता के विहार के समय मारीच कनक मृग का रूप धारण कर जाता है। मृग के पीछे राम के जाने पर रावण ने राम का रूप धर कर सीता का हरण किया। हनुमान ने राम की सहायता की व लंका गये और सीता को सांत्वना दे कर लौटे। कथा में राम की आठ हजार और लक्ष्मण की सोलह हजार रानियाँ बताई गयी हैं। लोकापवाद से सीता निर्वासन की चर्चा नहीं है। लक्ष्मण की एक असाध्य रोग से मृत्यु हुई और वे नरक गये। राम ने लक्ष्मण के पुत्र पृथ्वीसुन्दर को राज्य पद और सीता के कनिष्ठ पुत्र अजितंजय को युवराज पद दे कर जैन धर्म में दीक्षा ली और मुक्ति प्राप्त की। सीता ने भी दीक्षा ली और स्वर्ग प्राप्त किया।

विमलसूरि और गुणभद्र दोनों की परम्पराओं में राम साहित्य का निर्माण हुआ। इन परम्पराओं के अन्तर्गत जैन आचार्यों की अन्य रचनाओं पर आगे विचार किया जायगा।

(ख) रामभक्ति उत्पत्ति और विकास

राम साहित्य का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि रामचरित का आरम्भ से ही अनिर्वाय लोकप्रियता प्राप्त हुई। जनमानस पर राम के आदर्श चरित्र का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि कालान्तर में वे भगवान पुरुषोत्तम माने जाने लगे। राम के चरित्र का वर्णन आदिकाव्य में किया गया है वे राम मनुष्य

थे इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न आदर्श गुणों से विभूषित गौरवशाली राजा थे। राम ने स्वयं वाल्मीकि रामायण में अपने को मनुष्य कहा है। रामचरित का प्रचार वीर चरित के रूप में हुआ। ब्रह्मा ने वाल्मीकि से इसी वीरचरित का वर्णन करने के लिए कहा था। आरम्भ में रामपूजा वीरपूजा के रूप में प्रचलित थी। इसका प्रमाण गीता में श्रीकृष्ण के इस कथन से मिलता है कि शस्त्र धारण करने वालों में मैं राम हूँ। अवतारवाद के विकास के साथ लोकभावना से राम को क्रमशः पुरुषोत्तम से विष्णु तथा परब्रह्म के पद पर प्रतिष्ठित किया और राम की वीरपूजा अवतारपूजा के रूप में परिवर्तित हुई। परवर्ती काल में रामभक्ति का विकास अवतार भावना से संबद्ध है अतएव अवतारवाद पर किंचित विचार कर लेना समीचीन होगा।

अवतारवाद—अवतारवाद का सूत्रपात वैदिक साहित्य में हुआ था। ब्राह्मण तथा आरण्यक साहित्य में इसका उल्लेख मिलता है। आरम्भ में प्रजापति का महत्व अधिक था। शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति के तीन अवतारों का उल्लेख हुआ है। ये अवतार हैं—मत्स्य (१८११) कूर्म (७५११) तथा वाराह (१४१२११)। प्रजापति के वाराह अवतार की कथा तैत्तिरीय ब्राह्मण (१११३६) तैत्तिरीय संहिता (७१५१) तथा तैत्तिरीय आरण्यक (१ १८) में है। तैत्तिरीय आरण्यक (१२३) में प्रजापति के कूर्म अवतार का उल्लेख है। शतपथ की कथा के अनुसार जलप्लावन में जब समग्र संसार नष्ट हो गया तब केवल एक मत्स्य बच रहा। पूर्व सूचना पाने से मनु ने सृष्टि के बीज बचा कर एक नौका में रख उसे एक मत्स्य में बाँध कर अपनी तथा बीजों की रक्षा की। जल घटने पर उन्होंने यज्ञ किया जिसके फलस्वरूप सृष्टि का पुनः प्रवर्त्तन हुआ। मत्स्य प्रजापति का रूप था। अन्य कथाओं में कूर्म का रूप धारण करके आरम्भ में प्रजापति ने प्रजा की सृष्टि की थी और वाराह के रूप में पृथ्वी को जल के ऊपर उठाया था।

१—आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।
    सोऽहं यश्च यतश्चाहं भगवांस्तद् ब्रवीतु मे॥
        —वा रा० युद्धकाण्ड १२ ११॥

२—यत्र वयं वाल्मीके ययाम तारस्वात्तमम्।
    रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः॥
        —वा० रा बालकाण्ड २ ॥

—रामः शस्त्रभृतामहम्। गीता—१ १॥

वामन और नृसिंह अवतार विष्णु के अवतार आरम्भ में कहे गये हैं। शतपथ ब्राह्मण (१ २ ५ १) तैत्तिरीय ब्राह्मण ((१ ३ १७) ऐतरेय ब्राह्मण (६ ३ ७) तथा तैत्तिरीय संहिता (२ १ १) में वामन अवतार का उल्लेख है। ऋग्वेद (१ २२) तथा शतपथ (१ २ १) को वामनावतार की कथा का मूलस्थान माना जाता है। तैत्तिरीय आरण्यक (परिशिष्ट १० १ ६) में नृसिंह अवतार की कथा आयी है। वामनावतार की कथा के अनुसार विष्णु ने वामन रूप धारण कर दैत्यों के राजा बलि से तीनों लोकों को जीत लिया।

इतिहास-पुराण युग में अवतारवाद का विपुल प्रचार हुआ। महाभारत में प्रजापति के मत्स्य अवतार (आरण्यक १८५ ८८) की कथा मिलती है। नारायणीय उपाख्यान (महाभारत १२ २६ ७) तथा हरिवंश पुराण (१ ४१) में विष्णु के वामन अवतार का उल्लेख है। नृसिंह अवतार की कथा नारायणीय उपाख्यान (१२ २६ ७ ३ ६) तथा हरिवंश पुराण (१ ४१) में मिलती है। परशुराम के अवतार होने का उल्लेख नारायणीय उपाख्यान (१२ २६ ७७) तथा हरिवंश पुराण (१ ४१ ११२) में मिलता है।

विष्णु आरम्भ में [illegible] ही माने जाते थे। यास्क के अनुसार रश्मियों से व्याप्त होने के कारण अथवा संसार को रश्मियों से व्याप्त करने के कारण सूर्य को विष्णु कहा जाता है।[1] विष्णु को क्रमशः धीरे धीरे बढ़ाया गया और पुराण युग में अवतारों में वे अग्रतम माने जाने लगे। फलस्वरूप नारायण से इनकी अभिन्नता की प्रतिष्ठा की गयी। विष्णु पुराण (१ ४ ८) में मत्स्य कूर्म वाराह को प्रजापति से सम्बद्ध माना गया है। नारायणीय उपाख्यान (१२ २६ ७२ १२ ३ ६) तथा हरिवंश पुराण (१ ४१) में वाराह का सम्बन्ध विष्णु से माना गया है। मत्स्य कूर्म और वाराह के सम्बन्ध में परवर्ती पुराणों की रचना हुई जिसमें इन्हें विष्णु का अवतार कहा गया है। विष्णु पुराण में नृसिंह (१ १६) की कथा आयी है और परशुराम (? १८) को विष्णु का अवतार कहा गया है।[2]

प्राचीनतम साहित्य में अवतारवाद का जो स्वरूप मिलता है उसमें अलौकिकता का अंश सर्वाधिक है। अवतारों की कथाएँ अलौकिकता विशिष्ट पराक्रम [illegible] मायाशक्ति से संयुक्त हैं। किन्तु राम अवतार की पूजा की चर्चा

१—अथ यद् विषितो भवति तद् विष्णुर्भवति। विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा। यास्क निरुक्त १२।१९।

—डा० बुल्के रामकथा—पृ [illegible]—१७।

निर्देश नहीं है। कृष्णावतार के साथ अवतारवाद के विकास क्रम में नये युग का समारम्भ हुआ। इस युग में अवतारवाद में भक्ति-तत्व का समावेश प्रारम्भ हुआ। भक्ति तत्व के समावेश से अवतारों के स्वरूप में क्रमशः परिवर्तन होता गया और उनके आदर्श चरित्र की प्रतिष्ठा संभव हो सकी। इस मणिकांचन योग का समग्र भारतीय चेतना तथा जनजीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा और भक्ति-तत्व समन्वित अवतारवाद का विकास और विस्तार शताब्दियों तक निरंतर होता रहा।

अवतारवाद का यह विकास भारत में बौद्ध धर्म के उदय के साथ संबद्ध माना जाता है। विद्वानों का मत है कि प्राचीन यज्ञ प्रधान धार्मिक व्यवस्था तथा कर्म काण्ड की विपुलता की प्रतिक्रिया के रूप में सरल एवं सार्वजनीन धार्मिक व्यवस्थाओं का जन्म हुआ। उसी क्रम में बौद्ध धर्म तथा भागवत धर्म का उदय माना जाता है। भागवत धर्म सात्वत जाति में प्रचलित था। कृष्ण भागवतों के इष्ट देव थे। भागवत धर्म की यह विशेषता थी कि इसमें वेद निन्दा का स्थान नहीं मिला था। यही कारण है कि कालान्तर में ब्राह्मण धर्म और भागवत धर्म को अपने अधिक निकट पाकर ब्राह्मणों ने भागवतों के इष्टदेव वासुदेव कृष्ण को विष्णु का अवतार मान लिया और दोनों धर्मों का धीरे धीरे समन्वय हो गया। वासुदेव कृष्ण और विष्णु की अभिन्नता का क्रम सम्भवतः ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से आरम्भ हुआ। ब्राह्मण धर्म और भागवत धर्म के समन्वय से अवतारवाद का अत्यधिक प्रसार हुआ। विष्णु अवतारवाद की भावना के केन्द्र बन गये और उनका स्थान सर्वोपरि माना गया। अन्य अवतार विष्णु से अभिन्न मान लिये गये।

भागवत धर्म—कृष्णावतार के साथ अवतारवाद में भक्ति तत्व का समावेश हुआ। भक्ति का उद्गमस्थल वेद हैं। डा० बलदेव उपाध्याय ने वेदों की स्तुतियों में अनुरागमूलक भक्ति का अस्तित्व सिद्ध किया है। वेदों में जो भक्ति बीजरूप में वर्तमान था वह भागवत धर्म में पल्लवित और विकसित हुई। भक्ति के विकास का यह प्रथम युग लगभग दो सहस्र वर्ष का माना गया है। दो हजार वर्ष ईसा पूर्व में सात्वतों के उदय से लेकर ईसा की प्रथम शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गुप्त नरेशों के समय तक इस भक्ति का विकास होता रहा। मथुरा के निकटवर्ती प्रदेश में सात्वत जाति का निवास था जिसमें भागवत धर्म का विकास हुआ। श्रीकृष्ण

१—डा० ... चौधरी—अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट ...।
२—डा० बलदेव उपाध्याय—भागवत धर्म पृ० ६ ...।

इसी सात्वत जाति में उत्पन्न हुए थे। इस जाति के लोग शूरसेन मण्डल में रहते थे पर पश्चिम समुद्र तट पर भी बसे और विन्ध्य तथा दक्षिण की ओर गये। सात्वत जाति के सम्पर्क के कारण दक्षिण में आगे चलकर वैष्णव धर्म का विकास हो गया। पाणिनि (६०० ई० पू०) के वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् (४।३।९८) सूत्र से उनके समय में भागवत सम्प्रदाय के विकास की सूचना मिलती है। पतंजलि (वि० पू० द्वितीय शतक) ने शिव भागवत नामक शैव धर्म का उल्लेख किया है जिससे ज्ञात होता है कि भागवत धर्म इस समय सर्वमान्य था और अन्य धर्म के लोग अपने धर्म की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए अपने साथ भागवत शब्द का प्रयोग करते थे। बेसनगर (ई० पू० २००) के शिलालेख से पता चलता है कि शुंगवंशी राजा भागभद्र की राजसभा में यवन दूत हेलियोडोरस अपने को भागवत कहता था और उसने वासुदेव की प्रतिष्ठा में गरुड़ स्तम्भ का निर्माण कराया था। मथुरा के महाक्षत्रप शोडास (ई० पू० ८०–ई० पू० ५७) के समय के दानपत्र एवं शिलालेख से मथुरा में जन्म स्थान में एक मन्दिर के निर्माण की भी सूचना मिलती है। गुप्त नरेशों के नाम के साथ परम भागवत शब्द का प्रयोग होता था। भागवत धर्म, सात्वत धर्म, एकान्तिक धर्म तथा पांचरात्र धर्म के नाम से भी जाना जाता है।

रामावतार की प्रतिष्ठा—भागवत धर्म तथा ब्राह्मण धर्म के समन्वय से वैष्णव धर्म का विकास हुआ। इसमें श्रीकृष्ण को विष्णु से अभिन्न माना गया और भक्ति भावना उन्हीं में केन्द्रित हो गयी। अन्य अवतार भी कालान्तर में विष्णु से अभिन्न माने जाने लगे। इनमें दाशरथि राम सबसे अधिक महत्वपूर्ण थे। राम का आदर्श चरित्र समाज में लोकप्रिय था। आदिकाव्य के प्रचार के साथ राम चरित्र का प्रचार भी बढ़ता गया। राम के चरित्र में आदर्श तत्व सन्निहित होने के कारण लोक में उनकी प्रतिष्ठा हुई और राम अवतार के रूप में पूज्य हुए। राम के अवतार की भावना कब उत्पन्न हुई इस सम्बन्ध में काल निर्धारण करना कठिन है। अवतार की भावना के साथ ही रामभक्ति की उत्पत्ति भी मानी जानी चाहिए। यह समय प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के पश्चात् नहीं हो सकता। वाल्मीकि रामायण में राम के अवतार होने का उल्लेख है। रावण वध के उपरान्त देवगण अवतार के रूप में उनकी स्तुति करते हैं। वाल्मीकि रामायण में जिन स्थलों पर रामावतार का उल्लेख हुआ है उन्हें डाक्टर याकोबी ने प्रक्षिप्त माना है।[1] वाल्मीकि रामायण में रामभक्ति का भी स्पष्ट उल्लेख हुआ है। उत्तरकाण्ड में स्वर्गारोहण के समय हनुमान ने राम से तीन वर माँगे थे—राम चरणों में अनन्य भक्ति, रामकथा प्रचलित रहने तक आयु की प्राप्ति तथा

1—डाक्टर याकोबी—रामायण—पृ० १६०।

नित्य रामकथा श्रवण।[1] इसके अतिरिक्त विभीषण के शरण में जाने पर प्रपत्ति सम्बन्धी राम के वाक्य को सम्प्रदाय भक्ति में है। भक्ति के आन्दोलन में यह वाक्य बीज रूप में ग्रहीत हुआ है। वाल्मीकि रामायण के पश्चात महाभारत में रामावतार का वर्णन कई स्थलों पर आया है। प्राचीन पुराण हरिवंश वायु मत्स्य ब्रह्माण्ड विष्णु तथा भागवत पुराणों में अवतारों की जहाँ चर्चा आयी है वहाँ रामावतार की भी उल्लेख हुआ है।

पुराणों के अतिरिक्त प्राचीन काव्यों में रामावतार का वर्णन हुआ है। भास कृत अभिषेक नाटक में राम को विष्णु का और सीता को लक्ष्मी का अवतार कहा गया है। प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व में कालिदास ने रघुवंश में राम का वर्णन विष्णु तथा परब्रह्म के रूप में किया है।[5] कालिदास के समय में रामभक्ति का प्रचार हो चुका था और राम से सम्बन्धित स्थान तीर्थ माने जाने लगे थे। मेघदूत में रामगिरि के वर्णन से यह स्पष्ट है। कवि कुमारदास कृत जानकी हरण तथा हनुमन्नाटक में राम के

१—स्नेहो मे परमो राजस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ॥ वा रा उ का ४ १५

२—सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥ वा रा यु का १८ ३३

—अयं दाशरथिर्वीरो रामो नाम महाबल।
विष्णुर्मानुष्यरूपेण चचार वसुधामिमाम (महाभारत आ प १४७
२२)

ततः रामायणं पुण्यं भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते। वही स्वर्गारोहण प्र १८ ६
सन्धौ तु समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च।
रामो दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामि जगत्पतिः ॥ वही शान्ति पर्व १२ ८८

४—इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम्।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषीं तनुमास्थिता। अभिषेक नाटक ॥

५—अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमान।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच ॥ (रघुवंश १ ।१)

—तस्याचल जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥ पूर्वमेघ १॥
आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं।
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ॥ पूर्व मेघ १२॥

अवतारी रूप का वर्णन है। माघ आदि कवियों में यह परम्परा देखी जा सकती है जो परवर्तीकाल में संस्कृत तथा आधुनिक भाषाओं के कवियों में चलती रहा।

शिल्प में रामकथा—राम भक्ति के प्रचार तथा राम सम्बन्धी स्थलों की तीर्थ रूप में मान्यता की सूचना दी जा चुकी है। राम की पूजा के प्रचार के साथ राम मन्दिरों तथा उनकी मूर्तियों के निर्माण का भी प्रचार हुआ। पाणिनि की अष्टाध्यायी के एक सूत्र में कुवेर राम तथा केशव के विग्रह का वर्णन है।[1] इस सूत्र में तात्पर्य राम से तात्पर्य है इस सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं है। पुराणों में राम मूर्तियों का स्पष्ट वर्णन मिलता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण (चौथी शताब्दी) में राम मूर्तियों के निर्माण के नियम दिये गये हैं। वराहमिहिर (पाँचवी शताब्दी) ने वृहत् संहिता में राम मूर्तियों का वर्णन किया है। मत्स्यपुराण तथा अग्निपुराण में राम के विग्रह का वर्णन है। गुप्त काल में रामोपासना का व्यापक प्रचार था। चन्द्रगुप्त (द्वितीय) की पुत्री और वाकाटक राजमहिषी प्रभावती गुप्त भगवान रामगिरि स्वामिन की उपासिका थी।[2] गुप्त सम्राटों में एक नाम रामगुप्त था जिससे रामनाम के प्रचलन की सूचना मिलती है। गुप्तकालीन एक मूर्ति भी प्राप्त हुई है जिसमें शरण में आये विभीषण को राम राजतिलक कर रहे हैं।[3]

गुप्तकाल में रामकथा का अंकन भारतीय शिल्प में हुआ था इसके पर्याप्त प्रमाण हैं। झाँसी जिले में ललितपुर के निकट देवगढ़ के विष्णु मन्दिर में रामायण के दृश्य अंकित किये गये हैं। इस मन्दिर का निर्माण काल छठी शताब्दी है। मन्दिर की चौकी तथा स्तम्भों पर रामायण के ग्यारह दृश्य अंकित हैं। ये दृश्य इस प्रकार हैं—वाल्मीकि आश्रम अहल्योद्धार वन-गमन अत्रि मुनि के आश्रम में राम शूर्पणखा की दुर्गति दण्डक वन में राम सीताहरण राम और हनुमान ऋष्यमूक पर राम भरत सुग्रीव किष्किन्धा में राम बालि-सुग्रीव युद्ध सीता का रावण अनुनय अशोकवाटिका में सीता और मूलमजावनी। इस प्रकार यहाँ रामचरित्र के विविध दृश्यों का चित्रण अंकित हुआ है।[4] इसके बाद का रघुनाथ मन्दिर अति प्रसिद्ध है। इसका

१—प्रमाण पर्वादिगमकुशावानाम्—अष्टाध्यायी ।[illegible]।३। ६

२—अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट—पृ० १७६

३—दयाराम साहनी कैटलाग आफ दि म्यूजियम आफ आर्कियालाजी एट सारनाथ—पृ० [illegible]०

४—भोलानाथ सिंह—स्कन्द और स्थापत्य में रामायण सम्बन्धी दृश्य—मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ८[illegible]

निमाण काल आठवा शताब्दी माना गया है। मन्दिर के प्रांगण म पौराणिक दृश्यो म कुछ दृश्य रामायण के भी है। रामकथा सम्बन्धी दृश्य इस प्रकार हैं—गंगावतरण रावण का तप निर्दिष्ट दस सिरो की आहुति रावण द्वारा कैलास उठान का दृश्य सीताहरण बालि-सुग्रीव युद्ध और बालि-वध। सौराष्ट्र म प्रभासपाटन के निकट कदवार नामक स्थान म एक प्राचीन वाराह मन्दिर है जिसका निर्माण काल सातवा आठवा शताब्दी माना गया है। इस मन्दिर म धनुधर राम की भव्य मूर्ति है। इसी प्रकार शामलाजी के प्राचीन मन्दिर म दो पट्टिकाओ पर रामकथा के दृश्यो का अंकन हुआ है। एक पट्टिका म सप्ततालवध का दृश्य है और दूसरी म दशरथ-कैकेयी कनक मृग मारीच का वध रेखा के भीतर सीता और उसके बाहर रावण पंचवटी म तथा सीताहरण के दृश्य अंकित है। इस गुजरात म रामकथा का सबसे प्राचीन शात चित्रण बताया गया है। पुरातात्त्विक खोजो के साथ शिल्प म रामकथा सम्बधी नवीन सामग्री उपलब्ध होती जा रही हैं।

संग्रहालयो म मुख्यत राजस्थान के संग्रहालयो म शिल्प म अंकित रामकथा सम्बधी प्रचुर सामग्री मिलती है। इनके सम्बध म खोज की अपेक्षा है। जयपुर रामनिवासोद्यान संग्रहालय म एक प्रस्तर शिला है जिस पर रावण द्वारा कैलास उठाने का दृश्य अंकित किया गया है। जोधपुर संग्रहालय म एक द्वार स्तम्भ है जिस पर धनुधर द्विभुज राम की प्रतिमा है। कन्नौज म नीलकंठ महादेव का एक मंदिर है जिसका निर्माण दसवी शताब्दी समझा जाता है। इस मन्दिर की छत के नीचे रामकथा के दृश्य उत्कीर्ण हैं। दृश्य इस प्रकार हैं—हनुमान का पवन उठाना हनुमान पवन किसी को दे रहे है कई वानर खड़े है सुग्रीव बालि युद्ध अशोक के पास म राम बालि पर राम का शरसंधान और कनकमृग। किराडू के मंदिरो म सोमेश्वर देवालय के गर्भगृह म रामकथा के दृश्य उत्कीर्ण है जो इस प्रकार हैं—बालि-सुग्रीव युद्ध सेतुबंध और अशोकवाटिका म सीता। धौलपुर के निकट वाल्मीकि गुफा तथा एक प्राचीन दुर्ग की प्राचीर से शिलाएं प्राप्त हुई है जिन पर रामकथा उत्कीर्ण है। भारतीय शिल्प म रामकथा सम्बधी प्रभूत सामग्री प्राचीन मन्दिरो अवशेषो तथा संग्रहालयो म मिलती है। इनके सम्बध म खोज की आवश्यकता है। इसी परम्परा की एक कड़ी हम मध्यकालीन इतिहास म राम-सीय सिक्को म मिलती है जिन्हें सम्राट अकबर ने चलाया था। इन सिक्को पर एक ओर राम-सीता का चित्र अंकित है और दूसरी ओर सिक्के का प्रचलन काल। इन प्रमाणो

१—डा० गलेन्द्र अग्रवाल राजस्थान के शिलालेखो म रामकथा।
—डा० भगवती प्रसाद सिंह—रामभक्ति म रसिक सम्प्रदाय—पृ० १११ १२।

से यह स्पष्ट है कि देश के विभिन्न भागों में रामोपासना का प्राचीनकाल से ही व्यापक प्रचार था।

दक्षिण में रामभक्ति आलवार तथा वैष्णव आचार्य—रामभक्ति के क्रमिक विकास की सुशृंखला इतिहास सर्वप्रथम दक्षिण में मिलता है। ईसा की प्रथम सहस्राब्दी के उत्तरार्द्ध में दक्षिण में वैष्णव सन्तों तथा वैष्णव आचार्यों ने भक्ति का प्रचार किया। यह क्रम आगे चलता रहा। वैष्णव सन्तों को आलवार अर्थात् भगवत् भक्ति रस में लीन व्यक्ति कहा जाता है। इन सन्तों ने भक्ति का प्रचार जन साधारण में किया। आचार्यों ने भक्ति का शास्त्रसम्मत रूप प्रस्तुत किया और भक्ति को शास्त्रीय पीठ पर प्रतिष्ठित किया। भाव प्रवण एवं शास्त्रीय मर्यादा-युक्त इस भक्ति का विकास दक्षिण में पाँच सौ से अधिक वर्षों तक होता रहा और इसने समाज के बहुत बड़े भाग को प्रभावित किया।

आलवार सन्तों की भक्ति की चर्चा करते हुए डा० दीनदयालु गुप्त ने लिखा है—"आलवार भक्त सांसारिक विषयों को अनित्य कहते थे। इनका विचार था कि भक्ति के साधन और प्रपत्तिपूर्ण आत्मसमर्पण द्वारा संसार के आवागमन से मुक्ति तथा विष्णु भगवान का सम्मिलन मिलता है। वे केवल विष्णु के ही उपासक एकान्तिक धर्म को मानने वाले थे। वे विष्णु को वासुदेव नारायण भगवद् पुरुष आदि नामों से पुकारते थे। उनके मतानुसार भगवान विष्णु नित्य अनन्त और अखण्ड हैं। वे सत चित और आनन्द स्वरूप हैं। और जीवों पर कृपा कर अवतार भी लेते हैं। परन्तु अवतार लेने पर भी उनकी अनन्त अनादि और सतत सत्ता ज्यों की त्यों रहती है। वे मूर्तरूप में भी अवतार लेते हैं। राम और कृष्ण उन्हीं के रूप हैं। कृष्ण की आनन्द लीलाओं के रूप में वह विष्णु जीवों को आनन्द दान देता है। गोपियों के साथ लीलाओं द्वारा वह पूर्णब्रह्म की अनुभूति कराता है। आलवार भक्त विष्णु तथा उनके अवतार कृष्ण और राम की भक्ति वात्सल्य दास्य तथा कान्ताभाव से करते थे जिन भावों पर उन्होंने अनेक गीत लिखे हैं। उनके विचारानुसार भगवद् भक्तों की सेवा भी भगवान की सेवा का अंग है। भक्ति के अन्तर्गत प्रपत्ति को उन्होंने बड़ा स्थान दिया था। उनका विश्वास था कि विष्णु भगवान की कृपा उनके प्रति प्रेम और आत्मसमर्पण से मिलती है। सबसे बड़ी बात इस धर्म की यह थी कि आलवारों का यह धर्म सभी जाति और सभी वर्णों के मनुष्यों के लिए सुगम हुआ था।"[1]

1—डा० दीनदयालु गुप्त—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १ पृ० ३८।

निर्माण काल आठवीं शताब्दी माना गया है। मन्दिर के प्रांगण में पौराणिक दृश्यों में कुछ दृश्य रामायण के भी हैं। रामकथा सम्बन्धी दृश्य इस प्रकार हैं—गंगावतरण, रावण का तप, निर्झरिणी का गिरना, आकृति, रावण द्वारा कैलाश उठाने का दृश्य, सीताहरण, बालि-सुग्रीव युद्ध और बालि-वध। सौराष्ट्र में प्रभासपाटन के निकट कदवार नामक स्थान में एक प्राचीन वाराह मन्दिर है जिसका निर्माण काल शताब्दी आठवीं शताब्दी माना गया है। इस मन्दिर में धनुर्धर राम की भव्य मूर्ति है। इसी प्रकार शामलाजी के प्राचीन मंदिर में दो पट्टिकाओं पर रामकथा के दृश्य का अंकन हुआ है। एक पट्टिका में सप्तताल-वध का दृश्य है और दूसरी में दशरथ-कैकेयी, कनक मृग मारीच का वध, रेखा के भीतर सीता और उसके बाहर रावण पंचवटी में तथा सीताहरण के दृश्य अंकित हैं। इसे गुजरात में रामकथा का सबसे प्राचीन ज्ञात चित्रण बताया गया है। पुरातात्विक खोजों के साथ शिल्प में रामकथा सम्बन्धी नवीन सामग्री उपलब्ध होती जा रही है।

संग्रहालयों में मुख्यतः राजस्थान के संग्रहालयों में शिल्प में अंकित रामकथा सम्बन्धी प्रचुर सामग्री मिलती है। इनके सम्बन्ध में खोज की अपेक्षा है। जयपुर रामनिवासोद्यान संग्रहालय में एक प्रस्तर मिला है जिस पर रावण द्वारा कैलाश उठाने का दृश्य अंकित किया गया है। जोधपुर संग्रहालय में एक द्वार स्तम्भ है जिस पर धनुर्धर त्रिभुज राम की प्रतिमा है। मेकीन्द में नीलकंठ महादेव का एक मन्दिर है जिसका निर्माण दसवीं शताब्दी समझा जाता है। इस मन्दिर की छत के नीचे रामकथा के दृश्य उत्कीर्ण हैं। दृश्य इस प्रकार हैं—हनुमान का पर्वत उठाना, हनुमान पर्वत किसी को दे रहे हैं, कई वानर खड़े हैं, सुग्रीव-बालि युद्ध, जटायु के पार्श्व में राम, बालि पर राम का शरसंधान और कनकमृग। किराडू के मन्दिरों में सोमेश्वर देवालय के गर्भगृह में रामकथा के दृश्य उत्कीर्ण हैं जो इस प्रकार हैं—बालि-सुग्रीव युद्ध, सेतुबंध और अशोकवाटिका में सीता। धौलपुर के निकट वाल्मीकि गुफा तथा एक प्राचीन दुर्ग की प्राचीर में शिलाएं प्राप्त हुई हैं जिन पर रामकथा उत्कीर्ण है। भारतीय शिल्प में रामकथा सम्बन्धी प्रभूत सामग्री प्राचीन मन्दिरों, अवशेषों तथा संग्रहालयों में मिलती है। इनके सम्बन्ध में खोज की आवश्यकता है। इसी परम्परा की एक कड़ी हम मध्यकालीन इतिहास में राम-सीताय सिक्कों में मिलती है जिन्हें सम्राट अकबर ने चलाया था। इन सिक्कों पर एक ओर राम-सीता का चित्र अंकित है और दूसरी ओर सिक्के का प्रचलन काल। इन प्रमाणों

१—देखिए रतनचन्द्र अग्रवाल : राजस्थान की शिलाओं में रामकथा।
—डा० भगवती प्रसाद सिंह—रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—पृ० १११, १२।

से यह स्पष्ट है कि देश के विभिन्न भागों में रामोपासना का प्राचीनकाल से ही व्यापक प्रचार था।

दक्षिण में रामभक्ति आलवार तथा वैष्णव आचार्य—रामभक्ति के क्रमिक विकास का सुशृंखला इतिहास सर्वप्रथम दक्षिण में मिलता है। ईसा की प्रथम सहस्राब्दी के उत्तरार्द्ध में दक्षिण में वैष्णव सन्तों तथा वैष्णव आचार्यों ने भक्ति का प्रचार किया। यह क्रम आगे चलता रहा। वैष्णव सन्तों को आल्वार अर्थात् भगवत् भक्ति रस में लीन व्यक्ति कहा जाता है। इन सन्तों ने भक्ति का प्रचार जन साधारण में किया। आचार्यों ने भक्ति को शास्त्रसम्मत रूप प्रस्तुत किया और भक्ति को शास्त्रीय पीठ पर प्रतिष्ठित किया। भाव प्रवण एवं शास्त्रीय मर्यादा युक्त इस भक्ति का विकास दक्षिण में पाँच सौ से अधिक वर्षों तक होता रहा और इसने समाज के बहुत बड़े भाग को प्रभावित किया।

आल्वार सन्तों की भक्ति की चर्चा करते हुए डा० दीनदयालु गुप्त ने लिखा है—'आल्वार भक्त सांसारिक विषयों को अनित्य कहते थे। इनका विचार था कि भक्ति के साधन और प्रपत्तिपूर्ण आत्मसमर्पण द्वारा संसार के आवागमन से मुक्ति तथा विष्णु भगवान का सम्मिलन मिलता है। वे केवल विष्णु के ही उपासक एकान्तिक धर्म को मानने वाले थे। वे विष्णु को वासुदेव नारायण भगवद् पुरुष आदि नामों से पुकारते थे। उनके मतानुसार भगवान विष्णु नित्य अनन्त और अखण्ड हैं। वे सत् चित और आनन्द स्वरूप हैं। और जीवों पर कृपा कर अवतार भी लेते हैं। परन्तु अवतार लेने पर भी उनकी अनन्त, अनादि और सतत सत्ता ज्यों की त्यों रहती है। वे मूर्तरूप में भी अवतार लेते हैं। राम और कृष्ण उन्हीं के रूप हैं। कृष्ण का आनन्दमय आत्मा के रूप में वह विष्णु जीवों को आनन्द दान देता है। गोपियों के साथ लीलाओं द्वारा यह पूर्णब्रह्म की अनुभूति कराता है। आल्वार भक्त विष्णु तथा उनके अवतार कृष्ण और राम की भक्ति वात्सल्य दास्य तथा कान्ताभाव से करते थे जिन भावों पर उन्होंने अनेक गीत लिखे हैं। उनके विचारानुसार भगवद् भक्तों की सेवा भी भगवान की सेवा का अंग है। भक्ति के अन्तर्गत प्रपत्ति को उन्होंने बड़ा स्थान दिया था। उनका विश्वास था कि विष्णु भगवान की कृपा उनके प्रति प्रेम और अनन्य समर्पण में मिलती है। सबसे बड़ी बात इस धर्म की यह थी कि आल्वारों का यह धर्म सभी जाति और सभी श्रेणी के मनुष्यों के लिए सुलभ हुआ था।'[1]

१—डा० दीनदयालु गुप्त—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १ पृ० ३८।

आल्वार संत अनेक हुए किन्तु उनमें बारह प्रमुख हैं। इनके तमिल नाम ये हैं—पोयगै आल्वार भूतत्ताल्वार पेयाल्वार तिरुमलिसै आल्वार नम्माल्वार (पराङ्कुश मुनि) पेरि आल्वार आण्डाल (रंगनायकी) तोण्डर डिप्पोडि (विप्र नारायण) तिरुप्पन तिरुमंगैयाल्वार। आल्वारों के संस्कृत नाम ये हैं—सरो योगिन भूत योगिन महत योगिन भक्तिसार शठकोप विष्णु चित्त गोदा भक्त पदरेणु योगवाहन परकाल (नीलन)। इनके अतिरिक्त मधुर कवि और कुलशेखर आल्वार हुए। इन आल्वार संतों का समय सामान्यतः पाँचवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक माना जाता है। इस युग में इन भक्तिरस सिक्त संतों ने भगवान की लीला का गान मधुर पदावली में किया। तमिल भाषा में निबद्ध इनकी रचनाओं का संग्रह नालायिर प्रबन्धम (चतुःसहस्र पद) अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इन पदों में भगवान विष्णु तथा उनके अवतारों के प्रति भक्ति और आत्म समर्पण की भावना पायी जाती है। इन संतों ने विष्णु के अवतार कृष्ण को प्रमुखता दी है किन्तु राम का उल्लेख आरम्भ के आळवार संतों के पदों में आया है और परवर्ती आल्वारों की रचनाओं में निरंतर मिलता है। इनमें पाँचवें आल्वार शठकोप थे जिन्हें नम्माल्वार भी कहा जाता है। इनकी सहस्रगीति में राम के प्रति आत्मसमर्पण की भावना सरस पदों में व्यक्त हुई है— दशरथस्य सुतं तं विना अन्य शरणं वान्नास्मि।[1] इन्होंने रामस्मृति की स्तुति भी की है। नवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कुलशेखर आल्वार हुए। इनकी रचना में भी रामभक्ति मिलती है। ये केरल देश के राजा थे। इनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि ये सतत भक्ति में निमग्न रहते थे। एक बार ये रामायण की कथा सुन रहे थे। प्रसंग था राम-खरदूषण युद्ध। व्यास ने ज्योंही श्लोक पढ़ा— चतुर्दश सहस्राणि राक्षसां भीमकर्मणाम् एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धं करिष्यति। त्योंही भाव में निमग्न कुलशेखर ने तुरंत अपने सेनापति को राम की सहायता के लिए सेना सहित युद्ध करने का आदेश दिया। व्यास ने राजा को आश्वासन दिया कि राम ने निमिष मात्र में राक्षस सेना संहार कर दिया तब कुलशेखर को शान्ति मिली। इनकी चर्चा नाभादास ने भी भक्तमाल के रूप में की है। कुलशेखर

१—सहस्रगीति ।६।८

२—भक्तमाल—छप्पय ८८

कुलशेखर ... प्रवर मानाचार वाल। । मार मार करि खड्ग वाजि सागर में शाना। नरसिंह को अनुकरण ... ग्रिनाकुस मान्या।
कह नसा ... राम विप्रन तन छाया।

विरक्त हो गये थे और राजकार्य छोड़ कर श्रीरंगम में भगवान रंगनाथ का भजन करते थे। उनकी रचना मकुन्दमाला वैष्णवों की प्रिय स्तुति रही है। कुलशेखर के अधिकांश पद कृष्ण से संबंधित हैं किन्तु उनकी रचनाएं रामावतार के सम्बन्ध में भी हैं। इनकी रचनाओं में कोमल रामभक्ति अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। कुलशेखर रामायण को वेदों के समान पूज्य मानते थे।[1]

आल्वार संतों के अनन्तर दक्षिण में आचार्यों का आविर्भाव हुआ। इन संस्कृतज्ञ आचार्यों ने विष्णु भक्ति का प्रचार किया। आचार्यों ने आल्वारों की भक्ति और वेदान्त प्रतिपादित ज्ञान का समन्वय किया। तमिल वेद और संस्कृत वेद का अध्ययन कर उन्होंने दोनों में सामंजस्य स्थापित किया। ये लोग उभय वेदान्ता कहे जाते थे। उन्होंने मायावाद का खण्डन करके भक्तिवाद की प्रतिष्ठा की। इनमें अग्राचार्य रंगनाथ मुनि (८२४-९२४ ई०) हुए। ये शठकोपाचार्य की परम्परा में थे। शठकोप मधुर कवि, परांकुश मुनि नाथमुनि। उन्होंने आल्वारों के तमिल वेद का पुनरुद्धार किया और श्रीरंगम के मंदिर में भगवान के सामने गायन की व्यवस्था की। अनन्तर पुंडरीकाक्ष राममिश्र तथा यामुनाचार्य (आलवन्दार) वैष्णव आचार्य हुए। यामुनाचार्य ने सरस स्तुतियां की—जिनमें आत्म समर्पण की उत्कट भावना मिलती है रचना का जो आलवन्दार स्तोत्र के नाम से प्रसिद्ध है। यामुनाचार्य के बाद आचार्य श्री रामानुजाचार्य हुए (१०१७-११३७ ई०)। उन्होंने विशिष्टाद्वैत मत प्रतिपादित किया। उनके इष्ट थे लक्ष्मीनारायण। रामानुज ने पांडित्यपूर्ण ग्रन्थों की रचना कर वैष्णव धर्म को पुष्ट शास्त्रीय पीठ पर आसीन किया। इसी परम्परा में आगे चलकर राघवानन्द और रामानन्द हुए जिन्होंने इस मत का उत्तर भारत में प्रचार किया। रामानुज ने स्वयं रामभक्ति के सम्बन्ध में विशेष नहीं लिखा है किन्तु उन्होंने श्री भाष्य में विभवों अर्थात् अवतारों में राम तथा कृष्ण का विशेष उल्लेख किया है।[2] रामानुज सम्प्रदाय में पहले पहल रामपूजा का शास्त्रीय निरूपण किया गया और वैष्णव संहिताओं तथा उपनिषदों का निर्माण किया गया। इस सम्प्रदाय में राम के प्रति दास्य भक्ति का प्रतिपादन करने वाली निम्नलिखित वैष्णव संहिताओं का उल्लेख मिलता है—अगस्त्य संहिता, वशिष्ठ राघव, बृहद्राघव और राघवीय संहिता। रामभक्ति सम्बन्धी तीन उपनिषद रामपूर्व

१—वेदतुल्यमिदं साक्षात् श्री रामायण परम्।
  कार्यं सर्वं तदनुतया भगवान कुलशेखर। प्रपन्नामृत, पृ० २७८

२—श्री भाष्य—२ २ ४२

तापनीय रामोत्तरतापनीय तथा रामरहस्योपनिषद्-मुख्य हैं। इनमें राम को परब्रह्म से अभिन्न माना गया है। इनके अतिरिक्त रामोपासना सम्बन्धी ग्रन्थों की भी रचना हुई जिनका उल्लेख मिलता है और कुछ रचनाएँ मुद्रित भी हैं। भगवत गीता के अनुकरण पर रचित रामगीता ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इनमें राम के परब्रह्मत्व का प्रतिपादन है। इन रचनाओं का काल निर्धारित करना सम्भव नहीं है क्योंकि इनका अभी सम्यक अध्ययन नहीं हो सका। वैष्णव आचार्यों के प्रयास से दक्षिण में भक्ति का आधार पुष्ट हो गया और भक्ति मार्ग का अभूतपूर्व बल मिला। आगे चलकर दक्षिण देश से ही भक्ति का प्रचार उत्तर भारत में हुआ जहाँ इसका नेतृत्व रामानन्द ने किया। कतिपय विद्वानों ने रामकथा पर कृष्णकथा के प्रभाव की चर्चा की है और रसिक साधना पर प्रकाश डाला है। इस सम्बन्ध में आद्याचार्य स्वामी अग्रदास के सम्बन्ध में आगे चर्चा की जायगी।

(ग) रामकाव्य परम्परा विकास के सोपान

भारतीय परम्परा में वेद अपौरुषेय कहे गये हैं। वैदिक साहित्य में समग्र ज्ञान के निहित होने की मान्यता अनादि काल से चली आ रही है। इसी के अनुसार प्राचीन काल से वेदों में रामकथा के अस्तित्व का उल्लेख भारतीय साहित्य में होता रहा है। वैदिक साहित्य में रामकथा के पात्रों के नाम अवश्य मिलते हैं। किन्तु उनके परस्पर सम्बन्ध अथवा रामकथा से उनके सम्बन्ध का निर्देश नहीं मिलता। अस्तु आधुनिक शोधकर्ताओं ने वैदिक साहित्य में रामकथा का अभाव सिद्ध किया है।

रामकथा सम्बन्धी साहित्य की रचना सर्वप्रथम इक्ष्वाकु वंश के सूत मागध आख्यान काव्य के रूप में हुई थी। आख्यान काव्य बहुत दिनों तक सूतों की परम्परा में चलते रहे। इन स्फुट आख्यान काव्यों को लेकर वाल्मीकि ने सर्व प्रथम प्रबन्ध काव्य की रचना की। यह आदिकाव्य रामकथा सम्बन्धी मूल ग्रन्थ है। इसे समस्त परवर्ती राम साहित्य का आधार माना गया है। वाल्मीकि रामायण में भी ऋषियों ने इसे अन्य कवियों का आधार ग्रन्थ कहा है। इस आशय की सूचना हम उद्धम

१—डा० भगवतीप्रसाद सिंह—राम साहित्य में रसिक सम्प्रदाय।

—इदमुपाख्यानं...सर्वे मनयः...सर्वे। आश्चर्यमिदमाख्यानं मुनिना सम्प्रकीर्तितम्। परं कवीनामाधारं समाप्तं च यथाक्रमम्। अभिगतानिदं गीतं सर्वगीतेषु कोविदौ। —वा० रा० १।४।२०

पुराण में भी मिलती है। वाल्मीकि रामायण को काव्य इतिहास पुराण तथा समस्त संहिताओं का मूल स्थान कहा गया है। रामायण की उत्पत्ति का उल्लेख करते हुए यह पुराण सूचना देता है कि ब्रह्मा ने सरस्वती को कवियों के मुख में कविता शक्ति वतन का वरदान दिया था। क्रौंच वध के अवसर पर सरस्वती ने महर्षि वाल्मीकि के मुख में प्रवेश किया। फलस्वरूप श्लोक की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा ने वाल्मीकि को रामायण की रचना के लिए प्रेरित करते हुए कहा कि रामचरित का निर्माण हो जाने पर लोक के अन्य कवि काव्य रचना में उनका अनुसरण करेंगे। रामायण के आदि काव्य तथा परवर्ती राम साहित्य का आधार ग्रन्थ होने के सम्बन्ध में जो परम्परागत मान्यता चली आ रही है वह सर्वथा सत्य एवं सार्थक है। वाल्मीकि से जो रामकाव्य परम्परा निस्सृत हुई उसका परवर्ती कवियों ने अनुसरण किया और रामचरित का गान कर अपनी वाणी को धन्य किया। परम्परा इस बात की साक्षी है कि आदि काव्य का व्यापक प्रचार हुआ। कुशीलवों द्वारा रामायण के प्रचार की चर्चा आदि काव्य में ही है। इसकी लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ती गयी।

रामायण के पश्चात महाभारत में जो परवर्ती रचना है रामकथा का वर्णन है। इसके अतिरिक्त हरिवंश पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि उस काल में रामकथा के आधार पर रचित नाटकों का अभिनय होता था। यह रामकथा की लोकप्रियता का द्योतक है।

प्राचीन काल से रामकथा की लोकप्रियता को देखकर बौद्धों ने उसे अपनाया। बौद्ध-साहित्य में राम बोधिसत्व माने जाते हैं और रामकथा जातकों में मिलती है। बौद्धों ने रामकथा का विदेशों में प्रचार किया था। अनन्तर काल में बौद्ध साहित्य में रामकथा का उल्लेख नहीं मिलता।

बौद्धों की अपेक्षा जैनियों में रामकथा का अधिक प्रचार हुआ। जैन धर्माचार्यों ने विपुल राम साहित्य की रचना की। इसके अनुसार रामकथा के पात्र जैन महापुरुष बन गये हैं। जैन राम साहित्य की परम्परा ईसवी सन् के आरम्भ में उपलब्ध

१—रामायण महाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम्। तन्मूलं सर्वकाव्यानामिति ब्रह्मपुराणयोः।२८। संहितानाच सर्वासां मूलं रामायणं मतम्।

बृहद्धर्मपुराण अध्याय २

२—कृत त्वया महाकाव्ये आर्थे रामचरित।
लोकश्चानुचरिष्यन्ति कवयोऽन्ये महामुनय।

बृहद्धर्म पुराण—२।४०।

३—रामायण महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकं कृतम् ॥ हरिवंश विष्णुपर्व ६॥

होती है। रामकथा सम्बन्धी रचनाएं संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं में मिलती हैं। इससे रामकथा की व्यापकता एवं लोकप्रियता का परिचय मिलता है। जन साहित्य में रामकथा की परम्परा हिन्दी में आदिकाल से आधुनिक काल तक चली आयी है। इस परम्परा पर आगे विचार किया जायगा।

आदिकाव्य की रचना के साथ जो रामकथा परम्परा आरम्भ हुई उसका पल्लवन संस्कृत धार्मिक साहित्य ललित साहित्य तथा अवान्तरकालीन साहित्य में हुआ। संस्कृत साहित्य के स्वर्णयुग में रामकथा साहित्य विशेष रूप से समृद्ध हुआ। महाकाव्य नाटक तथा साम्प्रदायिक रामायणों की रचना की गयी। यह परम्परा आधुनिक काल तक चली आई है। विभिन्न आधुनिक भाषाओं के साहित्य का आरम्भ प्रायः रामकथा विषयक महाकाव्य से हुआ है यह उल्लेखनीय है।

रामकथा की लोकप्रियता इसी से आंकी जा सकती है कि विदेशों में भी इसका व्यापक प्रचार हुआ। ५ ० ई० तक रामकथा का प्रचार दक्षिण पूर्व एशिया के हिन्द चीन तथा मध्य एशिया के देशों में हो चुका था। चम्पा और कम्बोज में रामायण का अत्यधिक प्रचार था उसे धर्मग्रन्थ माना जाता था और मन्दिरों में उसके पाठ की व्यवस्था की गयी थी। मलय देश तथा जावा में राम साहित्य की रचना हुई। दसवीं शताब्दी की रामायण काकविन जावा में मिलती है। स्याम देश में रामकियन तथा कम्बोडिया में रामकेर्ति की रचना हुई। रामकथा सम्बन्धी नाटक आज भी इंडोनेशिया स्याम तथा ब्रह्म देश में लोकप्रिय है। ९ वीं शताब्दी के तिब्बती तथा खोतानी रामायण भी उपलब्ध हैं।

इसवी सन् के प्रथम सहस्राब्दी के अंत तक रामकथा समग्र भारत तथा विदेशों में अद्वितीय लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी थी। इस साहित्य में रामकथा की दिग्विजय कहा गया है। रामकथा को लेकर विभिन्न शताब्दियों में विपुल साहित्य की रचना की गई। यह विशाल एवं सम्पन्न साहित्य हिन्दी रामभक्त कवियों के सामने था। आदिकाव्य में वाल्मीकि ने जो रामकथा प्रस्तुत की थी वह आदर्श कथा थी। परवर्ती काल में उस कथावस्तु में विशेष परिवर्तन अथवा परिष्कार नहीं किया गया और न इसके लिए अवकाश ही था। केवल धार्मिक भावनाओं की तुष्टि एवं समाधान के लिए कतिपय परिवर्तन किये गये किन्तु कथावस्तु का मूल रूप अक्षुण्ण बना रहा। जैन आचार्यों ने अपने सिद्धान्तों के अनुकूल इस कथा का वर्णन किया है। इन आचार्यों ने अपभ्रंश काल में तथा उसके पश्चात हिन्दी में रामसाहित्य का सृजन किया। ब्राह्मण रामकथा दीर्घकाल तक संस्कृत साहित्य में अपने मूल रूप में चलती रही। अवतारवाद की प्रतिष्ठा तथा

भक्ति के उन्नय के साथ कथा में भक्ति भावना की तुष्टि के उद्देश्य से सामान्य परिवर्तन किये गये। ये परिवर्तन भक्तिकालीन रचनाओं में देखे जा सकते हैं। कृष्णभक्ति का प्रभाव भी राम साहित्य पर पड़ा और रसिक परम्परा के अंतर्गत राम साहित्य का निर्माण हुआ। हिन्दी राम साहित्य में ये तत्व परिलक्षित होते हैं। इनका विवेचन अगले अध्यायों में किया जायगा।

अध्याय २

अपभ्रंश में जैन कवियों द्वारा रचित राम साहित्य

भाषा शास्त्रियों ने मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के उत्तरकालीन विकास को अपभ्रंश की संज्ञा दी है और उसका समय साहित्यिक प्राकृत के पश्चात ५०० ई से १००० ई तक माना है। किन्तु अपभ्रंश में ५ वीं शती के लगभग रचित ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। अपभ्रंश में इस समय जो साहित्य उपलब्ध है उसका समय सातवीं शताब्दी से आरम्भ होता है। इसी की प्रथम सहस्राब्दी के बाद भी अपभ्रंश में रचनाएं होती रहीं। अपभ्रंश का समृद्ध साहित्य युग ईसा की आठवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी तक है। इस अवधि में अपभ्रंश में विस्तृत साहित्य की रचना हुई। स्वयंभू, पुष्पदन्त, धनपाल, धाहिल, धवल, नयनन्दी, कनकामर, रइधू, अब्दुल रहमान, विद्यापति आदि प्रतिभाशाली कवियों ने उत्कृष्ट रचनाएं कीं और अपभ्रंश साहित्य को समृद्ध किया।

अपभ्रंश की पूर्वकालीन अवस्था में अपभ्रंश और प्राकृत में कुछ काल तक साथ-साथ रचनाएं होती रहीं। अनन्तर साहित्य रचना में अपभ्रंश का स्वतन्त्र रूप में प्रयोग होने लगा और उत्तरकालीन अवस्था में अपभ्रंश और आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं में कई शताब्दियों तक समानान्तर रचनाएं होती रहीं। वर्तमान प्रान्तीय *आर्य भाषाओं का विकास अपभ्रंश से हुआ। व्रजभाषा, खड़ीबोली, गुजराती, राजस्थानी* और पंजाबी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से माना जाता है। भोजपुरी, असमिया, बंगला और उड़िया का विकास मागधी अपभ्रंश तथा पूर्वी हिन्दी अवधी का विकास अर्धमागधी से हुआ। अपभ्रंश के साहित्यिक रूप धारण कर लेने पर इन भाषाओं का विकास तत्कालीन प्रचलित बोलियों से हुआ। आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं का आरम्भ काल १००० ई के आसपास माना गया है। ये भाषाएं अपने आदिकाल में विभिन्न अपभ्रंशों से प्रभावित रहीं।

१—ग्रियर्सन लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया—भा १ १
२—डा सुनीतिकुमार चटर्जी ओरिजिन आफ बंगाली लैंग्वेज—भा १
३—डा नामवर सिंह-अपभ्रंश साहित्य—पृ ८-१७

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में वर्तमान अपभ्रंश साहित्य प्राणवान उत्कृष्ट साहित्य के रूप में हमारे सामने आता है। हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों उसके विकास की दिशाओं को समझने के लिए उस साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी की प्राणधारा कहा गया है जो सर्वथा उचित है। संस्कृत प्राकृत साहित्य की परम्पराएं अपभ्रंश में होता हुई हिन्दी साहित्य में आया है। इनके अतिरिक्त लगभग पांच सौ वर्षों के मनद्ध युग में अपभ्रंश साहित्य की अपनी स्वतन्त्र परम्पराएं विकसित हुई। जो हिन्दी साहित्य को रिक्थ के रूप में उपलब्ध हुई। अपभ्रंश साहित्य की गौरवमयी साहित्य परम्परा के विश्लेषण में हिन्दी की परवर्ती साहित्यिक प्रवृत्तियों एवं विकास धाराओं का समुचित आकलन एवं मूल्यांकन सम्भव हो सकेगा उनके पूर्वापर सम्बन्ध का निरूपण किया जा सकेगा तथा उनके क्रमिक विकास की रूपरेखा निर्धारित की जा सकेगी।

पिछले दशकों में पर्याप्त अपभ्रंश साहित्य प्रकाश में आया है। अपभ्रंश साहित्य की सुरक्षा का श्रेय जैन भण्डारों को है। अब भी बहुत से ग्रन्थ इन ग्रन्थागारों में वेष्टित पड़े हुए हैं। अपभ्रंश में विद्वानों के अभिरुचि जगी हुई देख कर भविष्य में नये ग्रन्थों के प्रकाश में आने की पूरी सम्भावना है।

अपभ्रंश साहित्य का निर्माण बौद्ध जैन तथा अन्य कवियों एवं विद्वानों द्वारा हुआ। इसका अधिकांश धार्मिक साहित्य है। हिन्दी के विद्वानों का आरम्भ में यह धारणा थी कि अपभ्रंश साहित्य का अधिकांश धार्मिक होने के कारण वह शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आता। आचार्य शुक्ल ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है— आदिकाल (संवत् १०५० से संवत् १३७५) की इस दीर्घ परम्परा के बीच प्रथम डेढ़ सौ वर्ष के भीतर तो रचना की किसी विशेष प्रवृत्ति का निश्चय नहीं होता है—धर्म नीति शृंगार वीर सब प्रकार की रचनाएं दोहों में मिलती है। इस अनिर्दिष्ट प्रवृत्ति के उपरान्त जब से मुसल्मानों की चढ़ाइयों का आरम्भ होता है तब से हम हिन्दी साहित्य की प्रवृत्ति एक विशेष रूप में बंधती हुई पाते हैं। इसी प्रकार सिद्ध साहित्य की चर्चा करते हुए वे आगे लिखते हैं— उनकी रचनाओं का जीवन की स्वाभाविक सरणियों अनुभूतियों और दशाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे साम्प्रदायिक शिक्षा मात्र हैं। अतः शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आ सकतीं। उन रचनाओं की परम्परा को हम काव्य या साहित्य की कोई धारा नहीं कह सकते। अतः धर्म सम्बन्धी रचनाओं की चर्चा छोड़ अब हम सामान्य साहित्य की जो कुछ सामग्री मिलती है उनका उल्लेख अनेक संग्रहकर्त्ताओं

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २१।

और रचयिताओं के श्रम से करते हैं। अब से तीन दशक पूर्व बहुत थोड़ा अपभ्रंश साहित्य उपलब्ध था। किन्तु आचार्य शुक्ल के इस मानिवार अभिमत का प्रभाव यह हुआ कि जैनों और बौद्धों द्वारा रचित अपभ्रंश साहित्य धार्मिक साहित्य मान लिया गया और उसे हिन्दी साहित्य में स्थान न मिल सका। इधर अपभ्रंश की रचनाओं के प्रकाश में आ जाने से विद्वानों का ध्यान इस साहित्य की ओर पुनः आकृष्ट हुआ है। अधिकांश अपभ्रंश साहित्य की मूल प्रेरणा निस्सन्देह धार्मिक है किन्तु इस साहित्य के अंतर्गत रचनाएं उत्कृष्ट काव्यरूपों में निबद्ध मिलती हैं। वे साहित्य में सर्वथा विवेचनीय हैं। इस प्रकार अपभ्रंश साहित्य के सम्बन्ध में अब तक की हमारी धारणा में परिवर्तन अनिवार्य है। अपभ्रंश साहित्य न केवल हिन्दी साहित्य के अंतर्गत विवेचनीय है वरन अत्यन्त मूल्यवान भी है। वास्तव में अपभ्रंश साहित्य महान साहित्य है। स्वयंभू, पुष्पदन्त, धवल, धनपाल, धाहिल, हेमचन्द्र जैसे महाकवियों एवं विद्वानों ने जिस साहित्य का पोषण किया वह साहित्य स्वतः महिमान्वित है। इस महान साहित्य का अनुशीलन हिन्दी साहित्य के अध्येताओं के लिए अनिवार्य है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में वर्तमान इस साहित्य के उचित मूल्यांकन की अपेक्षा है। साहित्य के इतिहास में उसे उचित स्थान दिया जाना चाहिए और उसकी उचित प्रतिष्ठा होनी चाहिए।

देश के विभिन्न भागों में बौद्ध, जैन तथा अन्य कवियों एवं विद्वानों ने अपभ्रंश साहित्य का निर्माण किया। बौद्धों द्वारा रचित अपभ्रंश साहित्य के अन्तर्गत सिद्धों की रचनाएं आती हैं। इन सिद्धों का क्षेत्र उत्तर तथा पूर्व भारत था। सिद्धों की रचनाएं दोहों तथा पदों में मिलती हैं। इन रचनाओं का संग्रह 'दोहा कोष', 'बौद्ध गान और दोहा', 'चर्यापद' आदि ग्रंथों में किया गया है। सिद्धों का समय ८वीं से बारहवीं शताब्दी तक माना गया है। सिद्ध साहित्य की रचना पूर्वी अपभ्रंश में मुक्तक-काव्य के रूप में हुई है। इनमें कुछ रचनाओं में सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। अन्य रचनाओं में कर्मकाण्ड तथा रूढ़ियों का खण्डन किया गया है। रहस्यवाद, सहजमार्ग, वाह्याचार और रूढ़ियों का विरोध, गुरु महिमा आदि विषयों का समावेश इस साहित्य में किया गया है। सिद्ध साहित्य में राम चरित विषयक सामग्री का अभाव है।

अन्य कवियों की रचनाओं में विद्यापति की कीर्तिलता और अब्दुर रहमान का 'सन्देश रासक' उपलब्ध है। ये लौकिक काव्य हैं, इनकी मूल प्रेरणा धार्मिक नहीं है। विद्यापति का समय संवत् १४१७ से संवत् १५०५ तक माना गया है। कीर्तिलता की रचना उन्होंने महाराज कीर्ति सिंह के नाम पर की थी। इसकी रचना काल संवत् १४६१ ६२ विक्रमी बताया गया है। ग्रंथ में राजा के चरित का

वर्णन चार पल्लवों में किया गया है। कवि अद्दहमाण अथवा अब्दुल रहमान की रचना सन्देश रासक एक खण्डकाव्य है। इसमें २२३ पद हैं जो तीन प्रक्रमों में विभक्त हैं। इस काव्य में लौकिक प्रेम भावना की अभिव्यक्ति मिलती है। इसमें एक विरहिणी एक पथिक द्वारा अपने प्रवासी प्रियतम को सन्देश भेजती है। रचना का समय अनिश्चित है। इसका रचनाकाल ११वीं और १४वीं शताब्दी के बीच माना गया है। जनेतर कवियों की रचनाओं में अपभ्रंश में रामचरित सम्बन्धी रचना की सूचना अभी तक नहीं मिली है। अपभ्रंश में जनेतर बौद्ध तथा अन्य कवियों की रचनाओं का परिमाण स्वल्प है। अपभ्रंश का अधिकांश उपलब्ध साहित्य जैन आचार्यों द्वारा रचित है। इसी साहित्य में रामचरित सम्बन्धी काव्य भी मिलते हैं जिन पर प्रस्तुत परिच्छेद में विचार किया जायगा।

जैन आचार्यों ने अपभ्रंश में विपुल साहित्य की रचना की है। इनका कार्यक्षेत्र पश्चिम भारत विशेषतः गुजरात राजस्थान तथा दक्षिण के प्रदेश रहे हैं। जैन आचार्य निस्पृह विरक्त पुरुष थे। साहित्य रचना का इनका उद्देश्य धार्मिक था। ये समाज में सदाचार तथा जैन धार्मिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिए प्रयत्नशील थे। किन्तु सिद्धों की भाँति इनमें खण्डनात्मक प्रवृत्ति उग्र नहीं थी। ये आचार्य अन्य मतवाद के प्रति सहिष्णु थे और सदाचार के प्रचार से जन साधारण की आध्यात्मिक उन्नति के लिए ये प्रयत्नशील थे। ब्राह्मण धर्मग्रन्थों एवं साहित्य का इन्हें अच्छा ज्ञान था जो इनकी रचनाओं से स्पष्ट है। इन आचार्यों ने संस्कृत एवं प्राकृत में भी उत्कृष्ट रचनाएँ की हैं। जैन आचार्यों ने श्रावकों के अनुरोध पर अपनी रचनाएँ की हैं। इनके अपभ्रंश में रचना करने का यह मुख्य कारण था। श्रावक अधिकांशतः प्रचलित भाषा से परिचित होते थे। अपभ्रंश ग्रन्थों में श्रावकों का परिचय इन कवियों ने दिया है। कुछ आचार्यों को राज्याश्रय भी प्राप्त था और उन्होंने अपने आश्रयदाताओं के अनुरोध पर रचनाएँ की हैं। किन्तु इन सभी ग्रन्थों के विषय धार्मिक हैं किसी आश्रयदाता की कीर्ति का वर्णन इन कवियों ने नहीं किया है। आश्रयदाताओं श्रावकों तथा जनसाधारण की मंगल कामना से धार्मिक विषयों पर इन ग्रन्थों की रचनाएँ की गई हैं।

जैनाचार्यों द्वारा रचित अपभ्रंश साहित्य में विषय और काव्य रूपों की दृष्टि से विविधता पाई जाती है। इस साहित्य में महापुराण पुराण चरित काव्य कथा ग्रन्थ रूपक काव्य रास ग्रन्थ उपदेशात्मक ग्रन्थ स्तोत्र आदि उपलब्ध हैं। महापुराणों की रचना विपुल काय ग्रन्थों के रूप में हुई है। इनमें जैन धर्म के ६३ महापुरुषों के चरित का वर्णन मिलता है। इन्हें त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित अथवा तिसट्ठिमहापुरिस गुणालंकार भी कहा गया है। पुराणों में रामकथा और

महाभारत कथा को ले कर पद्म पुराण और हरिवंश पुराण रचे गये। चरि
में जैन तीर्थंकर अथवा किसी महापुरुष का चरित वर्णित होता है। जसह
णायकुमार चरिउ, णमिणाह चरिउ आदि चरिउ ग्रन्थ इसी कोटि के हैं।
पुरुषों के अतिरिक्त धार्मिक पुरुषों के चरित के आधार पर भी ग्रन्थ
जैसे पउमसिरि चरिउ, सुदंसण चरिउ आदि। कथाग्रन्थों के रूप में कथा
पंचमी व्रत कहा आदि ग्रन्थ मिलते हैं। रूपक काव्य के रूप में
पराजय और रास ग्रन्थों के रूप में रेवन्तगिरि रास, जम्बूस्वामी रास, समर
आदि ग्रन्थ मिलते हैं। पृथ्वीराज रासो के भी अपभ्रंश रूप की कल्पना कुछ वि
ने की है। उपदेश ग्रन्थों की संख्या अधिक है। इनमें संसार की निस्सार
गृहस्थोचित कर्तव्य, वैराग्य आदि विषय वर्णित हैं। पाहुड़ दोहा, वैराग्य
आदि ग्रन्थ इस कोटि के हैं। इस प्रकार धार्मिक भावना से अनुप्राणित विविध
विस्तृत साहित्य की रचना जैन आचार्यों ने अपभ्रंश में की है।

अपभ्रंश साहित्य में रामकथा सम्बन्धी महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणय
किया गया है। अब तक रामकथा विषयक जितने ग्रन्थ मिले हैं, वे सभी जै
आचार्यों द्वारा रचित हैं। जैन मतावलम्बियों ने रामकथा को अपनाया। फलत
विस्तृत जैन राम साहित्य का निर्माण हुआ। जैन ग्रन्थागारों में सुरक्षित रहने
के कारण ये ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं। गत वर्षों में हुए शोधकार्य के फलस्वरूप
इन रचनाओं पर विशेष प्रकाश पड़ा है और आगे भी नये ग्रन्थों के प्रकाश में आने
की आशा है। जैन ग्रन्थों के अतिरिक्त अपभ्रंश में कदाचित राम कथा विषयक
अन्य ग्रन्थों का निर्माण हुआ होगा किन्तु रक्षा की उपयुक्त व्यवस्था न होने के कारण
वे नष्ट हो गये होंगे।

अपभ्रंश में जैन आचार्यों द्वारा रचित अब तक तीन ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं।
ग्रन्थकार तथा रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

१ स्वयंभू	—	पउम चरिउ
२ पुष्पदन्त	—	पउम चरिउ
रइधू	—	पद्म पुराण

(क) स्वयंभू—पउम चरिउ

अपभ्रंश के महाकाव्य के रचयिताओं में स्वयंभू का नाम सबसे पहले आ
है। इनका पउम चरिउ अपभ्रंश का सर्वप्रथम महाकाव्य है। स्वयंभू ने अ
रचना विमलसूरि का अनुसरण करके की है। जिस प्रकार विमलसूरि का
चरिय प्राकृत का प्रथम महाकाव्य है उसी प्रकार स्वयंभू का पउम चरिउ अप

राम चरित विषयक प्रथम महाकाव्य है। स्वयम्भू साहित्य रचना में रविषेणाचार्य से प्रभावित हुए हैं। राम चरित सम्बन्धी अपभ्रंश की इस प्रथम विशिष्ट रचना पर किंचित विस्तार से विचार कर लेना उचित होगा।

स्वयम्भू की गणना जैन के महान कवियों में की जा सकती है। उनकी रचना अत्यन्त प्रौढ़ एवं प्रांजल है। इतनी प्रौढ़ रचना भाषा की आरम्भिक स्थिति में सम्भव नहीं प्रतीत होती। ऐसा जान पड़ता है कि अपभ्रंश की काव्य परम्परा पहले से उन्नत थी और स्वयम्भू की रचनाओं में उसका विकास उत्कर्ष हुआ। स्वयम्भू ने अपनी रचना में अपने पूर्व के भद्र चतुर्मुख आदि कवियों का उल्लेख किया है किन्तु इनकी रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं।

महाकवि स्वयम्भू की तीन रचनाएं मिलती हैं—पउम चरिउ रिट्ठणेमि चरिउ और स्वयम्भू छन्द। इनमें से पउम चरिउ में कवि ने राम चरित का वर्णन किया है। रिट्ठणेमि चरिउ (हरिवंश पुराण) का विषय कृष्ण कथा है। स्वयम्भू छन्द में प्राकृत और अपभ्रंश कवियों के छन्द दिये गये हैं और उन पर विचार किया गया है। स्वयम्भू की तीन अन्य रचनाओं की भी सूचना मिली है—सुद्धय चरिउ पंचमी चरिउ और स्वयम्भू व्याकरण। किन्तु ये रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं।

स्वयम्भू के सम्बन्ध में अधिक सूचना उपलब्ध नहीं है। पउम चरिउ में कवि ने अपने पिता का नाम मारुत देव और माता का नाम पद्मिनी बताया है। उनके पुत्र का नाम त्रिभुवन था। श्री नाथूराम प्रेमी का अनुमान है कि अपनी रुचि के अनुसार स्वयम्भू की कृतियों में नयी सन्धियाँ जोड़कर त्रिभुवन ने उन्हें पूरा किया था। पउम चरिउ की भूमिका में स्वयम्भू ने लिखा है कि उनका शरीर दुबला पतला था उनकी नाक चपटी थी तथा दाँत विरल थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं—अमृताम्बा और आदित्याम्बा। वे विदुषी थीं और महाकवि की साहित्य साधना में सहायिका थीं। पउम चरिउ के विद्याधर काण्ड और अयोध्या काण्ड के अन्त की पुष्पिकाओं में इन पत्नियों का उल्लेख है। स्वयम्भू किस प्रदेश के रहने वाले थे इसकी निश्चित सूचना नहीं मिलती है। अतः साक्ष्य के आधार पर इन्हें कर्णाटक प्रान्त का निवासी कहा गया है किन्तु यह निर्विवाद नहीं है। स्वयम्भू ने पउम चरिउ की रचना धनंजय के आश्रय में और रिट्ठणेमि चरिउ की रचना धवल के आश्रय में की थी। उनका पुत्र त्रिभुवन बन्दइया के आश्रय में था। कतिपय विद्वानों का मत है कि आश्रयदाता क्रमशः दक्षिण के थे। अनुमानतः कवि का पारिवारिक जीवन सुखी और सम्पन्न था।

स्वयंभू एक विद्वान कवि थे और इनके जीवनकाल में ही इनका यश फैल गया था। कविराज चक्रवर्ती छन्द चूड़ामणि उनके विरुद थे। त्रिभुवन ने इन उपाधियों से कवि को सम्बोधित किया है। छन्द-अलंकार शास्त्र, व्याकरण, काव्य शास्त्र आदि के ये पूर्ण ज्ञाता थे। अपनी रचना में इन्होंने आत्म विनय निवेदन किया है। परवर्ती कवियों ने स्वयंभू का महान कवि के रूप में उल्लेख किया है। स्वयंभू के समय के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। पउम चरिउ में कवि ने रविषेण (६७७ ई०) का उल्लेख किया है। रिट्ठणेमि चरिउ में उन्होंने जिनसेन का उल्लेख किया है जिनका समय ७८३ ई० है। जिनसेन सम्भवतः स्वयंभू से कुछ पहले हुए थे। पुष्पदन्त (९५ ई०) ने स्वयंभू का उल्लेख किया है। स्वयंभू अनुमानतः आठवीं शताब्दी में वर्तमान थे।

वाल्मीकि रामायण की रचना के पश्चात प्रतिभाशाली कवियों ने प्रबन्ध काव्यों की रचना कर संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया। इनके विषयों का चयन अधिकांशतः आदिकाव्य तथा महाभारत की कथाओं से किया गया। संस्कृत में प्रबन्ध काव्यों की विस्तृत परम्परा मिलती है। क्रमशः इन रचनाओं का स्वरूप भी साहित्य शास्त्रियों द्वारा निर्धारित हो गया था। इनमें नायक के जीवन के विविध पक्षों का चित्रण, प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन, सन्ध्या, प्रातः काल, सूर्योदय, चन्द्रोदय, नदी, वन, पर्वत आदि के वर्णन होते थे। कथानक, छन्द आदि के सम्बन्ध में भी परम्परा बन गयी थी। संस्कृत काव्यों की परम्परा प्राकृत में भी चलती रही। प्राकृत ग्रन्थों में संस्कृत के सर्ग के स्थान पर आश्वास का प्रयोग हुआ है। इन काव्यों की रचना की परम्परा अपभ्रंश में भी मिलती है। अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यों में सर्ग के स्थान पर आश्वास और सन्धि का प्रयोग मिलता है। संस्कृत और प्राकृत के काव्यों में विषय सम्बन्धी विविधता मिलती है। अपभ्रंश साहित्य में समान धार्मिक प्रेरणा के कारण विषयगत एकरूपता दृष्टिगत होती है जो काव्य के विकास एवं काव्योचित वातावरण की सृष्टि में बाधक जान पड़ता है। किन्तु प्रबन्ध काव्यों की परम्परा अविच्छिन्न रूप से चलती रही। इसी परम्परा के अन्तर्गत आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित की रचना की थी।

स्वयंभू लोकभाषा के कवि थे, ठीक उसी प्रकार जैसे गोस्वामी तुलसीदास लगभग आठ शतक पश्चात् लोकप्रचलित भाषा के समर्थ कवि हुए। स्वयंभू और गोस्वामी तुलसीदास की दार्शनिक मान्यताएं भिन्न थीं फिर भी काव्य रचना में दोनों महाकवियों में समानताएं भी दिखायी देती हैं। दोनों ने लोकभाषा में रचना की। अपने अपने धर्म की परम्परा को दोनों कवियों ने रचनाओं में समाविष्ट किया और दोनों ने लोकमंगल की कामना से काव्य का सृजन किया। गोस्वामी तुलसी

दोनों सम्भवतः स्वयंभू की रचना से परिचित थे। दोनों रचनाओं में वर्णन-गत साम्य भी मिलता है। पउम चरिउ के विवेचन से इस ग्रंथ का महत्व स्पष्ट हो जायगा।

पउम चरिउ का सम्पादन डा० हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी ने किया है। ग्रंथ का एक हस्तलेख आमेर जैन शास्त्र भण्डार जयपुर में सुरक्षित है। इस महाकाव्य में पाँच काण्ड है—विद्याधर काण्ड, अयोध्या काण्ड, सुंदर काण्ड, युद्ध काण्ड और उत्तर काण्ड। पहले काण्ड में २० दूसरे में २२, तीसरे में १४ चौथे में २१ और पाँचवें काण्ड में १ संधियाँ हैं। सम्पूर्ण ग्रंथ में कुल ९० संधियाँ है जिनमें ८३ स्वयंभू की और ७ त्रिभुवन स्वयंभू की है। संधि की समाप्ति पर आश्वास और पर्व शब्द का प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं सर्ग (सग) शब्द भी आया है। संधियों के अन्त में कवि ने अपने नाम का उल्लेख किया है। पउम चरिउ की रचना विमलसूरि और रविषेण की परम्परा में हुई है। स्वयंभू ने ग्रंथ की पद्धड़िया छंदबद्ध रचना कहा है[1]।

ग्रंथ के आरम्भ में कवि ने ऋषभ की वन्दना की है—

णमह णव-कमल-कोमल मणहर वर-वहल कान्ति साहिल्लं।
उसहस्स पाय कमल स-सुरासुर वन्दिय सिरसा॥
दीहर समास णाउ सद् दल अत्थ केसरुग्घविय।
बुह महुयर पीअ रस सयम्भु कव्वुप्पल जयऊ।

नवकमल की भाँति कोमल, मनोहर और उत्तम घनकान्ति से शोभित सुरासुर वन्दित श्री ऋषभ जिन के चरण कमलों को मैं शिरसा नमस्कार करता हूँ। स्वयंभू कृत काव्योत्पल जयशील हो। दीर्घ समास इसके मृणाल है शब्द कमल दल हैं। अर्थरूपी केसर से यह सुवासित है और बुधजन रूपी भ्रमर इसका रसपान करते हैं।

कवि आगे कहता है कि गुरु परमेष्ठी को नमस्कार कर मैं आप ग्रंथ को देखकर रामकथा आरम्भ करता हूँ। इसके पश्चात् चौबीस परम जिनों की वन्दना कर कवि ने कहा है कि रामायण काव्य के माध्यम से मैं अपने आपको प्रगट अथवा अभिव्यक्त करता हूँ—

1— सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ भारतीय विद्याभवन बम्बई।

> ण्य चउराग वि परम जिण पगवप्पिणु भावें।
> पुण अप्पाणउ पायर्डमि रामायग कावें॥

स्वयंभू ने रामकथा की तुलना नदी से की है।

> वद्धमाण मुह-कुहर विणिग्गय। रामकहा णइ एह कमागय॥१॥
> अक्खर वास जलोह मणोहर। सु अलंकार छंद मच्छोहर॥२॥
> दीह समास पवाहावंकिय। सक्कय पायय पुलिणालंकिय॥३॥
> देसीभासा उभय तडुज्जल। कवि-दुक्कर घण सद्द सिलायल॥४॥
> अत्थ-बहल कल्लोल णिटिठय। आसासय समतूह परिट्ठिय॥५॥
> एह रामकह-सरि सोहन्ती। गणहर देवहिं दिट्ठ वहन्ती॥६॥
> पच्छइ इन्दभूइ आयरिएं। पुण धम्मेण गुणालंकरिएं॥७॥
> पुण पहवें संसाराराएं। कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं॥८॥
> पुण रविसेणायरिय-पसाएं। बुद्धिए अवगाहिय कइराएं॥९॥
> पउमिणि जणणि गब्भ संभूएं। मारुयएव रूव अणुराएं॥१०॥
> अइ-तणुएण पइहर गत्तें। छिव्वर णास पविरल दन्तें॥११॥
>
> णिम्मल पुण्ण पवित्त कह कित्तण आढप्पइ।
> जेण समाणिज्जन्तएण थिर कित्ति विढप्पइ॥१२॥(१२)

कवि कहता है—यह रामकथा रूपी सरिता वर्धमान महावीर के मुख कुहर से निस्सृत होकर क्रम से प्रवाहित होती हुई चली आ रही है। वाक्य विन्यास से यह मनोहर है और सुन्दर अलंकार और छन्द रूपी मत्स्यों से परिपूर्ण है। दीर्घ समास से यह अंकित है तथा संस्कृत और प्राकृत पुलिनों से अलंकृत है। देशी भाषा रूपी उभय तट उज्ज्वल कर हैं। क्वचित् क्लिष्ट घन शब्द शिलाएँ हैं। अनेक अर्थरूपी तरंगों से यह तरंगित है और आश्वास रूपी तीर्थों से यह प्रतिष्ठित है। रामकथा रूपी प्रवाहित इस सरिता को सर्वप्रथम गणधर देवों ने देखा। आचार्य गौतम गुणालंकृत धर्माचार्य और अनुत्तरवाक् कीर्तिधर ने क्रमशः इसे देखा। अनन्तर आचार्य रविषेण के प्रसाद से स्वयंभू ने स्वमति के अनुसार इसका अवगाहन किया। निर्मल पुण्य से पवित्र रामकथा के सम्यक् गान से स्थिर कीर्ति बनती है। पद्मिनी माता के गर्भ से संभूत स्वयंभू उस पवित्र रामकथा का गायन आरम्भ करता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामकथा का सरोवर और सरिता के रूप में वर्णन किया है। मानस में बालकाण्ड के आरम्भ में ३६-४१ दोहा तक कविता सरिता का सांगोपांग वर्णन किया गया है जो स्वयंभू के वर्णन के सन्दर्भ में द्रष्टव्य हैं।

स्वयंभू ने आत्म विनय निवेदन किया है। पण्डितों से विनती करते हुए कवि कहता है कि मुझसे बड़ा दूसरा कुकवि नहीं है। मैं व्याकरण नहीं जानता और न मैंने महाकाव्य और नाटय लक्षण देखा है। पिंगल शास्त्र का न विस्तार समझा है और न भामह और दंडी के अलंकारों को समझा है। कवि ने परम्परा के अनुसार सज्जन दुर्जन स्तुति की है। आदि काव्य में ग्रंथारम्भ में ये प्रसंग नहीं मिलते किन्तु परवर्ती काव्यों में इस प्रकार की परम्परा मिलती है। गोस्वामी तुलसीदास ने इस परम्परा के अनुसार मानस में मंगलाचरण आत्मविनय निवेदन सज्जन दुर्जन स्तुति आदि की है।

१—रामचरित मानस—बालकाण्ड—

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू॥

सुठि सुन्दर संवाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेहि एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥३६॥

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥
रामसीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई॥
छंद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा॥
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती॥
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥
नवरस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा।

गोस्वामी जी ने रामकथा रूपी सरिता का विशद वर्णन किया है—

चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला॥
नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि॥इत्यादि॥

जैन रामकथाओं में ब्राह्मण रामकथा के प्रति शंका उठा कर जनधर्म के अनुरूप कथा कहने की परम्परा मिलती है। इस परम्परा के अनुसार पउम चरिउ में कथा का आरम्भ शंकाओं से होता है—

> परमेसर पर सासणहि सुव्वई विवरेरी।
> कह जिण सासण केम थिय कह राहव-केरी॥०॥

> जगे लोएहिं ढक्करियत्तएहिं। उप्पाइउ भंतिउ भंतएहिं॥१॥
> जइ कुम्भ घरियउ धरणि वीर। तो कुम्मु पडन्तउ केण गीढ॥२॥
> जइ रामहो तिहुअण उवरें माइ। तो रावणु कहिं तिय लेवि जाइ॥३॥
> अण्णु वि खरदूसण समरे देव। पहु जुज्झइ सुज्झइ मिच्छ केंव॥४॥
> किह तियमइ कारण कविवरेण। घाइज्जइ वालि महोयरेण॥५॥
> किह वाणर गिरिवर उव्वहन्ति। बन्धवि मयरहरु समुत्तरन्ति॥६॥
> किह रावण दहमुहु वीस हत्थ। अमराहिव भुव बन्धण समत्थु॥७॥
> मरिसिद्ध सुअइ किह कुम्भयण्ण। महिसा कोडिहिं मिण घाउ अण्णु॥८॥

> जें परिभमिउ दसवयण पर णारीहिं समणु।
> सो मन्दोयरि जणणि सम किह लइउ विहासणु॥९॥(१-१०)

राजा श्रेणिक ने गौतम गणधर से पूछा—हे परमेश्वर दूसरा के सम्प्रदाय में रामकथा उल्टी सुनी जाती है। अतएव जिन शासन में रामकथा कैसी है उसे कहिए। संसार में मन्दबुद्धि लोगों ने भ्रान्तियाँ उत्पन्न कर दी हैं। वे कहते हैं कि धरती को कच्छप धारण करता है परन्तु गिरते कच्छप को कौन धारण करता है। राम के उदर में तीनों लोक व्याप्त हैं तो रावण सीता को हर कहाँ ले गया। स्त्री के लिए सुग्रीव ने भाई को कैसे मारा। वानरों ने पर्वत कैसे उठाया और समुद्र पर उस कैसे पार किया। रावण के क्या दस मुख और बीस हाथ थे। क्या वह इन्द्र को बाँधने में समर्थ था। क्या कुम्भकरण ६ महीने सोता था और करोड़ों भैंसों का भोजन उसे कैसे पचता था। विभीषण ने पर स्त्री के अभिलाषी रावण का वध कराया तो उसने माता समान मन्दोदरी को कैसे ग्रहण कर लिया। राजा श्रेणिक की इन शंकाओं को सुन कर गौतम गणधर जैन रामकथा का वर्णन करते हैं।

प्रथम विद्याधर काण्ड में ऋषभ जिन जन्म जिन निष्क्रमण वानर वंश उत्पत्ति रावण चरित आदि वर्णित है। रावण का चरित विस्तार से वर्णित है। अयोध्या काण्ड में राम चरित प्रारम्भ होता है और राम सीता विवाह से लेकर सीता-हरण

तक की कथा दी गयी है। सुन्दर काण्ड में सीता की खोज तथा राम का सेना लेकर लंका पहुँचना वर्णित है। इसी प्रकार युद्ध काण्ड तथा उत्तर काण्ड में राम रावण युद्ध तथा उत्तर चरित वर्णित है।

पउम चरिउ में घटनाओं और पात्रों की बहुलता मिलती है। विद्याधर काण्ड में ऋषभ जिन का जन्म तथा उनका चरित्र भरत बाहुबलि चरित आदि वर्णन करने के पश्चात राक्षस और वानर वंश की उत्पत्ति दी गया है। नवीं संधि में रावण चरित का विस्तार से वर्णन किया गया है। मालि के पुत्र रत्नाश्रव और कैकसी के रावण, भानुकर्ण, चन्द्रनखा और विभीषण उत्पन्न हुए। बालक रावण ने तोयदवाहन का हार जिसमें मणियाँ में जड़े हुए नौ मुख थे पहना। रावण ने जब हार पहना तब उसमें उसके एक मुख के नौ मुख प्रतिबिम्बित दिखायी पड़े। इस कारण रावण दशानन प्रसिद्ध हुआ जैसे सिंह पंचानन के नाम से प्रसिद्ध है—

पक्खेप्पिणु ताइं दसाणणइं थिर-तारइं तरलइं लोयणइं।
ते दहमुहु दहसिरु जणेण किउ पंचाणणु जेम पसिद्धि गउ॥

अनंतर विद्या सिद्धि चन्द्रहास खड्ग की सिद्धि, वैश्रवण और यम पर विजय रावण-बालि युद्ध में रावण की पराजय सहस्रकिरण के साथ रावण का युद्ध इन्द्र की पराजय आदि रावण चरित से संबंधित अनेक प्रसंगों का वर्णन किया गया है। कैलाश पर्वत पर जाकर रावण के विमान पुष्पक की गति रुक जाना तथा रावण के कैलाश उठाने का प्रसंग वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में आया है[1]। इस प्रसंग का काव्यमय वर्णन स्वयंभू ने किंचित परिवर्तन के साथ किया है[2]। रावण के पर्वत उठा लेने पर कैलास पर कोलाहल होने लगा। टूटी हुई मणिमय चट्टानों के पत्थर ऐसे मालूम हुए मानो गिरिरूपी जिन का वक्षस्थल ही टूट गया था। धरणेन्द्र ने पर्वत को दबाया तो रावण उसके नीचे कच्छप की भाँति ढेर हो गया और चिल्ला उठा जिससे दसों दिशाएँ भयातुर हो उठीं। रावण की रानियाँ जिनके ऐरावत के कुम्भस्थल के समान स्तन थे अपने केयूर हार नूपुर और कंकण खोल हाथ मलमलाकर और करधनी हिलाकर हाहाकार करने लगीं। उनकी भृकुटियाँ विभ्रम और विलास से कुंचित हो रही थीं। वाल्मीकि रामायण में स्वयं शंकर ने पर्वत को अंगूठे से दबाया था। महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी इस प्रसंग

१— वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड—सोलहवाँ सर्ग।
२— पउम चरिउ विद्याधर काण्ड—तेरहवीं संधि।

का त्यागावतार चरित में वर्णन किया है जिसमें पर्वत उद्यान पर इधर उधर भागती विद्याधर सुंदरियाँ ने कार्त्तवीर्य से कन्या में के मलाग्नि हरने का उल्लेख है जो वाल्मीकि कथा के अनुकूल है।

विद्याधर काण्ड की चौदहवीं संधि में रावण सहस्रकिरण युद्ध का वर्णन है। वाल्मीकि रामायण में रावण सहस्रार्जुन युद्ध उत्तरकाण्ड में ३२ वें सर्ग में वर्णित है। नर्मदा तट पर रावण शंकर की पूजा करता है। पूजा में विघ्न तब उस सहस्रार्जुन के जलविहार की सूचना प्राप्त होती है। रावण सहस्रार्जुन युद्ध में रावण बन्दी बनाया जाता है। स्वयंभू का प्रसंग वर्णन प्रायः समान है। जिन भक्त रावण नर्मदा तट पर जिन की पूजा करता है। पूजा में विघ्न देख सहस्रकिरण के साथ उसका युद्ध होता है जिसमें वह सहस्रकिरण को पराजित कर देता है। इस प्रसंग में स्वयंभू ने सहस्रकिरण की जलक्रीडा का विशिष्ट वर्णन किया है—

सरीरु तरतरइ उम्मालतहु मुहु कमलहु वेइ पवाइय।
आयइ सरसइ किय तामरसइ णरवरेण भंति उप्पाइय ॥१॥

जलरासिहे जलकीलए करन्तहु। घण-पाणीहि पहरु मल्लन्तहु ॥२॥
कहि मि चन्द-कुन्द-कुन्दोज्जलेहि। धवलिउ जलु तुट्टन्तेहि हारेहि ॥२॥
कहिं मि रमिउ णउराहु रसन्तहि। कहिं मि फरिउ कुण्डलहिं फुरन्तेहिं ॥ ॥
कहिं मि मिस रस-तम्बोलारत्तउ। कहिं मि वउल कायम्बरि मत्तउ ॥४॥
कहिं मि परिमल कप्पूरहिं वासिउ। कहिं मि सुरहि मिगमय-वासासिउ ॥५॥
कहिं मिविरल मणि रयणु जडियउ। कहिं मि धाअ-कज्जल मइलियउ ॥६॥
कहिं मि वल्ल-कुंकुम पिंजरियउ। कहिं मि मलय चन्दण रस भरियउ ॥७॥
कहिं मि जक्खकद्द मण कम्मिवउ। कहिं मि भमर रिछोलिहि चुम्बिउ ॥८॥
विद्दुम मरगय इन्दणील-- मय चामियर तार मणधारहिं।
णं वण्णुज्जल णावइ णच्चइ गुणवणु घण रिन्द-वण्णारहि ॥ ॥

(१८६)

माहेश्वर अधिपति सहस्रकिरण नर्मदा में अपनी रानियों के साथ जलक्रीडा करता है। तट में क्रीडा करता है किसी रानी उमाल्लित मग की देख कर सहस्रकिरण को यह भ्रम हुआ कि यह सरस मग कमल है अथवा रक्तकमल जल का। मानो कोई एक दूसरे पर उछालने लगे व क्रीड़ा करने लगे। जल कहीं पर चन्द्र और कुन्द के फूलों की भाँति श्वेत और कहीं टूटे हारों से धवल हो रहा था। कहीं नूपुर मधुरता से शब्दायमान हो उठा कहीं स्फुरित कुण्डलों से प्रकाशित तो कहीं रस तांबूल से रक्तिम और वकुल एवं मदिरा से मत्त हो उठा था। कहीं कपूर से सुवासित तो कहीं कस्तूरी से सुरभित था। नर्मदा का जल कहीं मणिरत्नों

में उज्ज्वल कहीं घुले काजल से सवलित, कहीं कुंकुम से पिंजरित कहीं मलय चन्दन से भरित हो रहा था। कहीं यक्ष कर्दम से कर्बुरित कहीं भ्रमरों से चुम्बित हो रहा था। विद्रुम मरकत इन्द्रनील, मणियों और स्वर्णहार समूह से विविध वर्ण रंजित नर्मदा नदी का जल ऐसा शोभायमान था जैसे इन्द्रधनुष मेघ विद्युत और बलाका से आकाश-तल रागरंजित हो रहा हो।

स्वयम्भू के जलक्रीडा वर्णन की अत्यधिक ख्याति हुई। कवि ने स्वयं जलक्रीडा वर्णन के सम्बन्ध में कहा है—

जल-कीलाए सयम्भू चउमुहएव च गोग्गह कहाए।
भद्द (भट्ट) च मच्छवहे अज्ज वि कइणो ण पावन्ति॥

अर्थात् जलक्रीडा में स्वयम्भू को, गोग्रह कथा में चतुर्मुख को और मत्स्यवेधन में भद्र को आज भी कविगण नहीं पाते। जलक्रीडा वर्णन की परंपरा हरिवंश पुराण तथा कतिपय अन्य संस्कृत काव्यों में भी मिलता है।

अठारहवीं उन्नीसवीं संधि में अंजना-पवनंजय से हनुमान के जन्म तथा उनके चरित का वर्णन है। हनुमान वानर वंश के हैं तथा रावण के सहायक हैं। वरुण के साथ युद्ध में उन्होंने रावण की ओर से भाग लिया तथा अनुपम वीरता प्रदर्शित की। रावण ने हनुमान का लंका में सत्कार किया तथा सुग्रीव की पुत्री पंकजरागा और खर की पुत्री अनंगकुसुमा से उनका विवाह हुआ। सत्कृत होकर हनुमान तथा रावण के अन्य सहायक अपने नगरों को लौट गये।

अयोध्याकाण्ड में रामचरित का वर्णन प्रारम्भ होता है। आरम्भ में कैकयी की वरप्राप्ति दशरथ के पुत्रों का जन्म जनक के सीता पुत्री और भामण्डल पुत्र का जन्म प्रसंग वर्णित है। राम सीता विवाह स्वयंवर में धनुर्भंग के उपरान्त होता है—सब राजाओं के पराजित होने पर बलभद्र और वासुदेव (राम-लक्ष्मण) सीता के स्वयंवर मण्डप में पहुँचे। उन्होंने समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुष हाथ में लेकर मामूली धनुषों की भाँति उन पर डोरी चढ़ा दी तब देवताओं ने फूलों की वर्षा की। राम और सीता का विवाह हो गया। जो राजा स्वयंवर में आये थे वे उदास होकर अपने अपने नगर चले गये। तिथि-वार-नक्षत्र गिन और लग्न के योग्य ग्रहों को देखकर ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि *इस कन्या (सीता) के कारण युद्ध में राक्षसों का विनाश होगा।* (२ १८)।

दशरथ के मन में विरक्ति उत्पन्न होती है वे राम को राज्य देने का निश्चय करते हैं। कैकयी के वरदान माँगने पर सत्यनिष्ठ दशरथ राम को वनवास देते हैं। राम के साथ सीता और लक्ष्मण वनगमन के लिए प्रस्तुत होते हैं। राम के चले जाने से अयोध्या श्रीहीन हो जाती है। राम यात्रा करते हुए पारियात्र

पहुँचे जहाँ गभीरा नाम की महानदी मिली। नदी ने राम ने सेना को लौटा दिया। नदी पार करने के लिए राम ने जल में प्रवेश किया सीता उनके बायें हाथ पर चढ़ गयी। थोड़ी देर में वे नदी पार कर गये। राम के चले जाने पर अयोध्यावासियों ने विलाप किया। राजा दशरथ ने जिन दीक्षा ले ली। भरत राम को मनाने के लिए गये और छठे दिन उनके पास पहुँचे। सरोवर के निकट लतागृह में भरत ने राम लक्ष्मण और सीता को देखा। भरत दौड़ कर राम के चरणों में गिर पड़े। भरत ने कहा—

थक्कु देव म जाहि पवासहो। होहि तरंडउ दसरह-वंसहो॥
हउ सत्तहण भिच्च तउ वे वि। लक्खण मंति सीय महएवि॥
जिह णक्खत्तहिं चन्दु इन्दु जम सुर-लोए।
तिह तुहुँ भुजहि रज्जु परिमिउ बन्धव लोए॥ २४८॥

—देव आप ठहरिए प्रवास को मत जाइए अन्यथा दशरथ वंश का नाश हो जायगा। मैं और शत्रुघ्न आपके सेवक हैं लक्ष्मण मंत्री और सीता महादेवी। आप बन्धुओं से घिरे उसी प्रकार राज्य का भोग करें जैसे नक्षत्रों सहित चन्द्र और सुरलोक में घिरा इन्द्र राज्य करता है।

राम ने भरत को भुजाओं में भर लिया और हृदय से लगाया। राम ने कहा—भरत माता पिता के तुम्हीं सच्चे सेवक हो। इतना विनय तुम्हें छोड़ कर और किसमें हो सकता है। राम ने केकया से कहा—मैं पिता के वचनों का पालन करूँगा। मुझे राज्य से कोई काम नहीं। पिता ने जो वचन तुम्हें तीन बार दिया उसे मैं तुम्हें सौ बार देता हूँ। राम ने भरत के सिर पर राजपट्ट बाँध दिया। भरत और शत्रुघ्न ने धवल मुनि के पास जाकर प्रतिज्ञा ली कि वे राम के वन से लौटने पर राज्य से निवृत्त हो जायेंगे। अनन्तर भरत अयोध्या लौट आये। स्वयंभू के वर्णन में कहीं राम लक्ष्मण अथवा भरत के गंगा पार करने निषाद से भेंट अथवा प्रयाग का वर्णन नहीं आया है। चरण पादुका के प्रसंग का भी अभाव है। भरत के लौटने पर राम लक्ष्मण और सीता के साथ तापस वन की ओर चले गये।

राम अनेक राजाओं और नगरों को पार करते हुए दण्डक वन में पहुँचते हैं। लक्ष्मण ने वनस्थली में सूर्यहास खड्ग प्राप्त किया और खर-चन्द्रनखा के पुत्र शम्बूक का वध किया। चन्द्रनखा की कामासक्ति तथा विरूपीकरण की कथा अनन्तर दी गयी है। खर के साथ युद्ध में लक्ष्मण विजयी होते हैं। रावण दण्डक वन आता है। वह सीता के रूप पर आसक्त हो जाता है। उसने अवलोकनी विद्या का आवाहन किया। अवलोकनी विद्या ने उसे बताया कि लक्ष्मण का

सिंहनाद (गुप्त संकेत) सुनकर राम सीता को छोड़कर जा सकता है। लक्ष्मण दूषण के साथ युद्ध कर रहे थे। अवलोकनी विद्या ने जाकर सिंहनाद किया। राम ने समझा कि लक्ष्मण ने सिंहनाद किया है कदाचित वे संकट में पड़ गये हैं। राम सीता को छोड़कर धनुष हाथ में ले लक्ष्मण के पास गये जहाँ उन्होंने लक्ष्मण को युद्ध करते देखा। लक्ष्मण ने कहा कि मैंने सिंहनाद नहीं किया। लौटा जब तक आश्रम को लौटे तब तक रावण सीता का हरण कर चुका था। आश्रम सूना था। रावण जटायु और विद्याधर को पराजित कर सीता को लंका ले गया और नंदन वन में रख दिया। राम ने सीता को खोजते हुए मरणासन्न जटायु को देखा और उसे जिन नाम के सारभूत आठ मूल गुण दिये। राम उन्मत्त की भाँति सीता को वन में खोजने लगे—

णिद्धणु लक्खण-वज्जियउ अण्णु वि विच्छ-वसणहिँ मुत्तउ।
राहउ भमइ भुअंगु जिह वणे हा हा सीय भणंतउ॥८॥
हिण्डन्तें भग्ग मच्छरेण। वण-देवय पुच्छिय हलहरेण॥१॥
वण वण वयारहि काइँ मइँ। कहँ कहिँ मि दिट्ठ जइ कन्त पइँ॥२॥
कहु एम भणप्पिणु सचल्लिउ। तावग्गए वण गइन्दु मिलिउ॥३॥
हे कुंजर कामिणि-गइ-गमण। कहँ कहिँ मि दिट्ठ जइ मिगणयण॥४॥
णिय पडिरवेण वयारियउ। जाणइ सीयए हक्कारियउ॥५॥
वत्थइ दिट्ठइ इन्दीवरइँ। जाणइ घण णयणइँ दीहरइँ॥६॥
वत्थइ असोय-तरु हल्लियउ। जाणइ घण-बाहा-डोल्लियउ॥७॥
वणु सयलु गवेसवि सयल महि। पल्लट्ट पडीवउ दासरहि॥८॥
तं जि पराइउ णिय भवणु जहिँ अच्छिउ आसि लयत्थउ।
धाव सिलिम्मुह मुक्क-धणु वलु पडिउ स इम्भु व सत्थउ॥१॥ (३९ १२)

राम ने वनदेवी से पूछा कि यदि तुमने मेरी सीता को देखा हो तो बताओ। गज से पूछा—मेरी प्रिया की भाँति सुन्दर गति वाले क्या तुमने मेरी सीता को देखा है। राम कमलों को देख सीता के विशाल नयन अशोक वृक्ष को देख सीता के हिलते हाथ समझ लेते थे। चारों ओर खोज कर अपने लतागृह में जाकर राम अधीर होकर गिर पड़े।

राम सीता की खोज करते हुए किष्किन्धा पहुँचते हैं। वहाँ नगर के राजा बालि के अनुज सुग्रीव का अवास्तविक सुग्रीव (सहस्रगति) से युद्ध होता है। सुग्रीव को मृगया के लिए गया जान मायावी सहस्रगति सुग्रीव के रूप में नगर में

१—तुलिए—रामचरित मानस—अरण्यकाण्ड, २ ३०।
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती। इत्यादि।

प्रवेश कर गया। दोनों का स्वरूप एक जैसा था इस कारण युद्ध में वास्तविक सुग्रीव की पहिचान नहीं हो सकती थी। सुग्रीव राम की शरण गया। राम ने युद्ध में सहस्रगति को परास्त कर सुग्रीव को राज्य दिलाया। सुग्रीव ने सीता की खोज के लिए वानर दल भेजे। हनुमान सीता की खोज करने के लिए लंका पहुंचे। लंका में उनको आशाली विद्या तथा लंका सुन्दरी से संघर्ष हुआ। हनुमान ने नन्दन वन में राम के वियोग से पीड़ित कृशांगी सीता को देखा। हनुमान ने राम की अंगूठी गिरा दिया जिसे सीता ने सहर्ष उठा लिया। परिचय हो जाने पर हनुमान ने सीता से प्रस्ताव किया कि वे राम के पास चलें। सीता ने कहा—कुलवधू के लिए यह ठीक नहीं। अपने कुलघर जाना हो तो भी पति के बिना जाना ठीक नहीं। निशाचर रावण का वध होने पर जय जयकार के साथ अपने जनपद जाऊंगी। यह मेरा चूडामणि लो और इसे पहचान के रूप में राम को अर्पित कर देना। सीता ने राम के प्रति सन्देश कहा—

> अण्ण वि आढत्तिवि गण घणउ सन्देसउ अक्खु महु तणउ।
> बउ तुज्झ विओए जणय-सुय थिय राहव विसमण कह वि मुअ॥१॥
> झीण मयंक रेह गय-मत्थिय व। झीण सुरिन्द रिद्धि तव रहिय व॥२॥
> झीण कुवेस मउ वामाणिव। सीणा वर महु सुकइ-सुवाणि व॥ ॥
> थाण निवियारम्मणें रति व। थाण कु-जणवए जिणवर भत्ति व॥४॥
> थाण दुभिक्खें अत्थ सपत्ति व। झ।ण वन्तणण वरमति व॥५॥
> झीण चरित विहूणहो कित्ति व। झीण कु-कुन्दर कुलवहु णित्ति व॥६॥
> अण्णु वि रसमह रम-पगासहो। वच्छत्थलें जय-लच्छि णिवासहो॥७॥
> रणें दुव्वार-वइरि विणिवारहो। तहो सन्देसउ णहि कुमारहो॥८॥
> वक्ख पर मलण दि लक्खण। अ… साय दयन्ति अव्वकमण॥ ॥
> णउ न्हें णउ गण्णवेंदि णउ राम वइरि वियारणेण।
> परमारेवउ दहवयणु मइ भु अज अण्ण तुम्हारएण'॥१०॥(५० १३)

सीता ने हनुमान से कहा कि राम से कहना कि सीता तुम्हारे वियोग में रात भर नहीं सोती है। राम्नी चन्द्रमा की भांति क्षीण हो गया है। लक्ष्मण से भी सन्देश कहना कि तुम्हारे बिना मातास्वामी रा… केवल तुम्हारी भुजाओं से रावण का वध होगा। हनुमान ने नन्दन वन उजाड़ा लंका का विध्वंस किया और राम के पास लौटकर सीता का सन्देश दिया। सन्देश पाकर राम ने रावण

१—रामचरित मानस—सुन्दर काण्ड— ३।
चूड़ामनि उतारि तब दयउ हरष समेत पवनसुत लयउ। इत्यादि।

के विरुद्ध अभियान किया। सेना ने लंका की ओर प्रस्थान किया। शुभ शकुन हुए। मार्ग में सेतु और समुद्र ने प्रतिरोध किया किन्तु वे पराजित हुए। राम सेना सहित हंस द्वीप पहुँचे और लंका को घेर लिया। जैन कथा में सेतुबंध के प्रसंग का अभाव है। इस कथा में सेतु और समुद्र विद्याधर बन गये हैं जो राम का प्रतिरोध करते हैं और युद्ध में नल और नील द्वारा बाँध लिये जाते हैं। युद्ध काण्ड और उत्तर काण्ड में जैन धर्मानुकूल राम रावण युद्ध वर्णित और राम का उत्तर चरित वर्णित है। रावण का वध लक्ष्मण करते हैं। रुका से लक्ष्मण की मृत्यु का समाचार सुन कर राम शोक व्याकुल हो जाते हैं।

जैन कवियों की एक विशेषता यह है कि वे कथा प्रसंगों का वर्णन करते हुए लौकिक जीवन के अनुभूत तथ्यों को नहीं भूलते हैं। इसी क्रम में प्राचीन कथाओं का वर्णन करते समय जैन कवियों ने समाज के समसामयिक सजीव चित्र प्रस्तुत किये हैं। इससे उनका अपने समय की स्थितियों के प्रति जागरूक होना तथा समाज के प्रति उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण का पता चलता है। पउम चरिउ में इस प्रकार के अनेक स्थल मिलते हैं। भरत को अयोध्या लौटा कर राम आगे धानुष्क वन में चले गये। वहाँ से भीलों की बस्ती में गये। इस बस्ती का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

> अणु वि थोवन्तरु विहरन्तइँ। वणु धाणक्कहुँ पुणु सपत्त हूँ ॥१॥
> जहिं जणवउ मय मरय णियत्थउ। वरहिण पिच्छ-समाहिय-हत्थउ ॥२॥
> कन्द मूल-बहु-फल-भुजउ ।सिरेंवद्ध माल वद्ध गलें गुंजउ॥ ॥
> जहिं जुवइउ छह जायउ विवाहउ। मयकरि रय वलयकिय-वाहउ ॥४॥
> मयकरि-कुम्भु करप्पिणु उक्कउ। लवि विमाण मुमडु धवडु जडु ॥५॥
> मोत्तिय चाउल-भरणावद्धयउ । चुम्बिय-वयणउ मयण भायउ ॥६॥
> त तहउ वणु भिल्लहु करउ। हरि-बलएवहिं किउ विवरउ ॥७॥
> त मग्गे वि घरवासु कायहिँ हरिसिय-देहहिं।
> छाइय लक्खण राम चन्द्र-सूर जिम मेहहि ॥८॥ २४ १२॥

—उस बस्ती के लोग मृगचर्म और वल्कल से अपना शरीर ढँके हुए थे। वे अपने हाथ मोरपंखों से सजाये थे। कन्द मूल उनका भोजन था। सिर पर कन्द की माला और गले में गुंजाओं की माला थी। युवतियों का बचपन में विवाह होता था। उनके हाथ में हाथीदाँत की चूड़ियाँ थीं। वे हाथियों के कुम्भस्थल के आघात से गजमुक्ताओं से चावल कूट रही थीं। कामासक्त हो वे शीघ्र मुँह चूम लेती थीं। राम ने उस बस्ती में निवास किया। इसी प्रकार मगध देश का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

अवहत्थवि खलयण णिरवसमु। पहिल्लउ गिरु वण्णमि मगहन्सु॥१॥
जहिं पक्क-कलम व मति(णि णिमण्ण। अल्हन्त तरणि थर व विमण्ण॥२॥
जहिं सुय-पंतिउ सुपरिट्ठियाउ। ण वणसिरि मरगय कण्ठियाउ॥३॥
जहिं उच्छ-वणइ पवणाहयाइं। कम्पंति व पीलण भय-गयाइं॥४॥
जहिं णन्दणवणइ मणोहराइं। णच्चंति व चल-पल्लव-कराइं॥५॥
जहिं फाल्मि-वयणइ दाडिमाइं। णज्जंति ताइं ण कइ मुहाइं॥६॥
जहिं महुयर पंतिउ सुन्दराउ। कयइ केसर रय धूसराउ॥७॥
जहिं दक्खा मण्डव परियलन्ति। पुणु पंथिय रस-सलिलइं पियन्ति॥८॥१ ४॥

--मगध देश जहाँ पके धान की शोभा तारुण्य न पाने वाली विन्न वृद्धा के समान दिखायी देता थी। वहाँ शुक पंक्तियाँ ऐसी जान पड़ती थीं जैसे वन लक्ष्मी के गले में मरकत मणि की माला हो। पवन के वेग से ईख के खेत हिल रहे थे मानो वे पीड़न के भय से काँप रहे हों। नन्दन वन के पत्ते हिल रहे थे जैसे हाथ से इंगित कर रहे हों। लाल अनार के मुख कवियों के मुख की भाँति दिखायी देते थे। भौंरों की पंक्तियाँ केतकी की रजकण से धूसरित हो रही थीं और दाख के लतागृह पथिकों को रसरूपी जल पिला रहे थे।

महाकाव्य के लक्षण पउम चरिउ में मिलते हैं। जीवन के विविध पक्षों के चित्रण के अतिरिक्त प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन प्रातः सन्ध्या सूर्योदय आदि के सजीव चित्र ऋतु वर्णन आदि इस महाकाव्य में अनेक स्थलों पर मिलते हैं। विन्ध्याचल के आगे ताप्ती नदी पार कर लक्ष्मण और सीता के साथ राम एक महावट की छाया में बैठते हैं। वर्षा का समय का प्रसार होता है और कवि पावस का वर्णन करता है। राम सीता और लक्ष्मण जैसे ही वट के नीचे बैठे वैसे आकाश में मेघजाल सुकवि के काव्य की भाँति प्रसार करने लगा। आकाश में मेघ उसी प्रकार फैलने लगा जैसे युद्धभूमि में सेना फैलती है अज्ञानी में अन्धकार फैलता है बहुज्ञ में बुद्धि फैलती है पापिष्ठ में पाप और धर्मिष्ठ में धर्म फैलता है। जैसे चन्द्रमा की जुन्हाई फैलती है धनवान की चिन्ता फैलती है कुलीन की कीर्ति और नगाड़े का नाद फैलता है। जैसे सूर्य की किरण फैलती है वन में दावानल फैलता है वैसे ही मेघजाल फैला। जान पड़ता है कि यशोभा पावस राजा मेघ महागज पर बैठ कर धनुष हाथ में ले ग्रीष्म पर चढ़ाई करने के लिए सन्नद्ध हो।

१—पउम चरिउ—

णाइं गन्धारा णारी मंदरमज्झे परिट्ठिय जावेंदि।

पउम चरिउ में प्रकृति का विशद मनोरम वर्णन मिलता है। निर्विघ्न नगर की ओर जाते हुए मार्ग में गोदावरी नदी मिली। कवि ने उत्तुंग तरंग युक्त गर्जन करती हुई गोदावरी का वर्णन किया है—

धावन्तें मच्छुत्थल्लन्त नदि। गोला णइ दिट्ठ समुव्वहन्ति ॥२॥
सुसुअर घोर घुरुघुरन्ति । करि मयरडडाहिय दुहुहुहन्ति ॥३॥
डिण्डीर-सण्ड मण्डलिउ देति । दद्दुरय रडिय दुरदुरन्ति ॥४॥
कल्लोलुल्लोलहिं उव्वहन्ति । उग्घाम घाम घवघवघवन्ति ॥५॥
पडिखलण-वलण-खलखलखलन्ति । खलखलिय-खडक्क-खडक्क दन्ति ॥६॥
ससि सङ्ख कुन्द धवलोज्झरेण । कारण्डुड्डाविय डम्बरेण ॥७॥
फणावलि वंकिय वलयालंकिय ण महि-कुलवहुअहे तणिय।
जलणिहि भत्तारहो मोतिय-हारहो बाह पसारिय दाहिणिय ॥८॥ (३१ ३)

—गोदावरी फेन समूह से आविल उर्वरित तरंगावली के उद्घोष सहित कलकल करती बह रही थी। कारंडव के उड्डयन और जलजन्तुओं के आलोडन से सुशोभित, वलय (आवर्त और चूड़ी) से अंकित वह धरती की कुलवधू जान पड़ती थी जो अपने प्रिय समुद्र के आगे मुक्ताहार लिए हाथ फैला रही हो। स्वयंभू का वर्णन उत्तर रामचरित में भवभूति के गोदावरी वर्णन का स्मरण दिलाता है।[1]

रेवा का अलंकृत वर्णन कवि ने अपने प्रिय (समुद्र) की ओर जाती हुई एक बाला के रूप में किया है।

पसरइ सुकइहे कव्वु जिह महु जाउ गयणगण तावहिं॥
पसरइ मेह विन्दु गयणगणे। पसरइ जेम सेण्णु समरंगणे॥१॥
पसरइ जेम तिमिरु अण्णाणहो। पसरइ जेम बुद्धि बहु जाणहो॥२॥
पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहो। पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठहो॥३॥
पसरइ जेम जोण्ह मयवाहहो। पसरइ जेम कित्ति जगणाहहो॥४॥
पसरइ जेम चिन्त धण-हीणहो। पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहो॥५॥
पसरइ जेम सद्दु सुर तूरहो। पसरइ जेम रासि णहे सूरहो॥६॥
पसरइ जेम दवग्गि वणन्तरें। पसरइ जेम जाउ णिहे अम्बरें॥७॥
तडि तडयडइ पडइ घणु गज्जइ। जाणइ रामहो सरणु पवज्जइ॥८॥
अमर महाघणु गहिय करु। मेह-गइन्दे चडवि जस-लुद्धउ।
उप्परि गिम्भ णराहिवहो पाउस राउ णाइ सण्णद्धउ॥९॥ २८ १।

1—उत्तर रामचरित—२ ३।

णम्मयाए मयरहरहा जन्तिए। णा पमाहणु ल्उ सुरन्तिए॥१॥
धवघवेति ज जउ-पपारा। त जि णा णउर चकारा॥२॥
पुलिण जा व वि मच्छायइ। गा ज उन्ठणा ण जायन॥ ॥
ज जलु खल्इ वल उल्लोल्इ। रसणा-दामु त जि ण घाल॥४॥
ज आवत्त समुट्ठिय चगा। त जि णा तण तिवलि तरगा॥५॥
ज जल हत्थि कुम्भ साहिल्ला। ते जि णा थण अधुम्मिल्ला॥६॥
जो फिणार णियर अल्लोडइ। णावइ सा ज हार रखा॥७॥
ज जल्यर रण रगिउ पाणिउ। त जि णाइ तम्बा समाणिउ॥८॥
मत्त हत्थि मय मलिउ ज जल। तजि णा किउ अक्खिहि क जलु॥९॥
जाउ तरगिणिउ अवर ओहउ। ताउ जि भगराउ ण भउहउ॥१ ॥
जाउ भमर-पतिउ अल्लीणउ। केमावलिउ ताउ ण णिणउ॥११॥
म जतिए म दरमनिए माहसर-लग पव।
माप्पाउ ण जर लाउ तहु सहसकिरण हगावहु॥१२॥ (१४)

—रवा की कलकल करती जल धाराए नूपुरा की झकार क समान थी। कातियुक्त कूल उसके दुकूल थे करता जल उसकी करधनी की ध्वनि व्यक्त करता था। जल म आवत त्रिवलि तरग थ जलहस्तियो के कुम्भस्थल उसके स्तन थ फन समूह उसका हार तथा हाथियो क मद स आविल जल उसका काजल था। तरगावलि त्रिवण तथा भ्रमरावली उस बाला क केशकलाप थ। इस सुन्दरी रवा को देख माहेश्वर अधिपति सहस्रकिरण और लकाधिपति रावण दोनो मोहित हुए।

अयोध्या स राम क वन जाते हुए माग म कवि न गभीरा नदी का एक महा नदी क रूप म वणन किया है। गभीरा भयानक जल जन्तुओ स भरी हुई और वह वेग म फनयुक्त जल प्रवाह म बह रही थी। इस प्रकार क नदियो क वणन परम्परा भुक्त जान पडते हैं। वन गमन क माग क वणन म अनुमान होता है कि स्वयम्भू को अयोध्या क निकटवर्ती प्रदेश म घनिष्ठ परिचय नहीं था अयथा व इस प्रदेश का प्रयत्नशः भी भाति स्वानुभूत वणन अवश्य करत।

निशा का वणन कवि न वध क रूप म किया है। रावण लक्ष्मण वन म पहुँच कर विन्ध्य रवा क अन्तराल म एक स्थान पर ठहर गया। ठीक उसी समय सूर्यास्त हो गया—

अथवणहो ढक्कु पत्त ताम। अल्लाण पासु णिसिअत्थ णाव॥ ॥
दरिसाण वय मामतवाह। णक्खत्त कुसुम सहरगणाह॥६॥
तिमिर वाचरिय रणवाग। मगाव भमर वणगयगत॥७॥

बहुलजण समुद्द निलय-तार । जोण्हा ण्हालिय हार भार ॥८॥
ण वर्चवि निट्ठि न्दिवायरासु । णिमि - वहु अल्लाण णिमायरासु ॥९॥
विण्णि वि दुग्गाइ महावईं मुरउ म इ भुजन्ताइ ।
मा निय कहि मि णिएमउ णाइ म-मवई मुत्ताइ ॥१०॥
(१३ १०)

—सूर्य गतिरूपी अम्बा के आश्रम में जाना चाह रहा था । निशारूपी वधू चन्द्रमा को साथ में ले रही । चमकते तारे उसके वस्त्र थे नक्षत्ररूपी पुष्पों से उसकी वेणी गुँथी हुई थी, उसका कपाल-तट कृत्तिका से चर्चित था । गुरु-बृहस्पति इसके कर्णफूल थे उसकी आँखों में अन्धकार का अंजन लगा था । तारागण उसका तिलक था और जुन्हाई उसका हार था ।

इसी प्रकार प्रभातवर्णन में स्वयम्भू ने उदयगिरि पर उगते हुए सूर्य का चित्रण किया है । विमल विहान में वह सूर्यबिम्ब ऐसा लगता था मानो कोमल किरणों से ढँका मंगल-कलश रख दिया गया हो । वसन्त का वर्णन कवि ने राजा के रूप में किया है । यह वर्णन परंपरा मुक्त है—

डाला तोरण बारें परिहर । पइट्ठु वसन्तु वसंत मिरा-हर ॥१॥
सरसइ वासहरहि रव रउइ । आवासिउ महुअरि-अन्तेउर ॥२॥
कोइल कामिणाउ उज्जाणहिं । सुय-सामन्त लयाहर-थाणहिं ॥ ॥
पवय छत दण्ड सर णियरहिं । मिहि-माहुलउ महाहर मिहरहिं ॥४॥
कुसुमा-मंजरि धय माहारहिं । रवणा गण्डिवाल कयारहिं ॥ ॥
वाणर मालिय साहा-वन्तहिं । मत्थर मतवाल मयरन्तहिं ॥६॥
मज-ताल व गाव सहिं । भजा अहिणव-पत्त मइण्णासहि ॥७॥
एम पट्टण विरहि विद्दवउ । गयवर-वम्महिं अत्थाणउ ॥८॥
पक्खवि एत्तहे रिद्धि वसन्तहो महु लक्खु-मुरासव मत्ता ।
णम्मय-वाला सम्मुह मागा ण समउ मराणहो रत्ता ॥९॥ (१८ २)

—राजा वसन्त ने वनस्थली के गृह में प्रवेश किया । उद्यान में कोकिल कामिनी थी सरोवरों में कमल छत्रदण्ड थे आम्र मंजरियाँ पताकाएँ थीं । लहरों के शब्द मधुर तार थे । कामदेव से आन्दोलित विरही को दग्ध करता हुआ वसन्त आ पहुँचा ।

विन्ध्य पवन का वर्णन करते हुए कवि ने उसके पुष्पों को सौन्दर्य बताया है । विन्ध्याचल गिरि में यक्ष या उस पर वीर तथा अन्य वर्गों के जगल थे । महानल से वह संतप्त तथा मेघ के समान सजल था । विन्ध्य पवन योद्धा की भाँति द्रुम शक्ति (पाव और जगल) दिखाया गया था—

थोवतर महिहर भुअण सिरि। सिरिवन्त उ गामइ विजइरि॥१॥
हरिणपहु ससिपट वणपट्टु। पिहुलमंड णिप्पहु पाणपट्टु॥२॥
मुरवा त ग नार त वगहर। विमका ब्व ग मग महत न॥५॥
मयगा ब्व महाणव न्द्र-तणु। जन्त उ त स-वारि मन त स-वणु॥४॥

(२७२)

दण्क वन का वर्णन स्वयंभू न विलासिनी स्त्री क रूप म किया है—
न्ठि महान्इ णाइ विलासिणि। गिरिवर-थणहर सिहर-पगासिणि॥१॥
पञ्चाणण णह णियर वियारिय। दोहर भर नायण विप्फारिय॥२॥
कन्दर नणि मव जहर विहसिय। तरवर रोमावलि उद्धसिय॥३॥
चन्दण अगर गंध न्विलिन्किय। इन्गाव कुंकुम चर्चिक्किय॥४॥
अहवइ कि वहुणा वित्थारें। ण णच्चइ गय-पय सचार॥५॥
उज्जर मरवफाल्यि मद्दें। वरहिण थिर सुपरिन्ठिय छन्दें॥६॥
मन्अरितिय उत्गीय वमारें। अहिणव पल्लव कर सचारें॥७॥
साहारालि समुट्ठिय वउयउ। णाइ पन्इ मणि-सुत्तय मगल॥८॥
नहा अब्भन्तरें अमर मणोहर णयण कन्वि सउ एक्कु ल्याहर।
तहि रन करे विययइ मन्ठन्न जाग ञाविणु जेम मणिन्न॥९॥

(४१)

—दण्डकारण्य का चारियां सिंहो क नखो स विदीर्ण थी मानो उनकी व स्तन विभिन्न हो गय हो। सरोवर उसके नेत्र और धारा उसका मत्त था। वह व तावरा रूपी राम राजि म अलकृत था। गजो क पदसचार क रूप म अस्वा नृत्य कर रही था। एमा जान पड़ना था कि दण्डकारण्य मनि सुव्रतनाथ का मगल पाठ कर रहा हो। स्वयंभ क वर्णनो म विषय-भाव नमना नाप्ता गास्त्रवरा आदि नदियां का विभिन्न वर्णन मिलता है। इमस कवि क इस प्रदेश स परिचित होन का अनुमान होता है।

स्वयंभू संस्कृत प्राकृत काव्य-परम्परा स परिचित एव प्रभावित थ। उनक वर्णन वाल्मीकि कालिदास तथा परवर्ती संस्कृत महाकवियो का स्मरण दिलात हैं। जलक्रीडा वर्णन तथा और आदिकाव्य क पम्पासर वर्णन दोनो म साम्य मिलता है। माता क रूप वर्णन (प च ३८ ३) और कालिदास क नाबुनत (२ १०) क वर्णन म पर्याप्त साम्य दृष्टव्य है। इस प्रकार क अनक स्थल दख जा सकत हैं। अजना क लिए पवनजय का विलाप (प च० १ १५) विक्रमोर्वशीयम म उर्वशी क लिए पुरुरवा क विलाप का स्मरण दिलाता है। वर्णनो म स्वयंभ का निरा तर नवीनता का आभास होता है। वर्ण्य-वर्णीय

वर्णन परम्परामुक्त है। वानर द्वीप के वर्णन में भट्टिकाव्य का प्रभाव स्पष्ट है[१]—

जहिं जलइ णाहिं विणु पंकएहिं। पंकयइं णाहिं विणु छप्पएहिं ॥४॥
जहिं वगद णाहिं विणु अम्बएहिं। अम्बा वि णाहिं विणु गोच्छएहिं ॥५॥
गोच्छा वि णाहिं विणु कोइलेहिं। कोइलउ णाहिं विणु कल्यलेहिं ॥६॥
जहिं णल्इ णाहिं विणु तरुवरेहिं। तरुवर वि णाहिं विण ल्यहरेहिं ॥७॥
ल्यहरइ णाहिं णिक्कु सुमियइ। जहिं महुयर विल्इ ण भमियइ ॥८॥
माहउ णउविणु वाणरेहिं णउ वाणर जाहं ण बुक्कारा।
ताइं णियन्तउ तहिं जे थिउ विज्जाहरु सिरिकण्ठ-कुमारो ॥९॥ (६ ६)

—वानर द्वीप में पानी कमलों के बिना नहीं था कमल भौंरों के बिना नहीं थे। आम मंजरियों के बिना नहीं थे, मंजरियाँ ऐसी न थीं जिनमें कल्कूक न हो। तरुवर ऐसे न थे जो लतायुक्त न हों। लतायें फूल रहित न थे फूल ऐसे न थे जिनमें भौंरे न हों। वन की शाखाएँ ऐसी न थीं जिन पर बन्दर न हों और बन्दर ऐसे न थे जिनमें बुक्कार ध्वनि न हो। इसी प्रकार बाणभट्ट और भवभूति के वर्णन शैली की छाया भी पउम चरिउ में दिखायी देती है। संस्कृत प्राकृत काव्य परम्परा में अपभ्रंश के प्रथम रामकाव्य पउम चरिउ की रचना हुई थी उसकी मूल प्रेरणा अवश्य भिन्न है।

पउम चरिउ में जैन सम्प्रदाय के अनुकूल रामकथा का वर्णन किया गया है। उसमें शृंगार वीर करुण और शान्त रस मुख्य है। स्थान स्थान पर जैन धर्म के अनुसार संसार की नश्वरता जीवन की क्षणभंगुरता वैराग्य जैन सिद्धान्तों का प्रतिपादन आदि प्रसंग मिलते हैं। सीताहरण के पश्चात् राम संसार के मिथ्यात्व पर विचार करते हैं (प० च० ३९–११)। राम कहते हैं कि संसार में सुख नहीं है दुख असीम है जीवन जल बिन्दु के समान अस्थिर है। घर परिजन बन्धुबांधव माता पिता हितैषी-स्वजन पुत्र-कलत्र सहोदर ये सब सम्बन्ध निस्सार हैं। वृक्ष पर पक्षियों के वास के समान इनमें कोई स्थायित्व नहीं है। पउम चरिउ में वर्णनों में धार्मिक भावना का गहरा रंग मिलता है। कथा का पर्यवसान जैन धर्मानुकूल किया गया है।

१—भट्टिकाव्यम्—

न तज्जलं यन्न सुचारु पङ्कजं न पङ्कजं तद् यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ॥

पउम चरिउ में स्वयंभू ने साहित्यिक अपभ्रंश का प्रयोग किया है। अनेक स्थलों पर अनुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग मिलता है। शब्दों की योजना प्रसंग और भावों के अनुकूल की गयी है। अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग इस महाकाव्य में मिलता है। महाकाव्य के अनुकूल शब्दों की विविधता पउम चरिउ में पाई जाती है। स्वयंभू की रामचरित विषयक कृति पउम चरिउ का स्थान देश के उत्कृष्ट महाकाव्यों के बीच है यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है।

(ख) पुष्पदंत महापुराण

महाकवि पुष्पदन्त ने महापुराण में रामकथा का वर्णन किया है। पुष्पदंत काश्यप गोत्री ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केशव भट्ट तथा माता का नाम मुग्धा देवी था। मान्यखेट में राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज तृतीय अथवा वल्लभराज के मंत्री भरत और नन्न के आश्रय में ये रहे थे। पुष्पदन्त ने भरत के आश्रय में रह कर महापुराण अथवा तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकार की रचना की थी। नन्न के आश्रय में उन्होंने णाय कुमार चरिउ और जसहर चरिउ की रचना की। मान्यखेट अब हैदराबाद में मलखेड के नाम से प्रसिद्ध है।

पुष्पदन्त का एक नाम खण्ड भी था। वे धनहीन तथा दुबले शरीर के थे। अपने कवित्व का उन्हें अभिमान था। उत्तर पुराण के अन्त में उन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है। सिद्धि विलासिनी के मनोहर दूत, मुग्धादेवी के शरीर से संभूत, निर्धनों और धनियों को एक दृष्टि से देखने वाले, सारे जीवों के अकारण मित्र, शब्द सलिल से बढ़ा हुआ है काव्य-स्रोत जिनका, केशव के पुत्र, काश्यप गोत्री, सरस्वती विलासी, सूने पड़े हुए घरों और देवकुलिकाओं में रहने वाले, कलि के प्रबल पाप पटलों से रहित, बेघरबार, पुत्रकलत्रहीन, नदियों वापियों और सरोवरों में स्नान करने वाले, पुराने वस्त्र और वल्कल पहिनने वाले, धूलि धूसरित अंग, दुर्जनों के संग से दूर रहने वाले, पण्डित-पण्डित मरण की प्रतीक्षा करने वाले, मान्यखेट नगर में रहने वाले, मन में अर्हन्त देव का ध्यान करने वाले और भरत मंत्री द्वारा सम्मानित, अपने काव्य प्रबन्ध से लोगों को पुलकित करने वाले और पापरूपी कीचड़ को जिन्होंने धो डाला है ऐसे अभिमान मेरु पुष्पदन्त ने यह काव्य जिनपद-कमलों में हाथ जोड़े हुए भक्तिपूर्वक क्रोधन संवत्सर की आषाढ़ सुदी दसमी को बनाया।

१—नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ।

पुष्पदंत रचित महापुराण, आदि पुराण और उत्तर पुराण खण्डों में विभक्त है। आदि पुराण में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव तथा प्रथम चक्रवर्ती भरत का चरित वर्णित है। उत्तर पुराण में शेष २३ तीर्थंकरों तथा उनके समय के महापुरुषों के चरित वर्णित हैं। उत्तर पुराण की ६९वीं संधि से लेकर ७९ संधि तक की ११ संधियों में रामकथा वर्णित है जो स्वतन्त्र रूप से पउम चरिउ अथवा पद्म पुराण कहते हैं। इसी खण्ड में हरिवंश पुराण (कृष्ण कथा) का भी सम्मिलित किया गया है। महापुराण में कुल १०२ संधियाँ हैं। इस ग्रंथ की रचना में कवि को लगभग ६ वर्ष लगे थे। कवि ने मंत्री भरत की प्रेरणा से ग्रन्थ का आरम्भ ९५९ ई० में किया था और ९६५ ई० में इसे समाप्त किया। पुष्पदन्त का समय विद्वानों ने ईसा की दसवीं शताब्दी माना है।

कथावस्तु—पुष्पदन्त ने रामकथा का वर्णन गुणभद्राचार्य की परम्परा के अनुसार किया है। ११ संधियों में वर्णित रामकथा इस प्रकार है—राम और लक्ष्मण अपने पूर्व जन्म में राजा प्रजापति और उसके मंत्री के पुत्र थे और उनका नाम चन्द्रचूल और विजय था। युवावस्था में उन्होंने श्रीदत्त नामक व्यापारी की स्त्री कुबेरदत्ता का अपहरण किया। राजा को उसकी सूचना मिली तो उसने मंत्री को आदेश दिया कि वह उन्हें जंगल में ले जाकर मार दे। मंत्री उन्हें जंगल में ले गया लेकिन उन्हें मारा नहीं। उसने उन्हें महाबल नाम के जैन साधु से मिलाया। साधु ने मंत्री से कहा कि ये दोनों तीसरे जन्म में बलदेव और वासुदेव होंगे। इस पर वे दोनों जैन साधु हो गये और तप करने लगे। मृत्यु के बाद वे मणिचूल और सुवर्णचूल देवता हुए। अगले जन्म में वे सुबला और कैकयी रानियों से दशरथ के पुत्र होकर जन्मे। सुवर्णचूल सुबला के गर्भ से राम और मणिचूल कैकयी के गर्भ से लक्ष्मण हुआ। राम का वर्ण श्वेत और लक्ष्मण का श्याम था।

सीता विद्याधर रावण और मन्दोदरी की पुत्री थी। इस भविष्यवाणी के कारण कि सीता अपने पिता पर विपत्ति लायेगी उसे एक मंजूषा में रख कर खेत में गड़वा दिया गया। एक किसान ने खेत में हल चलाते हुए उसे पाया और जनक के पास ले आया। जनक ने उसे पुत्री के रूप में स्वीकार किया। राम से सीता का विवाह हुआ। नारद ने एक बार रावण से कहा कि राम ने सीता से विवाह किया वह सुन्दरी रावण के योग्य थी। यह सुन कर रावण सीता पर आसक्त हो गया। रावण ने चन्द्रनखा (शूर्पणखा) को सीता का मन जानने के लिए भेजा किन्तु उसने सीता को अडिग पाया। इसके पश्चात् रावण विमान में बैठ कर एक स्थान में गया और जहाँ राम और सीता विहार कर रहे थे। उसने

मारीच ने स्वर्ण मृग बन कर सीता का मन लुभाने के लिए कहा। राम जब स्वर्ण मृग के पीछे गये तब रावण सीता का अपहरण कर लंका ले आया। राम ने सीता की खोज की किंतु कुछ पता न चला। दशरथ ने उसी अवसर पर स्वप्न देखा कि रावण सीता को हर ले गया है। राम जब सीता की खोज करने के बारे में विचार कर रहे थे उस समय सुग्रीव और हनुमत राम के पास सहायता के लिए आये। हनुमत ने प्रतिज्ञा की कि वे सीता का समाचार लायेंगे। हनुमत लंका गये। मक्षिका का रूप धर कर वे रावण के महल में गये। और सीता की खोज की। अंत में उन्होंने सीता को वाटिका में पाया जहाँ रावण प्रेम स्वीकार करने के लिए उनसे कह रहा था। सीता ने रावण की ओर नहीं देखा। मन्दोदरी वहाँ आयी। सीता को अपनी पुत्री के रूप में पहिचाना और आश्वस्त किया। उसके चले जाने के बाद हनुमत सीता से मिले। रामदूत होने का विश्वास दिलाया और संदेश सुनाया। हनुमत राम के पास लौटे और सीता का समाचार दिया। रावण के विरुद्ध अभियान करने से पूर्व राम ने हनुमत को दूत बनाकर यह जानने के लिए कि क्या रावण शान्ति से सीता को लौटा देगा भेजा किन्तु रावण ने दूत का अपमान किया। बालि का वध लक्ष्मण ने किया और राज्य सुग्रीव को सौंपा। राम और लक्ष्मण ने दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति के लिए तप किया। रावण का भाई विभीषण रावण के दुर्व्यवहार के कारण राम की ओर आ गया। राम और रावण का युद्ध हुआ जिसमें लक्ष्मण ने रावण को मारा। रावण की मृत्यु के बाद विभीषण को राम ने लंका के सिंहासन पर बिठाया। लक्ष्मण उसके पश्चात् अर्धचक्रवर्ती बने। मृत्यु के उपरान्त लक्ष्मण रावण वध के कारण नरक गये। भाई की मृत्यु से शोकग्रस्त राम ने विरक्त होकर भिक्षु जीवन बिताया और मोक्ष प्राप्त किया।

रामकथा पुष्पदन्त ने आत्म विनय से आरम्भ की है। कवि कहता है कि मेरे पास रामचरित रचना के लिए सामग्री नहीं है और मेरे पूर्व महाआचार्य स्वयंभू आदि महाकवियों ने रामकथा सम्बन्धी अनेक रचनाएं की हैं।

कथा का आरम्भ रामकथा सम्बन्धी शंका से होता है। राजा श्रेणिक गौतम

१—श्री [illegible] वैद्य—रामायणम् भूमिका माणिकचन्द्र जैन ग्रंथमाला।

२—सामग्गि ण एक्क वि अत्थि मइं। किर कवण ण्णाइ चिरकईहिं सुइं।
कव्वाउ सयल सत्थइं रइउ। सा सयणसहासहिं परियरिउ।
चउमुहु चयारि मुहाइं जहिं। सुकइत्तण सीसउ काइ तहिं।
सो एक्कु न कि मइं गण्णियउ। विण्णाण पगुणउ सण्णियउ।
मइं छंदु ण लक्खु किंपि णावियउ। अप्पउ जणि हासउ पावियउ।

से कहते हैं कि रामकथा के सम्बन्ध में मेरे मन में शंका है। रावण के दस मुख कैसे थे। इन्द्रजित रावण से आयु में कम कैसे था। रावण मनुष्य न होकर राक्षस कैसे था। उसके बीस आँखें और बाम हाथ कैसे थे और वानर को उसने अपने सिर पर कैसे चढ़ाया था। रावण राम के बाण से कैसे मारा गया और लक्ष्मण की लम्बी भुजाएं कैसी थीं। सुग्रीव आदि वानर कैसे थे। और विभीषण चिरजीवी किस प्रकार है। कुम्भकर्ण ६ मास कैसे सोता था। और १००० महिष खाकर उसकी क्षुधा तृप्त होती थी। वाल्मीकि और व्यास के वचनों से वंचित होकर अन्य लोग कुमार्ग के कूप में गिर पड़े। अतएव हे गौतम पद्म चरित का यथार्थ रूप वर्णन करिये। इसके पश्चात् गौतम रामकथा सुनाते हैं।

महापुराण का कथानक अति विस्तृत है। ६२ महापुरुषों के चरित के अन्तर्गत रामचरित का भी समावेश किया गया है। महाकाव्योचित सरस एवं सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ में अनेक स्थल पर आये हैं। राम कथा के अंतर्गत आये कतिपय स्थल द्रष्टव्य है। सीता हरण के बाद राम विरह-व्याकुल होकर सीता की खोज करते हैं। सीता के वियोग में शीतल जल राम को विष के समान और हरि चन्दन अंगों को जलाने वाला बन जाता है। वन में सीता को खोजते हुए राम का वर्णन पुष्पदन्त ने किया है। पुष्पदन्त के वर्णन और गोस्वामी तुलसीदास के इस प्रसंग के वर्णन में साम्य है।[3]

वर्णियवइ जइ वि ण परमत्थि। घित्तइ तो वि मच्छु वरमि।
मइ पमउ भडारी विउसगह। आयण्णहु रहुवइगयकह।
सुकइपयासियसग्गि मणि दहमुहु वि पमक्कइ॥
रामधम्मगुणमद्दि अमह पिसुण वहिं दुक्कइ॥६९ १।

१—वम्मायवासवयणिहि णडिउ। अण्णाणु कुम्मग्गकूवि पडिउ॥
गोतम पोमचरितु सुवणि पवितु पयासहि।
जिह सिद्धत्थसुएण दिट्ठउ तिह महु भासहि॥६९ २।

२—सायरु विसु विसु व ण मनि जणइ। हरियन्दणु सिहिकुलु अगु छणइ।
णलिणु वि सूरहु मयणतु वहइ। मयणायवहि चित्तइ रहइ इहइ।
पिय विरहु जल्हद गिहि व जलइ। चमरानिलु तासु महाउ धरइ।
मइ गयइ वहरिरिवि भुवकसार वच्छु वाम वच्छासउ।
विणु सायइ भावइ राहवहु णाहउ णाहयपासउ। ७ ।

३—जहि घरि गामि गामि पुरि घरि घरि गिरिकन्दरिणिवासए॥
जायइ वहि मि घरिणि जण जाणइ यदुरुगामपवगए॥

उनतरवा सधि म राम रावण युद्ध म वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ ह। छन्द और शब्द-योजना प्रसग के अनुकूल की गई ह। इस प्रकार क वणन परवर्ती रामकाव्यो म तथा वीरगाथा काल के काव्यो म युद्ध वणन क प्रसग म मिलत है। सीता हरण क पश्चात कवि ने सध्या का सजीव वणन किया ह। महा काव्य के अनुकूल सधियो म विभिन्न छन्दो क प्रयोग किय गय है। पुष्पदन्त की भाषा स्वाभाविक तथा जनभाषा म प्रयुक्त वाक्यावली स युक्त चलती हुई सरल एव प्रभावशाली है। पुष्पदत अपभ्रंश क सर्वोत्कृष्ट कवि कहे जा सकते हैं।

(ग) रघू पद्मपुराण

अपभ्रंश म रामचरित का वणन करने वाल तीसरे जन कवि रइधू हैं। इनका समय विक्रम की १५वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इन्होंने पद्मपुराण (बलभद्र पुराण) की रचना की थी।

महाकवि रइधू की रचनाओ क सबध म सूचनाए पिछले दो दशको म उप लब्ध हुई है और रइधू साहित्य का विस्तृत अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है।

अवियाणिउ जगि का कु वासु पमिय विवर दमसु वि णियासु।
गइ वाणणि रहवइ णियमाण पुरउ वणि मिगइ अयाणमाण।
र म हम मा मगमण पइ दिट्ठी वत्थइ विउसमण।
चगउ चिम्मवत मिक्खिउ मि म चवन्तु जि सल कि गआ मि।
र कुजर तु कुमत्थला ण मह महिला पणत्यणा।
मारिक्वउ स्यउ एउ का मण वन कहि णिण पया।
मारग वहनि मद्द जणयधीय णयणहि उवजावियं प मि गीय।
अवि परिणिसणिद्धत्तार णिमि मर्रहस्सयरपणार।
ण वियाणि कहि तणिय वत्त र णास्णीव यण्णरामवत्त।
ण वनि णि भणु कहि मि वि स्यर कहि णचवि भाउ वि।
र वार ण कवि जाणमाण ज णिरउ पइ मइ पमाण।
गिरि विरत मागउ दामरि विवि अज्ज जि सुचहि।
णाममवावमनावर मह दुअउ तुट्ठ वचवि॥ ७ ८।

इस ष्टा म गोस्वामी तुलसीदास का वणन लिय—
ह सग मग ह मधकर सर्नी। तुम्ह म्वा माता मग नयनी। इत्यादि।
आरण्यकाण्ड— ।

१—पद्मपुराण— ७ ।

रइधू अपने समय के मुख्य जैनाचार्य थे। वे देव, शास्त्र, गुरु के भक्त थे तथा क्षणभंगुर संसार से विरक्त थे। पुराण तथा इतिहास के विशिष्ट अभ्यासी तथा रचयिता थे। रइधू प्रतिष्ठाचार्य भी थे उन्होंने अपने समय में अनेक जैन मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराई। संवत् १४९७ में उन्होंने आदिनाथ की एक विशाल मूर्ति की प्रतिष्ठा ग्वालियर के तत्कालीन तोमरवंशी शासक डूंगर सिंह के राज्यकाल में कराई थी।

महाकवि का नाम रइधू था। कुछ रचनाओं में उनका नाम सिंहसेन भी मिलता है किन्तु उनका प्रसिद्ध नाम रइधू ही है। सिंहसेन कदाचित् ऊपर नाम रहा होगा। प्रशस्तियों में उपलब्ध उल्लेखों से ज्ञात होता है कि रइधू-सद्गृहस्थ थे। वे संघपति देवराय के पौत्र तथा साहू हरिसिंह के पुत्र थे। इनकी माता का नाम विजयश्री था। सम्मत्तजिन चरिउ ग्रंथ की प्रशस्ति में निम्नलिखित उल्लेख है—

देवराय संघाहिव णंदणु हरिसिंह बुहयण कुलआणंदणु।
पोमावइ-कुल कमल दिवायर-सो वि सुणन्दउ एत्थु जसायर।
जस्स घरिज रइधू बुह जायउ देव सत्थ गुरु पय अणुरायउ।

रइधू अपने माता पिता के तृतीय पुत्र थे। अन्य दो बड़े भाइयों का नाम बाहोल तथा माहणसिंह था। रइधू की पत्नी का नाम सावित्री था। रवि के पुत्र उदयराज का भी उल्लेख मिलता है जो सर्वगुण संपन्न था। रइधू पद्मावती पुरवाल जाति के थे। ग्रंथ प्रशस्तियों से ज्ञात होता है कि इनके जो श्रद्धाता अनेक थे और कदाचित् ये कई स्थानों पर रहे भी थे। किन्तु ग्रंथों में इन्होंने ग्वालियर का विशेष वर्णन किया है। इनका निवास-स्थान अथवा साधनास्थल ग्वालियर मानना उचित ज्ञात पड़ता है। अपनी गुरु परंपरा में कवि ने गणकीर्ति यशःकीर्ति श्रीपालब्रह्म कमलकीर्ति तथा कुमारसेन पांच भट्टारकों का निर्देश किया है। ग्वालियर के कमलसिंह संघवी कवि के परममित्र थे जिनके लिए कवि ने सम्मत्तगुणणिहाण काव्य ग्रंथ की रचना की थी। इन्हीं कमलसिंह ने ग्वालियर दुर्ग में आदिनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी प्रतिष्ठा कार्य रइधू ने किया था। कवि के अन्य भक्तों में एक हरसी साहू थे जिनके लिए उन्होंने बलहद्द चरिउ (पद्म पुराण) की रचना की थी।

प्रशस्तियों में रइधू ने ग्वालियर के समकालीन राजा डूंगरसिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंह का उल्लेख किया है[1]। डूंगरसिंह के पिता का नाम गणेश था, कहते

१—परमानंद जैन शास्त्री—महाकवि रइधू-वर्णी अभिनंदन ग्रंथ—३९९ ४०१।

डूगरसिंह की रानी थी। डूगरसिंह का राज्यकाल संवत १४८१ से १५१० तक माना गया है। कीर्तिसिंह का राज्यकाल संवत १५१० से संवत १५[illegible]६ तक माना गया है। इन राजाओं के राज्यकाल में रइधू ने अपनी रचनाएं की थीं। सम्मतगणणिहाणकव्व नामक रचना का समय संवत १४९२ विक्रमी कवि ने दिया है। अन्य रचना सुकोमल चरिउ का समाप्तिकाल संवत १४९६ दिया है। सुकोमल चरिउ में कवि ने अपने तीन पूर्व रचित ग्रंथ णमिणाह चरिउ, पासणाह चरिउ तथा बलहद्द चरिउ का उल्लेख किया है। इस प्रकार रइधू का स्थितिकाल विक्रम की १५वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा १६वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाना चाहिए।

महाकवि रइधू ने अपभ्रंश में सबसे अधिक रचनाएं की हैं। डा० राजाराम जैन के अनुसार रइधू के तीस ग्रंथों की सूचना अब तक मिली है। इनमें से २४ रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं। इनकी एक अन्य रचना बारह भावना हिन्दी में है। एक अन्य ग्रंथ बहुतसिद्ध चक्रपूजा संस्कृत का और सबोध पंचासिका प्राकृत का ग्रंथ है। अन्य रचनाएं अपभ्रंश में हैं। अपभ्रंश में रचनाओं की प्रशस्तियों तथा संधियों में संस्कृत का प्रयोग हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि कवि का संस्कृत तथा अपभ्रंश भाषा पर अच्छा अधिकार था।

रामचरित का वर्णन रइधू ने पद्मपुराण (पउम चरिउ, बलहद्द चरिउ) में किया है। यह ग्रंथ अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियां आमेर शास्त्र भण्डार में हैं। एक प्राचीन प्रति श्री पन्नालाल अग्रवाल दिल्ली के पास सुरक्षित है। पं० परमानन्द जैन शास्त्री ने प्रस्तुत लेखक को सूचना दी कि पद्मपुराण का नानक ने हिन्दी पद्यानुवाद किया था किन्तु यह ग्रंथ देखने को नहीं मिल सका। पद्मपुराण ग्रंथ २६५ कडवकों तथा १२ संधियों में समाप्त हुआ है। ग्रंथ की रचना संवत १४९६ के पूर्व हो चुकी थी। रइधू ने पद्मपुराण की रचना रविषेणाचार्य की परम्परा में की है। प्रथम संधि में वंशोत्पत्ति तथा द्वितीय में रावण की दिग्विजय का वर्णन है। तृतीय संधि में पवनंजय विवाह, चतुर्थ संधि में रामजन्म, सीता विवाह, दशरथ का वैराग्य, भरत को राज्य तथा राम वनगमन प्रसंग वर्णित है। सीताहरण का वर्णन पांचवीं संधि में तथा सीता की खोज और हनुमान के द्वारा राम तथा सीता को सन्देश देने का वर्णन छठी संधि में किया गया है। सातवीं संधि में राम रावण-युद्ध, सीता सहित अयोध्या के लिए प्रत्यावर्तन, आठवीं संधि में लवणांकुश जन्म, राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध तथा सम्मिलन, नवीं संधि में सीता की अग्नि-परीक्षा तथा स्वर्गारोहण, दसवीं संधि में राम भक्ति वर्णन और ग्यारहवीं संधि में राम के निर्वाण का वर्णन है। बारहवीं संधि में प्रशस्ति के साथ ग्रंथ समाप्त हो जाता है।

पद्मपुराण में कवि ने गोवगिरिगढ़ (गोपाचलगढ़) और राजा डूंगरेन्द्र के राज्यकाल का निर्देश किया है—

गोवग्गिरि णामे गढ पहाण। ण विहिणाणिम्मिउ रयण ठाणु।
अइ उच्च धवल न हिमगिरिंदु। जहिं जम्म समिद्दइ मणि सुरिंदु।
तहिं डूंगरेंदु णामेण राउ। अरिराय सिरोवरि सज्जियघाउ। (प० पु० १ ९)

पद्मपुराण का आरंभ वंदना से होता है। अनन्तर आश्रयदाता हरसी साहु द्वारा कवि से ग्रंथ रचना के लिए अनुरोध का वर्णन है—

भो रइध पण्डिय गुण णिहाणु। पोमावइ वरवंस पहाणु।
सिरिपाल वम्ह आयरियसीस। मह वयणु सुणहि भो बुहगिरीस।
सोढल णिमित्त णेमिहु पुराणु। विरयउ जेम कइजण विहियमाणु।
तह राम चरितु वि महु भणहि। लक्खण समेउ इय मणि मुणहि।
महु साणुराउ तह भित्त तेण। विण्णत्ति मज्झ अवहारितेण।
महु णाम लिहहि चन्दो विमाणु। इय वयणु सुद्धणिय चित्ति ठाणु।
(बलभद्र पुराण १ ४)।

रइधू कवि अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं किन्तु श्रावक हरसी साहु उन्हें काव्य रचना के लिए प्रेरित और उत्साहित करता है (ब० पु० १ ५)। इसके पश्चात परम्परागत जम्बू द्वीप मगध देश राजगृह राजा श्रेणिक आदि का वर्णन है। आरंभ में राजा श्रेणिक रामकथा के सम्बंध में शंका करता है (ब० पु० १ ८)। इस शंका के उत्तर में गौतम जैन मतानुकूल रामकथा का वर्णन करते हैं।

रामचरित के मार्मिक स्थलों के सजीव चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं। तथा कथावस्तु का निर्वाह सफलता के साथ किया है। रावण के पराक्रम का वर्णन द्वितीय संधि में ३३ कडवकों में किया गया है तथा हनुमान चरित तृतीय संधि में २ कडवकों में प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ संधि में रामचरित का वर्णन आरंभ होता है। राम जन्म राम सीता विवाह तथा दशरथ वैराग्य का सुन्दर वर्णन चतुर्थ संधि में प्राप्त होता है। भरत के राज्याभिषेक वर्णन में भासकृत प्रतिमा नाटक के राज्याभिषेक की छाया दृष्टिगत होती है। राम वनगमन से भरत का दुःख तथा पुरवासियों का विलाप हृदयद्रावक है। राम के वन चले जाने पर भरत ने हा राम सहोदर हा माता सीता हा लक्ष्मण कह कर विलाप किया। यह कवि ने भरत के उज्ज्वल चरित्र का चित्रण किया है। वनवास के समय सीता के वियोग में राम अतनाकूल हो वृक्षों एवं पशुपक्षियों से

सीता के संबंध में पूछते हैं। यह प्रसंग रामचरित ग्रंथों में परम्परागत रूप से मिलता है। रावण को संयम से पूर्ण बनाया गया है। वह मन्दोदरी से कहता है कि मैंने गुरु के समक्ष नियम ग्रहण किया है कि अनिच्छा वाली स्त्री के साथ मैं बलात्कार न करूँगा। सीता के साथ उसने इस नियम के कारण बलात्कार नहीं किया। रावण के चरित के इस उज्ज्वल-पक्ष का वर्णन कवि ने रावण मन्दोदरी संवाद में इस प्रकार किया है—

> तं सुणिवि पयपइ राउ तासु। मन्दोयरि अवगहु सुणिउ पासु।
> जा तिय ण वि वंछइ मज्झ देहु। तहि समउ करमि ण णाहिणेहु।
> लिया रिणि वज्जमि रवसारि। किंपिए असंवमि तुअवार वार।
> मह पाण जइ उकवहि सुहंदि। तंदि जाइ मनावहि वीण संदि।
> (व० पु ६५)।

पद्म पुराण के मार्मिक स्थलों में विभिन्न रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। रामवनगमन, माता का शोक, दशरथ प्रव्रज्या तथा राम के वनवास पर भरत का विलाप, लंका में सीता का निवास आदि अनेक करुण प्रसंगों में कवि का मन रमा है। राम रावण युद्ध के प्रसंग में तुमुल संग्राम का सजीव वर्णन हुआ है। कवि रइधू ने रामचरित का सर्वांगीण एवं काव्योचित चित्रण इस ग्रंथ में किया है।

रइधू अपभ्रंश के समर्थ कवि थे। इनकी कृतियों का विषय वैचित्र्य, विषयगत ऊहापोह, पूर्ववर्ती एवं समकालीन साहित्यिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों की विस्तृत जानकारी आदि से उनकी बहुमुखी प्रतिभा का सहज ही परिचय मिल जाता है। गाथाक्तियों एवं मन्तव्यों को देख कर तो ऐसा भान होता है कि वह जनता का सच्चा प्रतिनिधि कवि था जिसने समाज के हृदय की धड़कन को पहचान कर उसकी समस्त समस्याओं का सर्वांगपूर्ण निदान

१—भा चपय चपय वणगारि। [illegible] प[illegible] जण चित्तहरि।
ह वर अमाय मद्दु माउ प[illegible]। ज[illegible] ता गम्या वहाणि।
र मन्यमन्दवि तुम्ह कहहि वन। अह व थिउ पउ मंदिरि अपन।
कि णरिंगरि पच्चहिंमि[illegible]। कि उत्तम्महि णग्ग [illegible]।
र [illegible]म हम म्मणाणि सुद्धि। मातु कहहि पन्तें विमल वद्धि।
जा[illegible] हम विघट्ट मुक्क मास्व। मा [illegible]मु वह[illegible] विम पन्नु [illegible]सु।
र चवरवि[illegible] कहि माय [illegible]। अहणणि कि दुक्खण धादु।
[illegible]प माए माहिउ वणि भम[illegible]। पुण जनु जनु कहि विम्म मइ।
विहम[illegible] गाव[illegible] ताम्प ह[illegible]। पुत्तु आउ आ[illegible] माया मन[illegible]। (व पु० ६२)।

उपस्थित किया है।[1] रइधू साहित्य इतिहास एवं जैन धर्म की दृष्टि से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

रइधू के समय में आधुनिक भाषाएँ अपना साहित्यिक रूप ग्रहण कर चुकी थीं। अपभ्रंश के यशस्वी कवियों ने विस्तृत राम साहित्य की रचना की है, इसकी चर्चा संक्षेप में की जा चुकी है। इन रचनाओं का सम्यक अध्ययन अभी नहीं हो पाया है और हिन्दी साहित्य में उन्हें जो स्थान मिलना चाहिए वह अभी तक नहीं मिल सका है। इस ओर हिन्दी के विद्वानों के ध्यान देने की अपेक्षा है। अपभ्रंश की साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा उसके काव्यरूपों का पल्लवन परवर्ती हिन्दी साहित्य में हुआ। इस दृष्टि से भी अपभ्रंश साहित्य के परिशीलन की अपेक्षा है। रामकथा के लिए दोहा-चौपाई की पद्धति आगे चल कर बहुत लोकप्रिय हुई और इसका सर्वोत्कृष्ट विकास गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस में हुआ। अपभ्रंश साहित्य में कड़वक घत्ता पद्धति अपनाई गई है। स्वयंभू के पउम चरिउ की चर्चा करते हुए राहुल सांकृत्यायन ने यह मत व्यक्त किया था कि गोस्वामी तुलसीदास स्वयंभू की रचना से परिचित एवं प्रभावित थे। आचार्य शुक्ल ने भी परवर्ती साहित्य पर अपभ्रंश के प्रभाव का उल्लेख किया है।[3] तुलसी पूर्व हिन्दी राम साहित्य के विविध पक्षों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन परंपराएं संस्कृत प्राकृत रचनाओं मे उद्भूत होकर अपभ्रंश से होती हुई हिन्दी साहित्य में आई है।

---

१ —डा० राजाराम जैन—रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन (शोध प्रबंध) पृ० ३९—गवनमेन्ट प्राकृत रिसर्च इन्स्टीट्यूट मुजफ्फरपुर बिहार।

२—राहुल सांकृत्यायन—हिन्दी काव्य धारा—पृ० ५२।

—आचार्य शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ७।

अध्याय ३

दशावतार वर्णन—अथ दसम

महाकवि चन्दबरदाई और उनकी रचना पृथ्वीराज रासो बहुचर्चित हिन्दी साहित्य में सबसे अधिक विवादग्रस्त हैं। चन्दबरदाई हिन्दी के अंतिम चौहान राजा पृथ्वीराज के सभाकवि थे। पृथ्वीराज और चन्दबरदाई की समकालीनता रासो से स्पष्ट तथा परम्परा से प्रसिद्ध है। सन ११९२ ई० में पृथ्वीराज और मोहम्मद गोरी के तराइन युद्ध का समय निश्चित है। अतएव चन्दबरदाई का समय १२वीं शताब्दी ईसा का उत्तरार्द्ध मानना उचित होगा।

पृथ्वीराज रासो के वर्णनों में अनैतिहासिक तत्त्व पाये जाते हैं। पृथ्वीराज के समकालीन कवि जयानक द्वारा रचित पृथ्वीराज विजय में दिया वृत्त प्रायः इतिहास सम्मत है। इस कारण अनेक विद्वान पृथ्वीराज रासो को अशुद्ध एवं १८वीं शताब्दी तक की कृति मानते हैं। और कुछ लोगों ने चन्द के अस्तित्व तक में अविश्वास प्रकट किया है। कतिपय विद्वानों का मत है कि चन्द ने अपनी मूल कृति की रचना अपभ्रंश में की थी और उसमें परवर्ती काल में परिवर्द्धन होता रहा। प्रक्षिप्त सामग्री के कारण मूल रचना विकृत हो गयी और उसका कलेवर अत्यधिक बढ़ गया। ग्रन्थ में अनैतिहासिक तत्त्वों के समावेश का भी यही कारण है। रासो का वर्तमान रूप अत्यन्त विवादग्रस्त है। किन्तु अधिकांश विद्वान अब यह मानने लगे हैं कि चन्द की मूल कृति के अंश रासो के विभिन्न संस्करणों में वर्तमान हैं यद्यपि उन्हें खोज निकालना अब भी दुःसाध्य कार्य बना हुआ है। रासो के वृहत्, मध्यम, लघु और लघुतम संस्करणों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर प्रक्षिप्त सामग्री को पृथक कर तथा प्राचीन अंशों को संकलित कर रासो की मूल कृति के निकट पहुँचने का प्रयास किया गया है। पाठ निर्धारण के क्षेत्र में रासो के विद्वान सम्प्रति संलग्न हैं।

चन्दबरदाई ने रामकथा का वर्णन दशावतार वर्णन के अन्तर्गत किया है। दशावतार वर्णन के आकार में भिन्नता पाई जाती है। रासो के इस अंश के सम्बन्ध में डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी ने यह मत व्यक्त किया है कि दशावतार वर्णन रासो के लघुतम संस्करण में मिलता है। और वह मत्स्यावतार का प्रारम्भिक अंश

है। इस वर्णन के अन्तर्गत रामकथा, प्रस्तुत परिच्छेद का विषय है जिसका विवेचन नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण के आधार पर किया गया है।[1]

दशावतार वर्णन परम्परा—अवतार वर्णन का प्रसंग इतिहास-पुराणों में सामान्य रूप से मिलता है। विभिन्न दृष्टियों से अवतारों का वर्गीकरण और उनकी गणनाएं विभिन्न कालों में की गयी हैं। इन गणनाओं में दशावतार की गणना सर्वाधिक प्रसिद्ध है। अवतारों की गणना में सामान्यतया विभिन्नता पायी जाती है। इतिहास तथा भक्तों की मान्यता सम्बन्धी भेद कदाचित इसके कारण रहे होंगे। दशावतार गणना महाभारत के शान्तिपर्व में मिलती है। इस गणना में नामक्रम इस प्रकार है—हंस, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, दाशरथिराम, सात्वत तथा कल्कि। इस गणना में हंसावतार का स्थान प्रथम है, सात्वत का अर्थ कृष्ण से है और इसमें बुद्ध की गणना नहीं की गयी है। निम्बार्क सम्प्रदाय हंसावतार पर प्रतिष्ठित है अन्यथा हंसावतार अप्रसिद्ध है। यह गणना कदाचित बुद्ध के अवतार माने जाने के पूर्व की है। दशावतार की एक गणना मत्स्य पुराण (चौथी शताब्दी) में मिलती है। इसके अनुसार अवतारों के नाम ये हैं—नारायण, नृसिंह, वामन, दत्तात्रेय, मान्धाता, जामदग्न्य राम, वेदव्यास, बुद्ध और कल्कि (४७।२४ २४५)। यह सूची अन्य सूचियों से बहुत भिन्न है। भागवत में अवतारों की एक गणना में २२ और दूसरी में २१ अवतारों का उल्लेख है। इसमें पहले सनत्कुमार आदि चतुःसन की गणना की गयी है। अन्यत्र अवतारों की संख्या २४ बतायी गयी है। चतुर्थ शताब्दी के विष्णु (१।४ अध्याय) और मार्कण्डेय (४७ अध्याय) पुराणों में ब्रह्मा द्वारा सृष्टि वर्णन में अवतारों में वराह अवतार की गणना पहले की गयी है। हरिवंश में अवतारों का वर्णन कई स्थलों पर किया गया है किन्तु प्रत्येक सूची भिन्न है।

ईसा की छठी शताब्दी तक महात्मा बुद्ध विष्णु के अवतार स्वीकार कर लिये गये थे। मत्स्य से कल्कि तक दशावतार की गणना आठवीं शताब्दी तक प्रचलित

१—पृथ्वीराज रासो नागरी प्रचारिणी सभा १९०४।

२—हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावाद्द्विजोत्तम।
वराहो नरसिंहश्च वामनो राम एव च।
रामो दाशरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेव च।
—महाभारत शान्तिपर्व [illegible]९।१०३ १०४।

हो गयी थी।[1] अग्नि पुराण का काल आठवी शताब्दी माना गया है और प्राय यही समय वराह पुराण का भी है। ये पुराण इस सबध म उल्लेख्य हैं। दशावतार क्रमश इस प्रकार हैं—मत्स्य कूर्म वराह नृसिंह वामन परशुराम राम कृष्ण बुद्ध और कल्कि। ईसा की आठवी शताब्दी तक यह क्रम सवमान्य हो गया था। इस काल की मूर्तियो म भी यही अवतार अकित मिलते हैं। इन अवतारो के पूजा विधान की भी व्यवस्था इस समय हो चुकी थी।

पुराण साहित्य के अतिरिक्त काव्य साहित्य म अवतारो की स्तुतियाँ मिलती हैं। सप्तमशतक म माघ के शिशुपालवध म नारद ने प्रथम सग म तथा भीष्म पितामह ने चतुदश सग म विभिन्न अवतारो के रूप म श्रीकृष्ण की स्तुति की है।[2] दशावतार वणन की निश्चित तिथियुक्त प्रथम विशिष्ट रचना ११वी शताब्दी म मिलती है। नाना रूप विष्णु की स्तुति के लिए महाकवि क्षमेन्द्र ने अपनी अलिमकृति भक्तिव्यक्तदशावतारसरस पूजा प्रबध दशावतारचरितम की रचना १ ६६ ई म की थी। इस ग्रथ म अवतारो का क्रम मत्स्य कम वराह पुरुषहरि वामन जामदग्न्य काकुत्स्थ कसहन्ता सुगतमुनि तथा कल्कि दिया गया है। क्षमेन्द्र की रचना दशावतार वणन की परपरा तथा रामकथा के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

महाकवि क्षमेन्द्र शारदा देश अथवा कश्मीर के निवासी थे। उनका जीवन काल कश्मीर के दो राजाओ अनन्त (१ २८ १ ६३) तथा कलश (१ ६ १०८९) के शासनकाल के अन्तगत व्यतीत हुआ। क्षमेन्द्र ने विशाल साहित्य की रचना की। इनका कविता का नाम व्यासदास था। उन्होंने महाभारत का सक्षिप्त रूप भारत मजरी तथा गुणाढ्य बृहत्कथा कृत का सस्कृत रूपान्तर बृहत्कथा मजरी म प्रस्तुत किया था। रामकथा सम्बन्धी इनकी दो विशिष्ट रचनाएँ हैं। वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ का स क्षेप इन्होंने रामायण मजरी म किया था। इसम ५३८६ श्लोक हैं और मजरी रचनाकाल १ ३७ ई है।

१—आर० सी हाजरा—पुराणिक रेकार्ड्स—ढाका १९४०।

२—माघ—शिशुपालवध—प्रथम और चतुदश सग।

—क्षमेन्द्र—दशावतारचरितम—

देव पायादपायान्निजजनभवनस्तम्भभूत स यस्मा
नागस्वादाम्य भक्ता प्रतिदिनि पुण्य स्वगमार्गापवर्गी।
मत्स्य कूर्मो वराह पुरुषहरिवपुर्वामनो जामदग्न्य
काकुत्स्थ कसहन्ता स च सुगतमुनि कल्कि नामा च विष्णु ॥१ ।

इनकी दूसरी विशिष्ट रचना दशावतार चरितम है। इस रचना में रामकथा नवीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत की गयी है। इस पर किंचित विचार कर लेना उचित होगा।

दशावतार चरितम के आरम्भ में एक-एक श्लोक में दशावतार स्तुति, तत्पश्चात अवतारों की कथा पृथक अध्यायों में दी गयी है। रामावतार की कथा का वर्णन २९४ श्लोकों में किया गया है। श्लोक परिमाण की दृष्टि से कृष्ण कथा के उपरान्त इस ग्रन्थ में रामावतार की महिमा स्पष्ट है। आरम्भ की दशावतार स्तुति में राम की स्तुति इस प्रकार दी गयी है—

नौमि राम रिपोश्चक्र य वाचनतिम नर ।
हेमानव शिवारन्मिव वक्त्रवचन पुन ॥

रामावतार वर्णन में कथा को रावण के दृष्टिकोण से वर्णन किया गया है। कथाक्रम वाल्मीकीय कथा से भिन्न है तथा कथा के कुछ अंश भी नवीनता लिए हुए हैं। कथा का आरम्भ रावण जन्म रावण की वर प्राप्ति तथा उसके चरित वर्णन से होता है। रावण आदि का जन्म पुष्पोत्कटा तथा पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा से होना बताया गया है। रावण और उसके भाइयों ने घोर तपस्या की। शंकर की आराधना करते हुए रावण ने अपने सिर होम दिये और ब्रह्मा से वरदान प्राप्त किया। कुम्भकर्ण ने विपरीत वाक्य से एक दिन जागने तथा अक्षीण निद्रा का वर पाया। धर्ममति विभीषण को अमरत्व का वरदान मिला। रावण ने

१—वही—अनान्तर मात्क उटवस्ताना वरविशाल क्षणदाचराणाम।
पुष्पोत्कटा नाम बभूव कन्या तारुण्यपूर्णेऽपि विवाहहीना॥
सा सम्पार्श्वे मणि मवल्ला निर्गसरम्यापवन चरन्ती।

अपने भाई कुबेर को जीतकर पुष्पक विमान ले लिया। शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर रावण निश्चित होकर संसार में विचरण करने लगा। एक यात्रा में रावण ने धनदात्मज नलकूबर की पत्नी रम्भा के साथ बलात्कार किया। इस पर नलकूबर ने शाप दिया कि न चाहने वाली स्त्री के साथ बलात्कार करने से रावण की मृत्यु हो जायगी—

दृष्ट्वाभिभूततां नलकूबरस्तां श्रुत्वा कुवृत्तं च निशाचरस्य।
अकामयानां रमितमगमात् तस्मात्तु दुर्जीवितमित्यवाच। ७ ३२।

यात्रा से लौटने समय रावण ने कैलाश पर्वत को अपनी विशाल भुजाओं में उठा लिया। गुफाओं और गृहों में विद्याधर सुन्दरियों के इधर उधर भागने से उनकी करधनियाँ बज उठीं और कैलाश शब्दायमान हो उठा। शंकर रावण के वीरोचित कार्य से प्रसन्न हुए। रावण ने अपनी एक यात्रा में वेदवती को देखा उसे स्पर्श किया किन्तु नलकूबर के शाप के भय से उसके साथ बलात्कार नहीं किया। स्पर्श से अपमानित होकर मेरा जन्म राक्षसों के नाश के लिए हो यह विचार करते हुए वेदवती ने अपना शरीर त्याग दिया। एक अन्य यात्रा में रावण उसी रमणीय प्रदेश में पुनः गया और वहाँ अद्भुत सरोवर देखा जिसमें दिव्य कमल खिले हुए थे। रावण सरोवर के तट पर शिवलिंग की स्थापना कर शंकर की आराधना करने लगा। सरोवर से कमल लेकर उसने शिवलिंग पर अर्पित किये। सरोवर के मध्य में रावण ने एक अलौकिक कमल देखा। उसकी शोभा पर [illegible] उसने एक कन्या को देखा। कमल उसने शिव को अर्पित किया और कन्या को लाकर मन्दोदरी को दिया। मन्दोदरी की गोद में एक बार नारद ने उस कन्या को देखा तो कहा कि यह कन्या रावण की अभिशाप [illegible] बनेगी। इस पर मन्दोदरी ने उसे एक स्वर्णमंजूषा में रखकर समुद्र पार धरती में गड़वा दिया। यही कन्या राजा जनक को प्राप्त हुई। जब वे स्वर्ण का हल यज्ञभूमि में चला रहे थे। जनक ने उसे पुत्री के रूप में ग्रहण किया और उसका नाम सीता रखा। सीता के पद्मजा होने की कथा सर्वप्रथम इसी के [illegible] चरित में मिलती है। इसके पश्चात् रावण शूर्पणखा से शूर्पणखा

वर [illegible] विधि [illegible] विभीषणो धर्मरति [illegible]।
[illegible] तुष्टेन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥ ७ ।

१—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विजाय [illegible]।
[illegible] [illegible]॥

के विरूपीकरण खरदूषण वध का वृतान्त सुनता है। (१०५ १३०)। इसी के साथ रामायण की कथावस्तु का आरम्भ होता है। शूर्पणखा से सूचना पाकर रावण मारीच के पास जाता है और उससे राम जन्म से लेकर वनवास तक का रामचरित तथा विष्णु के अवतार लेने की कथा सुनता है। मारीच की सहायता से रावण सीता का हरण करता है। (१३१–१५१)। सुकेतु नामक गुप्तचर से रावण पुन मारीच वध से सुग्रीव मैत्री बालि वध वानरों का सीतान्वेषण हनुमान का समुद्र लंघन अशोक वाटिका विनाश आदि का वृतान्त सुनता है। (१५२ १९४)। सुकेतु और विभीषण दोनों रावण से सीता को लौटाने का आग्रह करते हैं। पश्चात विभीषण राम की शरण में चला जाता है। एक अन्य गुप्तचर से रावण विभीषण अभिषेक सेतुबंध राम के त्रिकूट पर आगमन का वृतान्त सुनता है। (२०७ २१३)। प्रतिहारपति रावण को नागपाश द्वारा राम लक्ष्मण बंधन कुम्भकर्ण जागरण आदि वृतान्त सुनाता है। (२१४ २२०)। अनन्तर राम रावण युद्ध सीता की अग्नि परीक्षा विभीषण का राज्याभिषेक अयोध्या लौटना उत्तर काण्ड की कथा तथा स्वर्गारोहण आदि प्रसंग का क्षेमेन्द्र ने वाल्मीकीय रामकथा के अनुसार वर्णन किया है। क्षेमेन्द्र ने दशावतारों को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया है। राम सगर का शासन समाप्त कर विष्णुधाम को चले गये—

स त्र्यम्बकस्याम्बर चम्बमाना विधायपूजा कमलोपचारं।
क्षेत्रस्य विष्णोरिव मध्यजात समाददे मूर्धि निधातुमब्जम्॥
तस्यान्तर काञ्चनवर्णिकस्य विचित्ररत्नाङ्कुरपल्लवस्य।
गन्धिप्रपन्नस्य तदा कन्या तद्भातिरश्मामिव जात लक्ष्मीम्॥
आदाय कन्या प्रमदे नियाय तच्चन्द्रचूडस्य किरीटकोटौ।
प्रीतिं वहन्विस्मयगर्भगुर्वीं स्वरस्वर स्वां नगरी जगाम॥
मन्दोदरी तद्दुहितेति नाथ तत्रार्पिता वल्लितपुत्रिका ताम्।
अनन्य लावण्यवती विलोक्य कन्यामभूत्स्मयनिश्चलेव॥
कदाचिदुत्सङ्गगृहीत कन्या तां नारदाभ्येत्य मुनिर्जगाद।
पत्युस्तवेयं चपलेन्द्रियस्य कन्या भविष्यत्यभिशापभूमि॥
अस्वस्थचित्ताय महीतले पटे गुप्तमञ्जूषायुता कुमारीम्।
मन्दोदरी भूमितलावगाह तत्याज रत्नाकर पार तीरे॥
काले प्रयाते जनकेन राज्ञा यज्ञाङ्गन हैमहलेन दृष्टे।
लब्धा समुद्धृत्य सुगी सुता सा सीतेति नाम्ना भुवन प्रसिद्धा॥ ७ १०४।

अथ स भगवान्विष्णु कृत्वा जगन्निरुपप्लव
दशमुख भय हृत्वा हृष्ट प्रशस्त्रिदशालय।
पवनतनय धत्वा धीरोऽनन स विभीषण
भुवन भवन कीर्तिस्तम्भ जगाम सुधाम्बुधिम।

क्षेमेन्द्र के उपरान्त दशावतार चरित का वर्णन द्वादश शतक में जयदेव के अमर काव्य गीत गोविन्द में मिलता है। जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन (११७९-१२०५ ई०) के सभाकवि थे। श्रीकृष्ण चरित का कोमल कान्त-पदावली में वर्णन करने वाले इस काव्य के प्रथम प्रबन्ध में कवि ने विभिन्न अवतारों के रूप में श्रीकृष्ण की स्तुति की है। केशव का 'दशविधरूप' मीन से लेकर कल्कि तक एक-एक श्लोक में वर्णित है। रामावतार का वर्णन राम द्वारा रावण वध को लक्ष्य करके किया गया है। जयदेव ने दशावतारों का एकत्र वर्णन भी किया है—(मीन रूप से) वेदों का उद्धार करने वाले (कच्छप रूप से) जगत को धारण करने वाले (वाराह रूप में) भूलोक का उद्धार करने वाले (नृसिंह रूप से) हिरण्यकशिपु दैत्य के नाशक (वामन रूप से) बलि को छलने वाले (परशुराम रूप से) क्षत्रियों का नाश करने वाले (राम के रूप में) पौलस्त्य रावण को जीतने वाले (बलराम रूप में) हलधर (बुद्ध रूप में) करुणाशील और (कल्कि रूप से) म्लेच्छों का नाश करने वाले इस प्रकार दशावतार रूप धारण करने वाले कृष्ण आपको नमस्कार है।

प्राकृत पैंगलम् का समय विद्वानों ने १४वीं शताब्दी माना है। इस ग्रन्थ में दशावतार वर्णन का एक छन्द मिलता है जिसमें इस क्रम से दशावतारों की स्तुति

१—जयदेव—गीत गोविन्द—
वितरसि दिक्षु रणे दिक्पति कमनीयम्।
दशमुख मौलिबलिं रमणीयम्। केशवधृत रघुपति रूप जय
जगदीश हरे। १-७।

२—वही—
वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते।
दैत्यान्दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते।
म्लेच्छान्मूर्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः।
—(दशावतार १ पृ० १५)।

की गयी है।[1] इस छन्द मे कहा गया है—जिन्होंने वेद धारण किया पीठपर पृथ्वी तल धारण किया, दाँतों पर पृथ्वी स्थापित की, शत्रु के वक्षस्थल को विदारण किया, छल से (मानव या वामन) शरीर धारण कर शत्रु को बाँधा तथा उसके राज्य का अपहरण किया, क्षत्रिय कुल को सनष्ट किया, दशमुखों (रावण के दस मुखों) को काटा, कंस तथा केशी का विनाश किया, (बुद्धावतार) में करुणा प्रकट की, (तथा कल्कि रूप में) म्लेच्छों को विदलित किया, वे नारायण तुम्हें वर दें।

प्राकृत पैंगलम में वामन, परशुराम, राम, कृष्ण अवतारों का पृथक् पृथक् वर्णन भी आया है। राम स्तुति सम्बन्धी छन्द में कहा गया है—जिन्होंने पिता की आज्ञा को सिर पर लिया, जो राज्य छोड़कर भाई और पत्नी के साथ वन गये, जिन्होंने विराध को मारा और कबन्ध का हनन किया, जिन्हें हनुमान मिले, जिन्होंने वालि का वध किया तथा सुग्रीव को निष्कण्टक राज्य दिया और समुद्र बाँधकर रावण का नाश किया, वे राघव तुम्हें निर्भय (अभय) प्रदान करें।[2]

रामगीत गोविन्द में वाल्मीकि कथा के अनुसार रामचरित वर्णित है। यह ग्रन्थ भक्तिभावना से ओतप्रोत है। इसके रचयिता जयदेव कहे गये हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में दशावतार वर्णन आया है जिसमें दसों अवतारों की स्तुति पृथक् श्लोकों में की गयी है। राम की स्तुति रावण विजेता के रूप में की गयी है।

१—प्राकृत पैंगलम्—वर्णवृत्त २०७।

जिण वेअ धरिज्जे महिअल लिज्जे पिट्ठिहि दंतहि ठाउ धरा।
रिउवच्छ विआरे छल तणु धारे बंधिअ सत्तु सुरज्जहरा।
कुल खत्तिअ तवे दहमुह कप्पे कंसिअ केसि विणास करा।
करुणा पअले मेच्छह विअले सो देउ णराअण तुम्ह वरा।

२—प्राकृत पैंगलम—वर्णवृत्त २११—

वप्पह उक्कित सिर जिणि लिज्जिअ।
तज्जिअ रज्ज वणत चल जिणु।
साअर सुंदरि संगहि लग्गिअ।
मारु विराध कबंध तहा हणु।
मारुइ मिलिज्जि वालि विहंडिअ।
रज्ज सुग्गीवह दिज्ज अकण्टअ।
बंधि समुद्द विणासिअ रावण।
सो तुह राहव दिज्जउ निब्भअ।

—रामगीत गोविन्द—वेंकटेश्वर प्रेस—

अवतार कथा की परम्परा भारतीय वाङ्मय में प्राचीनकाल से मिलती है। अवतारकथा की युक्ति से हरिस्तुति करने की परम्परा संस्कृत प्राकृत साहित्य से होती हुई हिन्दी साहित्य में भी आयी। इसका प्रथम साक्षात्कार तत्कालीन सामाजिक आदर्शों के सच्चे प्रतिनिधि एवं सफल महाकाव्य पृथ्वीराज रासो के रचना समय में मिलता है। चौदहवीं शताब्दी ईसा के आरम्भ में मिथिला के कवि शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर के वर्णरत्नाकर में दशावतार वर्णन मिलता है। ग्रंथ के सप्तम कल्लोल में दशावतार वर्णन के अन्तर्गत इन दस अवतारों की सूची दी गया है।[1] वर्ण रत्नाकर मैथिली साहित्य की प्रथम उपलब्ध रचना है। इसके रचयिता ज्योतिरीश्वर ठाकुर का समय सन् १३२५ के लगभग है। वर्णरत्नाकर की रचना गद्य ग्रंथ के रूप में की गई है। इससे स्पष्ट है कि इस ग्रंथ में निर्दिष्ट दशावतार वर्णन परम्परा उस समय तक रूढ़ हो गयी थी। रामायण के सात काण्ड की उल्लेख भी इस ग्रंथ में हुआ है। इस परम्परा में आगे भी रचनाएं होती रहीं। ईश्वरदास (सं० १५९२) ने हरिरस की रचना की जिसमें ईश्वर तथा अवतारों की स्तुति की गई है। माधोदास दधवाड़िया (सं० १६८०) ने रामरासो की रचना की। नरहरिदास चारण ने संवत १७०० के लगभग अवतारों की कथा के रूप में अवतार चरित की रचना की थी। इसी परंपरा में आचार्य भिखारीदास ने अपने ग्रंथ शृंगार निर्णय (संवत १८०७) में दशावतारों की वन्दना की है।

विरंचि सृजन सभाजन जिन रावण सा।
रघुकुल कमल दिनेश जय जय राम हरा। १३।

१—दशमदशावतार चरित—
अवतारमयावनश्री भवतया भगवता स्म।
सा व्याप्तमाश श्रमद वृन्द सम्यग् स्तुतिम। ११।

२—वर्णरत्नाकर—[illegible] ज्योतिरीश्वर [illegible] १ ८०।
अथ दशावतार वर्णना—मत्स्य कच्छ [illegible] नरसिंह वामन परशुराम राम हलराम [illegible] दशावतार [illegible]।—पृ० ८।

३—वही—अथ रामायण आदिकाण्ड अयोध्याकाण्ड अरण्यकाण्ड सुन्दरकाण्ड [illegible] लंकाकाण्ड उत्तरकाण्ड एव सप्त।—पृ० १।

४—शृंगार निर्णय—[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

पृथ्वीराज रासो के दूसरे प्रस्ताव का नायक अन्य प्रस्तावों की भाँति महाकाव्य की कथावस्तु से सम्बद्ध न होकर अथ दसम लिप्यते है। समय के अन्त में पुष्पिका में लिखा है—"इति श्री कवि चन्द विरचिते पृथ्वीराज रासके दशावतार वर्णन नाम द्वितीय प्रस्ताव सम्पूर्णम।" इस प्रस्ताव में दशावतार वर्णन के कारण इसका नाम 'अथ दसम' रखा गया है। आरम्भ में हरिस्तुति, दशावतार नामस्मरण, संक्षेप में दशावतार स्तुति, अनन्तर अवतारों की कथा का पृथक पृथक वर्णन इसी क्रम से की वर्णन पद्धति के अनुसार है। ब्रह्मा द्वारा अवतार कथाओं के वर्णन में पौराणिक सरणि का अनुसरण किया गया है।

द्वितीय प्रस्ताव का सम्बन्ध पृथ्वीराज के चरित्र से नहीं है। डा० त्रिवेदी ने लिखा है—महाराज पृथ्वीराज की गाथा से इस प्रस्ताव का कोई विशेष सम्बन्ध न होने के कारण मैंने कभी इसको बाद में जोड़ने का अनुमान किया था।[1] किन्तु इस मूल में परिवर्धित और प्रक्षेप से संयुक्त प्रस्ताव को चन्द की रचना न मानने का कोई कारण नहीं है। महाकाव्य की रचना विधि द्वारा अथ दसम को पूर्वापर प्रस्तावों से सम्बद्ध किया गया है। प्रथम प्रस्ताव में चन्द और उसकी पत्नी के संवाद आया है। कविपत्नी ने एक रात्रि में दिल्लीश्वर पृथ्वीराज का चरित्र सुनने की इच्छा व्यक्त की। पत्नी पूछती गयी और कवि कथा सुनाता गया। फिर पत्नी ने पूछा कि मानव मानव तथा राजा की कीर्ति में क्या लाभ है। चन्द ने विविध चरित्र के उदाहरण देकर कहा कि हरि भक्ति के बिना मुक्ति नहीं। इस पर पत्नी ने कहा कि जो समस्त विद्याओं के दाता उस चित्रणहार का तू चित्रण कर, चौहान की कीर्ति गान में क्या लाभ। चन्द कहता है कि मेरे मन में सोच है कि मैं चौहान का पूर्व ऋण चुकाता हूँ। पत्नी ने कहा कि राजा का ऋण चुकाने हेतु है कवीन्द्र गोविन्द का स्मरण क्यों नहीं करते। चन्द ने कहा कि वह सर्वगत सर्वव्यापी है। पत्नी ने कहा कि यदि ऐसा है तो हरि चरित्र का वर्णन करो जिससे मुक्ति प्राप्त हो—[2]

राम हव दसाति वन सन्दह य सहाग्या वस
बोध हव व काह्या जिन गावत प्रकास है।
कानि भा हय राप रन हिंदू पति पानि न
म्लक्ष हनि मा गनि दास ताका दास है॥

१—डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी—
—रासो में रामकथा—मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ—पृ० ६७७।
—चन्दबरदाई और उनका काव्य—पृ० ११४।

अग अग हरि रूप रस विविध विवेक वरन।
मुकति ममप्पन कत रस जुग तिनि जाग रारन। १७८३।

इस पर चद न पत्ना स ध्यानपूवक हरिचरित सुनने को कहा—

कह्यौ भामि मा कत इम जो पूउ तन माहि।
कान धरा रसना सरस। प्रति न्विाऊ ताहि। १७८४।

यहा पर प्रथम प्रस्ताव समाप्त हो जाता है और अगले प्रस्ताव म कवि हरि चरित वणन क उपरात द्वितीय प्रस्ताव के अत म पुन चौहान के ऋण की चर्चा करता है और इस प्रकार दशावतार वणन को पथ्वीराज की कथा से सबद्ध कर देता है—

राम विगन किता सरस गहत न्ग न्नु वार।
छन्छ जाव कवि चन्द की सिर नन्आता भार। २१५।
सिर चहुआना भार राम लाला छिग गान्य।
मनक सनन्द मनत कथा गुनन्व त जाइय।
वाउमार रिपराज विगन दीपायन धारिय।
मानच्छ मन्द मति मन्द तन पुत्र भार चन्आन सिर।
ज कह्यौ मन्न मति मुन्न करि सहरि चित्त चित्यो सुथिर।
२—१८६।

रामच रा वणन—अय नमम म पुर छन्द सख्या ५८६ है। प्रस्ताव का आरम्भिक छन्द हरिरूप का मगलाचरण है। दूसरे छन्द म दशावतार नाम स्मरण किया गया है। अनन्तर तामर छन्द म [illegible] व छन्द तक अवतारो का स्तुति की गयी है। मत्स्यावतार की कथा [illegible] छन्द कम १ म १६१ छन्द वराह १६२ म १ छन्द नसिंह १६० म २१ छन्द वामन २१४ म २ छन्द परशुराम २ १ म ६ छन्द राम २६४ स ०१ छन्द कृष्ण र म ५६४ छन्द बुद्ध ६ म ७ छन्द तथा कल्कि कथा ५७१ म ५८४ छन्द तक वर्णित है। अंतिम [illegible] ६ छन्द उपसंहार के रूप म लिखे गये हैं। आरम्भ म कवि न हरिरूप के मगलाचरण म कहा है कि म नरि क उस रूप को नमस्कार करता हू जिसका ब्रह्मा शिव महेश निरन्तर आराधना करते हैं—

सा ब्रह्मा सा [illegible] भजन [illegible] हर।
[illegible] निरन्त [illegible] अपरागिन वाग वर।
सा सा [illegible] वाहा गिर प्रभिभव।
जथा अस्तुत [illegible] न गनित [illegible]॥१॥

अनन्तर कवि दशावतार नाम स्मरण करता है—

मच्छ कच्छ वाराह प्रनम्मिय नारसिंघ वामन फरसम्मिय।
सुअ दसरत्थ हलधर नम्मिय बुद्ध कलक नमो दह नम्मिय॥२॥

नाम स्मरण के पश्चात कवि ने दस अवतारों की संक्षेप में स्तुति की है। इस स्तुति में १८वें छद—

हरे राम ग्यान। सुराम सुरान। रघुवीर राय। दयादेह काय।

से २०वें छन्द—

प्रसून विमान। चढ बेगियान। अयोध्या संपत्त। नमो राम भत्त।

तक राम की स्तुति की गयी है। इन तेरह छन्दों में रामचरित संक्षेप में दिया गया है। स्तुतियों के पश्चात् ब्रह्मा अवतारों की कथा क्रमानुसार कहते हैं।

रामावतार का वर्णन वाल्मीकीय रामकथा के अनुसार किया गया है। युद्ध काण्ड की कथा विस्तार से कही गयी है जो कवि की वीरवृत्ति का परिचायक है और वीररसपूर्ण महाकाव्य रासो का वांछित अंग है। शेष रामचरित्र अत्यंत संक्षेप में वर्णित है। कथा का आरम्भ परशुराम के क्षत्रियों के संहार के उल्लेख से होता है।

परशुराम ने क्षत्रिय राजाओं का संहार कर पृथ्वी ब्राह्मणों को अर्पित कर दी। अयोध्या नगर में राजा दशरथ के गृह में श्रीराम अवतार तथा लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न का जन्म प्रथम तीन छन्दों में वर्णित है—

फरसराम छतिपति हते। छनि अप्पी निज बस।
रघुबसी दसरत्थ घर। श्री रघुपति अवतंस। २६४।
रघुवसन रायिस रमन। भया राम अवतार।
बंद भ्रात दसरथ सतन। नयर अजुध्यासार। २६५।

इसके पश्चात् ताड़कावध तथा राम वनवास की कथा एक छन्द में कहकर—

तरुनि नाम तारिका। ग्यान हरि परमीराम।
वरि सत्ती धानुष्य। किय सब सुम्भह काम।
कविन्य वर मागि। राम वन भरथ सुराज।
तव दसरथ दुष बात। भयौ घर काज अकाज।
दसरथ्यपाप परस उभय। पचवटी वधा कुटिय।
कहि चन्द छन्द परबध करि। ग्रन्थ मंत जिहि विधि जुटिय।२६७।

कवि ने अगले छन्द में मायावी राक्षसी शूर्पणखा का जिसके नाम अगाम्मय नाक थे नाक ताड़ण तथा खरदूषण वालों का वर्णन कर सीता हरण तथा सीता

की खोज के लिए हनुमान के जाने का उल्लेख किया है।[1] हनुमान ने लंका पहुँच कर सीता की खोज की। उपवन का संहार किया अक्षयकुमार को मारा और पाश में बँधकर स्वर्णपुरी लंका का दहन किया। राम ने वानर सेना के साथ लंका के लिए प्रस्थान किया। सेतु बाँधा गया और सेना पार लगी। लंका को घेर लिया गया। वीर भाग उछलकर युद्ध में जूझने के लिए उत्साहित हुए।

युद्ध आरम्भ हो गया। बाण छूटने लगे युद्ध भूमि में शोणित धारा बहने लगी। राम रोष में भर कर काल के समान दिखाई देने लगे। घन कट कर

१—सूपाषा रावणा। रहु बन मसन नारी।
रूप नष्पचप घुम। रग श्रवन तन कारी।
नाक वश नप निष्प। जाइ परप्पन दष्पिय।
दरि नारि धरि नारि। राम मन नाषिम नष्पिय।
नरि मान नात रावन गया। भया चित्त राषिम हरन।
बहि पवन पूत ढूंनह चप्पिय। मुर मुराज मान मरन।२६८।
२—गयो लंक हनुमान। भमन रुधि मत्ता पाप्प।
धन उपवन मर्घारिय। घर मन राम दुप्पय।
धाय बग्या प्राकार। स्मन जद्ध दन भष्पिय।
अष कुमारन हनिन। दौरि नाजिन दष्पिय।
नवि पाम गम नर उथया। कहि सुमरन अवर घरी।
लगाय पुच्छ लंका जरिय। कनक पक विम्रौ परौ। ६९।
जल्न जल्पि रप्पम छरिय। धरिय बग्ग विपराम।
मनो अक कमननि दग्ग। मुनि रावन मन मान।२७०।
—उनरि समन्द अयाह। धाइ नर घर धन्जिय।
बरिन्न मन रघवग। नार नामन सु मन्तिय।
नरि नर गर घरि। परि नभापन पप्पिय।
नजान अनि मनि। चर रन अपन नप्पिय।
नरि नार धार परि दारन। मार मार करन मय।
पन वरिन्न मन लपमन नर। नर निनाल सु मानजुद। ३४।
मेघनाद नाम्न बग्यो। धग्यो नर उर घाउ।
दर्प नग मव भाग नजि। जुद्ध जग उछाह। ४।

गिरने लगे और रथ चकनाचूर हो गये।[1] इन्द्रजित मेघनाद युद्धभूमि में आया। लक्ष्मण से उसका युद्ध आरम्भ हुआ। मेघनाद ने अस्त्र शस्त्रों से प्रहार किया।[2] देवों के भक्त मेघनाद ने तुमुल युद्ध किया। चन्द द्वारा युद्ध का ओजपूर्ण वर्णन द्रष्टव्य है—

वपु नयन पुप्परिय। बिनन बिन नाट घुरगिय।
गनन गनन गय नग। छन्न छक्किय उछरगिय।
सनन सात भिल्लरय। पनन घर धार पल्किय।
गिन्न टका डिल्लरिन। भनन भूभार भल्किय।
धरना धरीय बनर रषिय। परिय पाति मोहन प्रबल।
असुरान गजि ल्का नथह। इन्द्र जाति जीतित अतुल।२८५।
फिरि मज्जिय रघुबंस। हनुमन्त काट उडायिय।
मग्न छारि मरजाद। इन्द्रजीतसमुधि पाइय।
मग्र राम रय जय। मग्न देवा गुप जाप।
ऋषिमन हनु सुग्रीव। लंकपति भापन थाप।
आकुलि रथ्य अप्पन अवर। धनर पत्ति द्वारह धरिय।
छर छरिय बान उकि छठरिय। भरिय पत्र अभरन भरिय। २८४।

लक्ष्मण ने श्रद्धा बाणों की वर्षा की। आदेश बाणों से आच्छादित हो गया। राम भयभीत हो उठे। सप्त सागरों को गावन वाले बाणों को लक्ष्मण ने मधान किया और मेघनाद का वध किया। देवताओं ने पुष्प वृष्टि की। रावण को अपार

१—उर बान ल। घन्ना जादि भट्ट। भिर बान भान। करत वपान। २७६।
घर म्मि गाम। फिर वानरास। वक्र थान थान। जकी जाग मान। २७७।
चढ़े रत्त धारा। छर भट्ट भारा। फिकारत पवर। डकारत डक्क। २७८।
भय राम राम। मनों बारुनास। धरा अग वज्ज। पर रथ्य भज्ज। २७९।
भिर प्रात पाग। मना गाम गार। दुर्द इन्द्रजात। भए देव भीत। २८०।
मर रूप वार। मर लाग सार। । २८१।

२—धरनि धार धति धरनि। भिग्न स्वाजिन भरभर।
मुरि बान रन्नि मान। पन्नि मागरन पल्च्चर।
जगि बान मोहनिय। पच्चि र्भिन पचारिय।
परि पट लम नामन। मार मोहनिय सुधारिय।
गाजि इन्द्र भट करि इन्द्र रव। गया लग गाज प्रह्मा।
रघुबंस मन वानन परया। मार ब्रह्म माहिनि तह्मा।२८२।

दुख हुआ।[1] मेघनाद की मृत्यु के उपरान्त कुम्भकर्ण रणभूमि में आया। रावण का भाई कुम्भकर्ण आधे वर्ष तक निद्रा के वश में रहता था पशुओं का भक्षण कर उसकी क्षुधापूर्ति होती थी उसका शरीर काला था और आकार पर्वत सदृश था। काल रूप कुम्भकर्ण युद्धभूमि में आया। क्षुधित वश्वानर की भाँति कुम्भकर्ण वानर सेना पर टूट पड़ा। वह वानरों को पकड़ कर भक्षण करने लगा। रक्त की धार का पान करता हुआ कुम्भकर्ण रणभूमि में अग्रसर हुआ। राम ने कुम्भकर्ण का वध कर राक्षसों का सहार किया। लंका में अस्थिमांस का कीचड़ फैल गया।

१—धरनि तरनि आकास। वास रथ सासन रक्खिय।
दमन अवलगि बान। धरनि वट मापन धुक्किय।
कुक्किय कत विन वार। सार जारह चौमासिय।
मत्र जप्प सब मूठ। करन कान्न अनन्दिट्टिय।
रथ च्यारि चत्र फिरि चक्क चव। बान वष्टि लक्षमन वन्यि।
करि मव मव असरानि डर। कहर वत्त ता निन वन्यि।२८५।
माइर मन सापनह। बान लिन्नौ ता हत्थ।
गन अवगन मधियहि। कल्यौ तिन जावन सथ्थ।
कुसुम वष्टि सुरवान। भयौ रावन तन भारा।
सकल साक गयिमन। हनू जव लक प्रजारा।
जजया सब्द जागिन जपिय। मन्दोदरि वानौ रुन्न।
लछिमन्न राम माना सुग्रवि। तन्नि लक लग्गौ कुन्नि।२८६।

२—यमि निन्द्रा अधवरष। धाम अवर धर घज्जिय।
गौन गज्जि सुर मज्ज। यथा वनचर वन पुज्जिय।
गौर मग्ग वपुस्याम। गिरन समनध्य जकारिय।
कान्प्राम नामत्र। तार तारन तन धारिय।
मरि कुड मड मगन बस। सूर चन्द मघन मथिय।
करि धम नाम नामन तथिय। अकल जानि कान्न भरिय। ८७।
मरन कान वर्नि मध्य। धाम धामन जन छन्यि।
मन्म जप्प भवना। मनन अवत चन वन्यि।
निन्द्र नप्प जनवार। नान रमना मत धान्न।
करन कान वन्नन। घर अन्ना मिर नान्न।
नर्त्तयि लक असमान मिर। तरन भारत मन्नन गज्जिय।
करि कन हरर गिरि वन्नन। गिरन गान ल्यिमन भग्यि। ८८।

राक्षसियां छाती कूट-कूट कर क्रन्दन करने लगी।[1] अन्तत राम और निशाचर राज रावण में भीषण युद्ध छिड़ गया। रणभूमि में रावण विपक्षियों का संहार करने लगा। वानर सेना राक्षसों से संग्राम करने लगी। बाण चलने लगे, मुण्ड कट-कट कर गिरने लगे। राम ने रावण पर बाणों की वर्षा की। इस प्रत्यक्षरा युद्ध में बीस भुजा वाला गिर गया। राक्षस रुदन करने लगे। ऋषि और देवता प्रसन्न हो उठे। रावण की मृत्यु पर राम ने विभीषण को लंका का राज दिया। सीता को लेकर राम ने लक्ष्मण के साथ सागर बन्धना की ओर सानन्द प्रस्थान किया। उनके ऊपर देवताओं ने पुष्प वृष्टि की। राम रावण युद्ध का वर्णन कवि ने त्रिभंगी भुजंगी छन्दों में किया है।[2] रामावतार कथा के अंतिम छन्द में कवि

१—रन रिती कुम्भकरन। परयो भूपा वसतर।
घर बनर धक धाह। दत कटिपद्ध बनर।
पप म प परचरिय। नहीं लग तिन्वार।
मापि सरित रनवार। पानि उ पिय अपार।
महत मित्त बन्ध मघट। गिरत धार उपर परयो।
रघुवंस नाम रावन करयो। करन पन्ठि दाहन धरयो।२८९।
परत भ्रात घर घरनि। परम अट्ठह लमि पालन।
जनु वि मह मारुल। आनि प्रथ्य। जर तारल।
परिभ्रमन रप्पिमन। कुइक चासन मुप मामन।
वर सुपिन्ठ (मम लिग) कमघ। भरत भुप इप्पिय मामन।
करि लंक वक पक्न पलन। परन राम हत्यो दुनिय।
घर घरन नारि कनन समन। कूटि-कूटि दारुन छनिय।२९०।
२—चक चूर करन्त अन्व परन्त रापिम मदा पान्न्ता।
रथ न्न अनन्ता बान नयन्ता रथ्य रहन्ता पारन्ता।
नह दस रहन्ता पूरा हन्ता विरुन्न बन्ता घायन्ता।
रिपि लव हसन्ता रापिम रून्ता बीस भुजन्ता ढाहन्ता।२९१।
परि रावन मन्ता भीषन सन्ता राज करन्ता रामन्ता।
रचि वाह मन्ना हाटक हन्ना फूल अवन्ना माल्हन्ना।
ले सात चन्ना लपिमन सन्ना सागर बन्ना आनन्ना।२९६।

× × ×

किय पह पन बन्ना मुप्प चार। महाबाहु बाह वल बन्न धार।
हनुमान हरय मन्स सुवरय। घर पिन्य तीन रठा बार मप्प।

कहता है कि दुष्ट रावण ने जनक सुता का हरण कर नीच कर्म किया। निशाचरों का विनाश हुआ और लंका भस्मसात हुई। राम ने दशकंध का वध किया। चन्द इस प्रकार चरित करने वाले राम की कीर्ति का गान करता है—

जनक सुता हरि दुष्ट। हरी लंका तन दावन।
नाव जगत जगि छत्न। हरन रिपु ग्रहन म रावन।
हरन रिद्ध नव निद्ध। सिद्धि हर सागर सिद्धिय।
हरन पुन इन्द्रजित। हरन मीनन ग्रह इन्द्रिय।
तिन हरिय सीत तन्न इह करिय। भरिय पन पन्चर नपन।
गढ़ जारि ऊक दशरथ हनि। राम किन्ति चन्द चवन।२ १।

रासो का रामचरित्र वर्णन वाल्मीकि रामायण की रामकथा के अनुसार है। युद्धकाण्ड की कथा इसका मुख्य वर्ण्य विषय है। जय दसम के अतिरिक्त रासो के सयोगिता पूर्वजन्म प्रस्ताव—६१ में रामकथा का वर्णन आया है। इस प्रस्ताव में मंजुघोषा अप्सरा तथा सुमन्त ऋषि के शापानुग्रह में दशावतार वर्णन आया है जिसका उद्देश्य साकार की महिमा निराकार से अधिक सिद्ध करना है। इस वर्णन की भाषा अपेक्षाकृत परवर्ती जान पड़ती है। वर्णन इस प्रकार है—

कहे ब्रह्म अवतार दस। धरे भगत हित काज।
रूप रूप अति रूप दरि। कल्पना रचि राज।१८५।
मच्छ कच्छ वाराह। अप नरसिंह रूप लिय।
वामन बलि छलि दान। राम ऊति छान लिय।
रघुपता गन्धयौ। उभय बन्ध्व न्यायर।
न्यायार प्रभ बद्ध। रह धरि ध्यान निरायत।
कलि अन कल्क अवतर्गि। सच धर्म स्थपन सरद।
करि ग्रन्थ रास रासारम्भ। सदा न्याय ब्रह्म अराद।१८६।

इसके पश्चात् दशावतारों का नरह उठा (१७२-८६) में वर्णन किया गया है। इसी प्रस्ताव में चन्द ने रामकथा वर्णन किया है। जिसका वर्ण्य विषय रामायण की कथावस्तु है।

धनवान सम्म जर वश वारा। धर पानि प्रात वर पानि मारा।
धूम रूप भी रूप किल्यो किल्न। धर धार धसरा करुण प्रगान।
तिन कर कर धर धर धार। लिप वार सिन कुमल्ल पार।
रन राजन कल्न अम्बर कार। बना पनि सर धान हित राज राज।२००।

रासो के सभा-संस्करण के अतिरिक्त लन्दन की रायल एशियाटिक सोसायटी में सुरक्षित कर्नल टाड की १६९२ विक्रम संवत की प्रति में अवतारसमय का नाम 'दस मकथा' नाम द्वितीय पट है। इसमें ३८५ छन्द हैं तथा दशावतार स्तुति तद वर्णन सभा-संस्करण के अनुसार है। रासो के मध्यम संस्करण (साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर) में अवतारसमय का नाम दशावतार कथा है। इसमें कुल १०० छन्द हैं तथा रामकथा का वर्णन १७ छन्दों में किया गया है। इस संस्करण में मत्स्यादि पूर्व जन्म समय ४१ में ऊपर सभा-संस्करण से उद्धत छन्द १४५ ४६ लिये गये हैं। रासो के लघु संस्करण के प्रथम खण्ड में दशावतार की कथा दी गयी है। लघुतम संस्करण में दशावतार प्रसंग नहीं है।

दशावतार के अन्तर्गत रामकथा के वर्णन के अतिरिक्त रासो में यत्र तत्र राम कथा विषयक निर्देश भिन्न है। तीसरे प्रस्ताव में किसी कथा में भवितव्यता के सम्बन्ध में यह वर्णन आया है—

> फरि व्यास कहै मुनि अनगरान। भवितव्य बात मटी न जाय।
> रघुनाथ हाथ नलाक दव। त वनक मग राग पठव।
> मागच अप्प आयौ छरन। हुइ होनहार माता हरन। २।

इस प्रकार के वर्णन अन्य स्थलों पर तत्कालीन युग के प्रतिनिधि इस महाकाव्य में मिलते हैं जिनमें रामायण कथा का निर्देश है। इससे उस युग में रामकथा के समुचित प्रचार का द्योतन होता है। इसकी पुष्टि कश्मीरी कवि जयानक के उस कथन में भी हो जाती है जिसमें रासो गाथा के नायक पृथ्वीराज के कण्ठ में दशावतारभरण धारण करने का उल्लेख किया गया है। बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में भारतीय समाज में रामकथा एवं रामभक्ति के प्रचार की चर्चा स्वामी रामानन्द के सम्बन्ध में की जायगी। चन्दबरदाई के रामचरित वर्णन के पश्चात प्राय एक शताब्दी के उपरान्त राम-साहित्य और रामभक्ति का प्रचार युग विभूति स्वामी रामानन्द में उपलब्ध होता है।

१—डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी पृथ्वीराज रासो एक समीक्षा प० ८ ८६।

२—जयानक-पृथ्वीराज महाकाव्यम्—

> दशावतारभरण कण्ठ रक्षाप्रनाहितम्।
> अनयरारक्षमात्मानम गतस्य रञ्जितुम्। २ ४३।

अध्याय ४

स्वामी रामानन्द

स्वामी रामानन्द के जीवन-काल के सम्बन्ध में निश्चित सामग्री उपलब्ध नहीं है। इस कारण इस सम्बन्ध में निर्णयात्मक रूप से कुछ कहना कठिन है। विद्वानों ने आनुषंगिक सामग्री के आधार पर अपने मत स्थिर किये हैं किन्तु उनमें मतवैषम्य अधिक है। स्वामी रामानन्द का जीवन-काल विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक लगभग दो सौ वर्षों के अन्तर्गत माना गया है। वास्तव में मध्ययुग के इस महान नेता के आविर्भावकाल तथा जीवन के सम्बन्ध में अभी बहुत शोध-कार्य की आवश्यकता है। वर्तमान स्थिति में विभिन्न मतों की समीक्षा कर एक सामान्यतः विश्वसनीय एवं तर्कसंगत मत निश्चित करना समीचीन होगा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[1] ने स्वामी रामानन्द का समय विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के चतुर्थ और १६वीं शताब्दी के तृतीय चरण के भीतर माना है। आचार्य शुक्ल ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है— वैरागियों की परम्परा में रामानन्द जी को मानिकपुर के शेख तकी पीर के साथ वाद विवाद होना माना जाता है। ये शेख तकी दिल्ली के बादशाह सिकन्दर लोदी के समय में थे। कुछ लोगों का मत है कि ये सिकन्दर लोदी के पीर (गुरु) थे और उन्हीं के कहने से उसने कबीर साहब को जंजीर से बांध कर गंगा में डुबवाया था। कबीर के शिष्य धर्मदास ने भी इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है—साह सिकन्दर ने जल में बोर बहुरि अग्नि पर जारे। शेख तकी और कबीर का सम्वाद प्रसिद्ध ही है। इससे सिद्ध होता है कि रामानन्द जी दिल्ली के बादशाह सिकन्दर लोदी के समय में वर्तमान थे। सिकन्दर लोदी सम्वत् १५४६ से सवत् १५७४ तक तख्त पर रहा। अब इन ८ वर्षों के काल विस्तार के भीतर चाहे आरम्भ की ओर और चाहे अन्त की ओर रामानन्द जी का वर्तमान होना ठहरता है।

1—आचार्य शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ११७।

कबीर के समान सेन भगत भी रामानन्द जी के शिष्यों में प्रसिद्ध हैं। ये सेन भगत बांधवगढ़ नरेश के नाई थे और उनकी सेवा किया करते थे। ये कौन बांधवगढ़ नरेश थे इसका पता भक्तमाल राम रसिकावली में रीवा नरेश महाराज रघुराज सिंह ने दिया है— बांधवगढ़ पूरब जो गायो सेन नाम नापित तहँ जायो। तहँ को राजाराम बघेला बरयो जहि कबीर को चेला। कर सेवा तिनकी सबकाई मुकुर दिखावन तेल लगाई। रीवा राज्य के इतिहास में राजाराम या रामचन्द्र का समय संवत १६११ से संवत १६४८ तक माना जाता है। रामानन्द से दीक्षा लेने के उपरान्त ही सेन पक्के भगत हुए होंगे। पक्के भक्त हो जाने पर ही उनके लिए भगवान के नाई का रूप धरने वाली बात प्रसिद्ध हुई होगी। उक्त चमत्कार के समय वे राजसेवा में थे। अतः राजा रामचन्द्र से अधिक-से अधिक तीस वर्ष पहले यदि उन्होंने दीक्षा ली तो संवत १५७ या संवत १५८० तक रामानन्द जी का वर्तमान रहना ठहरता है। इस दशा में स्थूल रूप में उनका समय विक्रम की पन्द्रहवी शती के चतुर्थ और सोलहवी शती के तृतीय चरण के भीतर माना जा सकता है। श्री रामार्चन पद्धति में रामानन्द जी ने अपनी पूरी गुरु परम्परा दी है। उसके अनुसार रामानुजाचार्य जी रामानन्द जी से चौदह पीढ़ी ऊपर थे। रामानुजाचार्य जी का परलोक वास संवत ११९४ में हुआ। अब यदि चौदह पीढ़ियों के लिए हम तीन सौ वर्ष रखें तो रामानन्द जी का समय प्रायः वही आता है जो ऊपर दिया गया है। रामानन्द जी का और कोई वृत्त ज्ञात नहीं।

आचार्य शुक्ल ने जिन तथ्यों के आधार पर अपना मत निर्धारित किया है उन्हीं तथ्यों के आधार पर पण्डित बलदेव उपाध्याय ने स्वामी रामानन्द का समय १४१० ई० से १५१० ई० तक माना है। उपाध्याय जी ने कहा है—स्वामी जी की आयु सौ वर्ष के ऊपर मानी जाती है। इन समस्त घटनाओं के तारतम्य से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वामी रामानन्द जी का आविर्भाव काल १५वीं शती (१४१० ई० से १५१० ई०) है। इस प्रामाण्य पर अगस्त्य संहिता के भविष्योत्तर खण्ड में स्वामी जी का जो आविर्भाव काल सम्वत् १३५६ विक्रमी दिया गया है वह प्रामाणिक कथमपि नहीं हो सकता। क्योंकि ऊपर निर्दिष्ट घटनाओं का मेल इस समय से ठीक नहीं बैठता। स्वामी जी के जीवन चरित सम्बद्ध घटनाओं तथा शिष्यों के काल के कारण इनका आचार्य-काल पन्द्रहवें शतक (१४५० ई०) के मध्यभाग के पीछे ही सिद्ध होता है।[1]

1—बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय पृ० २५२।

आचार्य शुक्ल का मत निर्विवाद नहीं है। कबीर और सिकन्दर लोदी को सम कालीन मानने के लिये कोई निश्चित आधार नहीं है। सच्चे ऐतिहासिक आधार के अभाव में जनश्रुति का प्रमाण कोटि में नहीं रखा जा सकता। डा० रामप्रसाद त्रिपाठी तथा इतिहास के अन्य विद्वानों ने कबीर और सिकन्दर लोदी की समकालीनता स्वीकार नहीं की है। डा० त्रिपाठी के अनुसार कबीर का समय चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में माना जाना चाहिए।[1] इसी प्रकार राजा राम बघेल के समय का सन् नाभादास कृत भक्तमाल के विभिन्न भक्त ... रहा है। राम रसिकावली में लिखे गये वन भक्ति भावना से अधिक प्रभावित हैं। इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक प्रमाण की अपेक्षा है। एक से अधिक मत प्रचलित होने की सूचना पं० ... नारायण पाण्डेय ... रामरसिकावली का वृत्त निर्भ्रान्त नहीं कहा जा सकता। आचार्य शुक्ल के मत का तीसरा आधार रामावत पद्धति में दी गई गुरु परम्परा है। यह रामार्चन पद्धति स्वामी जी की रचना है किन्तु इसके अनेक उपलब्ध संस्करणों में दी गई गुरु परम्परा में भी ... होता है। यह द्रष्टव्य है कि ... में स्वामी रामानन्द को रामानन्द सम्प्रदाय में पाँचवाँ आचार्य माना है। इस स्थिति में भी रामार्चन पद्धति के वर्तमान संस्करण के आधार पर अन्तिम रूप से मत निश्चित करना यथेष्ट संगत न होगा। रामानन्द जी के ग्रन्थों के अधिक प्राचीन हस्तलेख उपलब्ध होने पर ही कुछ कहा जा सकता। स्वामी रामानन्द का समय निश्चित करने के लिए आचार्य शुक्ल और पं० बलदेव उपाध्याय ने जिन तथ्यों पर विचार किया है वे तथ्य निर्भ्रान्त रूप से प्रामाणिक नहीं कहे जा सकते।

स्वामी रामानन्द का जीवन काल डॉ० फर्कुहर ने पन्द्रहवीं शताब्दी माना है। उन्होंने रामानन्द (१४ ... १४ ... ई०) को रामानन्द के पूर्ववर्ती ... स्वीकार किया है और लिखा है—उनके (स्वामी रामानन्द के) राजा शिष्य पीपा का जन्म १४२५ ई० में हुआ था और कबीर ... शिष्य कबीर सम्भवतः १४४० ई० से १५१८ ई० तक जीवित रहे। यह स्पष्ट है कि कबीर रामानन्द के अन्तिम शिष्य रहे थे। अतएव हम इसको ... न करेंगे यदि हम यह अनुमान करें कि रामानन्द लगभग १४ ... ई० से १४७० ई० तक जीवित रहे। इस अनुमान में आगे या पीछे ... की ... हो सकती है लेकिन इससे अधिक की नहीं।[2] डॉ०

१—... पृ० १९।

—निर्गुण ... परिशिष्ट पृ० ६।

—जे० एन० फर्कुहर ... आउट लाइन आफ दि रिलीजस लिटरेचर आफ इण्डिया पृ० ... ।

फर्कुहर के मत को एच० एच० विलसन[1] मेकालिफ[2] एफ० ई०[3] आदि विद्वानों ने स्वीकार किया है। किन्तु डा० फर्कुहर ने स्वामी रामानन्द के समय के सम्बन्ध में अनुमान किया है। उनके अनुमान के लिए कोई सदृढ़ आधार नहीं है। अतएव इसे प्रामाणिक नहीं स्वीकार किया जा सकता।

सम्प्रदाय में स्वामी जी की जन्म तिथि विक्रम सम्वत १३५६ माघ कृष्ण सप्तमी, गुरुवार को मानी जाती है। यह तिथि सम्प्रदाय के मान्य ग्रन्थ अगस्त्य संहिता के भविष्योत्तर खण्ड में दी गयी है। इसके अनुसार कलि के ४४०० वर्ष बीतने पर संवत १३५६ विक्रमी में स्वामी रामानन्द का आविर्भाव हुआ। अगस्त्य संहिता में दी गयी इस तिथि को मानियर विलियम्स भण्डारकर[6] डा० बड़थ्वाल[7] डा० रामकुमार वर्मा[8] प० परशुराम चतुर्वेदी[9] भक्तमाल के टीकाकार सीताराम शरण रूपकला[10] आदि विद्वानों ने स्वीकार किया है। स्वामी रामानन्द की यह सबसे प्राचीन जन्म तिथि है। डा० बड़थ्वाल ने भक्तमाल में दी गयी गुरु परम्परा को माना है। भक्तमाल के अनुसार रामानुजाचार्य के बाद देवाचार्य हर्यानन्द राघवानन्द तथा

१—एसेज आन दि रिलीजन आफ हिन्दूज भाग १ पृ० ४७।

२—दि सिख रिलीजन भाग ६ पृ० १०।

३—हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर पृ० २।

४—अगस्त्य संहिता—

> स्व नभो वद वेद प्रमिते वर्षे गते कलौ।
> कालिन्दी जाह्नवीसंगे शोभिते देवपूजिते।
> तीर्थराजे महापुण्ये प्रयागे तीर्थ उत्तमे।
> माघ कृष्ण सप्तम्यां शुभधर्म प्रवर्त्तके।
> सप्ताण्ड गते सूर्ये सिद्धियोगयुजि प्रभु।
> नक्षत्रे त्वष्ट्र दवत्ये कुम्भलग्ने शुभग्रहे।
> आविर्भूतो महायोगी द्वितीय इव भास्कर।

—रामानन्द इतिख्याता लोकोद्धरणकारण।—स० प० राम नारायण दास।

५—ब्रह्मनिज्म एण्ड हिन्दूइज्म पृ० १४१।

६—वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड माइनर सेक्ट्स भण्डारकर।

७—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० ४१।

८—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३००।

९—उत्तरी भारत की सन्त परम्परा पृ० २२२।

१०—भक्तमाल रूपकला पृ० २८८।

रामानन्द आचार्य हुए। रामानुजाचार्य की पुण्यतिथि सवत ११९४ म माना जाता है। रामानुजाचार्य और स्वामी रामानन्द के बीच लगभग डेढ़ सौ वर्षों का उचित मानकर डा बथवाल न सवत १ ५६ म स्वामा रामानन्द की जन्मतिथि स्वीकार की है। महाराष्ट्र के दो सत त्रिलोचन और नामदेव स्वामी रामानन्द के पूववर्ती माने जाते हैं। त्रिलोचन का जन्म विक्रम सवत १३२४ म तथा नामदेव का जीवन काल सवत १३२६ १४ ७ माना जाता है। स्वामी रामानन्द का सम्प्रदाय म मान्य तिथि स्वीकार करने से इन सब तथ्यों की सगति बैठ जाती है। सम्प्रदाय म मान्य तिथि सवत १३५६ सामान्यत विश्वसनीय मानी जानी चाहिए। इतना अवश्य है कि इस सम्बन्ध म और खोज करनी होगी जिससे परम्परा और अनुमान के अतिरिक्त मुख्य आधार पर स्वामी जी की जन्मतिथि के सम्बन्ध म निश्चित निर्णय किया जा सके।

स्वामी रामानन्द जी की पुण्य तिथि भी अनिश्चित है। डा ग्रियसन न स्वामी जी की जन्मतिथि विक्रम सवत १ ५६ स्वीकार की है किन्तु पुण्यतिथि के सम्बन्ध म वे निश्चित मत व्यक्त नहीं कर सके। डा ग्रियसन न लिखा है— जहाँ हम प्राय निश्चित रूप से मान सकते हैं कि रामानन्द का जन्म १२९९ ई० म हुआ था वहाँ इनकी मृत्यु तिथि कुछ अस्पष्ट है। लोक परम्परा है कि स्वामी रामानन्द की मृत्यु सवत १४६७ (१४१ ई) म हुई। इससे उनका जीवन काल १११ वष निकलता है जो सम्भव नहीं जान पड़ता। स्वामी रामानन्द चौदहवीं शताब्दी इस्वी के अधिकांश म वतमान थे। इसी प्रकार श्री श्रीकृष्णलाल न अगस्त्य सहिता म दी गयी तिथि सवत १३५६ को स्वामी जी की जन्मतिथि माना है। सवत १४९१ ९२ म उनके देहावसान का अनुमान करते हुए उद्धृत किया है—एस तेजःपुज पुण्यागार मन्त्राचारी ब्रह्मनिष्ठ महात्मा की अवस्था सवा सौ वष की भी हो सकती है और डेढ़ सौ वष की भी। कबीर रैदास पीपा आदि के आविर्भाव-काल का विचार करते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि स्वामी रामानन्द सवत १४९१ ९२ तक जीवित थे। यदि हम उनकी अवस्था १ वष की मान लें तो हम सरलता म उनका समय सवत १ ५६ म १४९१ ९२ तक स्वीकार कर सकते हैं। डॉ बथवाल न स्वामी जी की मृत्यु तिथि सवत १४ ७ विक्रमी माना है। स्वामी

१—इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स भाग १०।

—रामानन्द की हिन्दी रचनाए पृ० ४।

—हिन्दी काव्य म निगुण सम्प्रदाय पृ० ८२।

रामानन्द की यही मृत्यु तिथि अगस्त्य संहिता में दी गयी है। इस तिथि के स्वीकार करने से स्वामी रामानन्द का जीवन काल १११ वर्ष का ठहरता है। स्वामी रामानन्द के दीर्घायु होने का साक्ष्य भक्तमाल में भी मिलता है। नाभादास ने लिखा है कि स्वामी जी ने बहुत काल तक शरीर धारण कर प्रणत जनों का पार किया। टीका तरंग रघुराज सिं० ने भी स्वामी रामानन्द के दीर्घायु होने का उल्लेख किया है।[2] अतएव स्वामी रामानन्द की मृत्यु तिथि संवत १४६७ विक्रमी मानी जा सकती है। किन्तु यह स्पष्ट है कि स्वामी रामानन्द की जन्म और मृत्यु तिथियाँ मध्यकाल के अन्य सन्तों की भाँति अनिश्चित हैं इस सम्बन्ध में निर्णयात्मक निश्चय के लिए खोज की अपेक्षा है।

स्वामी रामानन्द के जीवन के सम्बन्ध में हमारी जानकारी अत्यन्त अल्प है। कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने स्वीकार किया है कि स्वामी रामानन्द दाक्षिणात्य थे। मैकालिफ[3] के अनुसार वे ब्राह्मण थे और उनका जन्म मैसूर में मेलकोट नामक स्थान में हुआ था। डा० फर्कुहर ने भी आरम्भ में यह मत व्यक्त किया था कि दक्षिण के तमिल प्रान्त में रामावत सम्प्रदाय में रामोपासना का विकास हुआ और रामानन्द ने उत्तर भारत में आकर रामभक्ति तथा रामोपासना का प्रचार किया। वे अपने साथ अध्यात्म रामायण तथा अगस्त्य सुतीक्ष्ण संवाद ग्रन्थ भी लाये। बाद में फर्कुहर ने रामानन्द के गुरु राघवानन्द को दाक्षिणात्य माना।[4] डा० ग्रियर्सन ने लिखा है कि स्वामी रामानन्द के दाक्षिणात्य होने की मान्यता केवल योरोपीय विद्वानों में मिलती है।

१—अगस्त्य संहिता सम्पादक पं० रामनारायण दास—

रामर्द्धिविक्रमवत्सरेश्वरसवाराणोद्भवमन्त्यवराम्—(१४६७ वि०)
त्यक्त्वामाघवमासर मुनि ततोयायानियाद्विजवल्लभ॥
धर्मभागवत विमुक्तिफलक दिव्यस्यजातवत।
रामानन्द मुनिश्चक्रममणमन् साकेतलोक परम॥

२—भक्तमाल रामरसिकावली—

बहु भक्तन कौ तन राख्यो। परमारथ हित धार न साख्यो।
तासु प्रभाव किमि चतु पाहा। भरत खण्ड को आनन्द नाहा॥

३—दि सिख रिलीजन भाग ६ पृ० १००।

४—एन आउट लाइन आफ दि रिलीजस लिटरेचर आफ इण्डिया पृ० ३२८, दि हिस्टारिकल पोजीशन आफ रामानन्द १९२२।

५—जे० आर० ए० एस० पृ० ८७१।

रामानन्द आचार्य हुए। रामानुजाचार्य की पुण्यतिथि संवत् ११९४ में मानी जाती है। रामानुजाचार्य और स्वामी रामानन्द के बीच लगभग दो सौ वर्षों का उचित मानकर डॉ० बड़थ्वाल ने संवत् १ ६ में स्वामी रामानन्द की जन्मतिथि स्वीकार की है। महाराष्ट्र के दो सन्त त्रिलोचन और नामदेव स्वामी रामानन्द के पूर्ववर्ती माने जाते हैं। त्रिलोचन का जन्म विक्रम संवत् १ २४ में तथा नामदेव का जीवन काल संवत् १ २६ १४०७ माना जाता है। स्वामी रामानन्द का सम्प्रदाय में मान्य तिथि स्वीकार करने में इन सब तथ्यों की संगति बैठ जाती है। सम्प्रदाय में मान्य तिथि संवत् १३५६ सामान्यतः विश्वसनीय मानी जानी चाहिए। इतना अवश्य है कि इस सम्बन्ध में और खोज करनी होगी जिससे परम्परा और अनुमान के अतिरिक्त सुदृढ़ आधार पर स्वामी जी की जन्मतिथि के सम्बन्ध में निश्चित निर्णय किया जा सके।

स्वामी रामानन्द जी की पुण्य तिथि भी अनिश्चित है। डा० ग्रियर्सन ने स्वामी जी की जन्मतिथि विक्रम संवत् १ ५६ स्वीकार की है किन्तु पुण्यतिथि के सम्बन्ध में वे निश्चित मत व्यक्त नहीं कर सके। डा० ग्रियर्सन ने लिखा है—जहाँ हम प्रायः निश्चित रूप से मान सकते हैं कि रामानन्द का जन्म १२९९ ई० में हुआ था वहाँ उनकी मृत्यु तिथि कुछ अस्पष्ट है। लोक परम्परा है कि स्वामी रामानन्द की मृत्यु संवत् १४६७ (१४१ ई०) में हुई। इससे उनका जीवन काल १११ वर्ष निकलता है जो सम्भव नहीं जान पड़ता। स्वामी रामानन्द चौदहवीं शताब्दी इस्वी के अधिकांश में वर्तमान थे। इसी प्रकार डा० श्रीकृष्णलाल ने अगस्त्य संहिता में दी गयी तिथि संवत् १३५६ को स्वामी जी की जन्मतिथि माना है। संवत् १४९१-९२ में उनके देहावसान का अनुमान करते हुए उन्होंने लिखा है—ऐसे तेजःपुंज पुण्यशरीर सदाचारी ब्रह्मनिष्ठ महात्मा की अवस्था सवा सौ वर्ष की भी हो सकती है और डेढ़ सौ वर्ष की भी। कबीर रैदास पीपा आदि के आविर्भाव-काल का विचार करते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि स्वामी रामानन्द संवत् १४९१-९२ तक जीवित थे। यदि हम उनकी अवस्था १ ५-२६ वर्ष की मान लें तो हम सरलता से उनका समय संवत् १ ५६ से १४९१-९२ तक स्वीकार कर सकते हैं। डा० बड़थ्वाल ने स्वामी जी की मृत्यु तिथि संवत् १४६७ विक्रमी माना है। स्वामी

१—इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एंड एथिक्स भाग १ ।

२—रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ पृ० ४ ।

३—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० ४२।

रामानन्द की यही मृत्यु तिथि अगस्त्य महिमा में दी गयी है।[1] इस तिथि के स्वीकार कर लेने से स्वामी रामानन्द का जीवन काल १११ वर्ष का ठहरता है। स्वामी रामानन्द के दीर्घायु होने का साक्ष्य भक्तमाल में भी मिलता है। नाभादास ने लिखा है कि स्वामी जी ने बहुत काल तक शरीर धारण कर प्रणत जनों को पार किया। रीवा नरेश रघुराज सिंह ने भी स्वामी रामानन्द के दीर्घायु होने का उल्लेख किया है।[3] अतएव स्वामी रामानन्द की मृत्यु तिथि संवत् १४६७ विक्रमी मानी जा सकती है। किन्तु यह स्पष्ट है कि स्वामी रामानन्द की जन्म और मृत्यु तिथियाँ मध्यकाल के अन्य सन्तों की भाँति अनिश्चित हैं इस सम्बन्ध में निर्णयात्मक निष्कर्ष के लिए खोज की अपेक्षा है।

स्वामी रामानन्द के जीवन के सम्बन्ध में हमारी जानकारी अत्यन्त अल्प है। कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने स्वीकार किया है कि स्वामी रामानन्द दक्षिणात्य थे। मेकालिफ[4] के अनुसार वे ब्राह्मण थे और उनका जन्म मैसूर में मेलकोट नामक स्थान में हुआ था। डा० फर्कुहर ने भी आरम्भ में यह मत व्यक्त किया था कि दक्षिण के तमिल प्रान्त में रामावत सम्प्रदाय में रामोपासना का विकास हुआ और रामानन्द ने उत्तर भारत में आकर राममंत्र तथा रामोपासना का प्रचार किया। वे अपने साथ अध्यात्म रामायण तथा अगस्त्य-सुतीक्ष्ण संवाद ग्रंथ भी लाये। बाद में फर्कुहर ने रामानन्द के गुरु राघवानन्द को दाक्षिणात्य माना। डा० ग्रियर्सन ने लिखा है कि स्वामी रामानन्द के दाक्षिणात्य होने की मान्यता केवल योरोपीय विद्वानों में मिलती है।

१—अगस्त्य महिमा सम्पादक पं० रामनारायण दास—

श्रीमद्विक्रमवत्सरेऽम्बरसवारांगे दुमन्ययरामे—(१४६७ वि०)
त्यक्त्वा स्वामिरमापतिः सुविदितायायातिथौ जन्मभूः॥
धर्मभागवत विमुक्तिपद्म्पर्क वियस्ययांजातयुतः।
रामानन्द मुनीन्द्रकस्मम्भगमत साकेतलोकं परम्॥

२—भक्तमाल रामरसिकावली—

बहु दिन लौं तन राख्यो। परमारथ रत जिय और न भाख्यो।
तासु प्रभाव बिदित जहँ पाये। भरत खण्ड को जानन नाहीं॥

—सिक्ख रिलीजन भाग ६ पृ० १००।

४—एन आउटलाइन आफ दि रिलीजस लिटरेचर आफ इंडिया पृ० ३२८

दि हिस्टोरिकल पोजीशन आफ रामानन्द १९२२।

५—जे० आर० ए० एस० पृ० ६७।

हिन्दी के विद्वान आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी स्वामी रामानन्द को दाक्षिणात्य मानते जान पड़ते हैं। इसके प्रमाण में एक उक्ति प्रसिद्ध है।[1] स्वामी रामानन्द के दाक्षिणात्य होने की मान्यता का यही आधार जान पड़ता है। किन्तु इस उक्ति से यह अर्थ स्पष्ट नहीं। निकलता कि दक्षिण देश में उत्पन्न भक्ति को उत्तर भारत में प्रचार करने वाले स्वामी रामानन्द स्वयं दाक्षिणात्य थे। 'भक्ति द्राविड़ ऊपजी' वाली उक्ति भागवत में वर्णित भक्ति और ज्ञान के संवाद पर आधारित जान पड़ती है।[2] इस आधार पर स्वामी रामानन्द को दाक्षिणात्य नहीं कहा जा सकता।

साम्प्रदायिक मान्यता यह है कि स्वामी रामानन्द का जन्म प्रयाग में हुआ था। अगस्त्य संहिता में उल्लेख है कि स्वामी रामानन्द का जन्म प्रयाग में कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ। अगस्त्य संहिता के इस मत को डा० बड़थ्वाल, डा० ग्रियर्सन, पं० परशुराम चतुर्वेदी, रूपकला आदि विद्वानों ने स्वीकार किया है। भविष्य पुराण में भी रामानन्द जी का जन्म स्थान दिया है किन्तु इसे विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है। अगस्त्य संहिता के अनुसार स्वामी रामानन्द के पिता पुण्य सदन थे और उनकी माता सुशीला देवी। चेतन दास द्वारा रचित प्रसंग पारिजात में रामानन्द जी की माता का नाम सुशीला देवी दिया गया है। प्रसंग पारिजात को विद्वानों ने प्रामाणिक रचना स्वीकार किया है। किंवदन्ती है कि रामानन्द का दीक्षा पूर्व नाम रामदत्त था। भक्तमाल के टीकाकार रूपकला जी ने यह मत व्यक्त किया है। अन्यत्र पूर्वनाम रामभारती का उल्लेख है। किन्तु प्रायः मान्य मत यह है कि स्वामी रामानन्द का नाम आरम्भ में भी रामानन्द था और वैष्णव नाम संस्कार के उपरान्त भगवत् सूचक नाम होने के कारण उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

अगस्त्य संहिता आदि सभी साक्ष्यों से यह सिद्ध है कि रामानन्द के दीक्षा गुरु स्वामी राघवानन्द थे। स्वामी रामानन्द ने स्वयं भी रामार्चन

१—हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ८७।

२—भक्ती द्राविड़ ऊपजी लाये रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सप्त द्वीप नवखण्ड।

—उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता।४८।

माहात्म्य। अध्याय १।

पद्धति में गुरु परम्परा देते हुए राघवानन्द को अपना गुरु कहा है। अगस्त्य संहिता के अनुसार रामानन्द ने राघवानन्द से रामषडक्षर मंत्र प्राप्त किया था।[1] भक्तमाल में नाभादास ने राघवानन्द को रामानन्द जी का गुरु बताया है।[2] अगस्त्य संहिता के अनुसार बारह वर्ष की अवस्था होने पर रामानन्द जी स्वामी राघवानन्द के पास गये, विद्या ग्रहण करने लगे और शास्त्रों में पारंगत होकर उनसे दीक्षा प्राप्त की। सम्प्रदाय में यही मत मान्य है। भविष्य पुराण में उल्लेख है कि माता पिता से त्यक्त होकर रामानन्द स्वामी राघवानन्द के पास गये थे। एक किंवदन्ती यह भी है कि स्वामी रामानन्द पहले किसी शैव संन्यासी के शिष्य थे। एक दिन उनकी स्वामी राघवानन्द से भेंट हुई जिन्होंने उन्हें उनकी आसन्न मृत्यु की सूचना दी और अपनी शरण में लेकर बचाया था। यह भी कहा जाता है कि शैव संन्यासी ने स्वयं रामानन्द को राघवानन्द के पास भेज दिया था। राघवानन्द जी ने उन्हें समाधि में स्थित कर दिया और इस प्रकार उनकी मृत्यु टल गयी। इस किंवदन्ती का कोई प्रामाणिक आधार नहीं मिलता। स्वामी राघवानन्द के सम्बन्ध में कोई निश्चित सूचना नहीं मिलती। डा० बड़थ्वाल ने कुछ समय पूर्व उनके एक ग्रंथ

१—रामानन्द गुणाम्भोनिधि श्री राघवानन्दनम् ।
श्रीमन्त मनिपुंगव च हर्यानन्द शियानन्दकम् ।
श्रीमन्त मुनिनिडराजनयन नाथ मुनि शान्त—
स्य श्री पतनापान जनकजा राम मन्त्र म नय। पृ० २ ।

२—आचार्य लक्षणायुक्त वेदवेदान्त पारगम् ।
श्री सम्प्रदायश्रेष्ठ च स्नानाद्धारपद सदा ।१५।
विज्ञाय राघवानन्द लब्ध्वा तस्मात षडक्षरम् ।
रहस्यत्रयवाक्यार्थ तात्पर्यार्थ च सम्मतम् ।
आचार्य लक्षणोपेत स्तदा स भविष्यति ।१६।।

३—श्रीरामानुजाचार्यपद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै विस्तर्यो ।
देवाचार्य द्वितीय महामहिमा हर्यानन्द ।
तस्य राघवानन्द भये भक्तन को मानद ।
पत्रावलम्ब पृथिवी करायसि कासी स्थाइ ।
चारि वरन आश्रम सबही को भक्ति दृढ़ाइ ।
तिनके रामानन्द प्रगट विश्वमंगल वपु धर्यो ।
श्री रामानुजपद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै विस्तर्यो ।
—भक्तमाल छप्पय ३५ पृ० २८१।

सिद्धान्त पंचमात्रा का पता लगाया था। यह ग्रंथ अब प्रकाशित हो चुका है। भाषा की दृष्टि से यह सामान्य लेखक की रचना जान पड़ती है। हरभक्ति सिंधुवेला ग्रंथ में जिसके रचयिता अनन्त स्वामी कहे गये हैं राघवानन्द को रामानुजकुलोद्भव और उत्तर में आकर राममंत्र का प्रचार करने वाला कहा गया है।[१] डा० फर्कुहर का यह अनुमान सम्भवतः सत्य है कि रामानन्द जी का सम्बन्ध दक्षिण की रामोपासना से था किन्तु रामोपासना को उत्तर में लाने वाले रामानन्द नहीं वरन् उनके गुरु राघवानन्द थे। पं० बलदेव उपाध्याय ने इसका समर्थन करते हुए लिखा है—"दक्षिण भारत से लाकर उत्तर भारत में विष्णु भक्ति के प्रधान प्रचारक स्वामी रामानन्द जी माने जाते हैं परन्तु मेरी दृष्टि में यह गौरव उनके गुरु स्वामी राघवानन्द जी को ही देना सर्वथा उचित है। राघवानन्द जी ही दक्षिण तथा उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन के संयोजक व्यक्ति हैं। मध्यकालीन धार्मिक आन्दोलन के इतिहास का परिचय स्वामी राघवानन्द जी के परिचय के बिना कदापि पूरा नहीं हो सकता। ये रामानुज जी के सम्प्रदाय के महात्मा तथा योगविद्या में पारंगत पंडित माने जाते थे। उनकी जीवनी अभी तक अंधकारपूर्ण ही है। हम इतना ही जानते हैं कि ये काशी के पंचगंगा घाट पर निवास करते थे और यहीं उन्होंने रामानन्द स्वामी को अपना मंत्र शिष्य बनाया था। स्वामी रामानन्द के गिरनार पर्वत पर तपस्या करने तथा अन्तिया के ज्योतिमठ में ब्रह्मचारी रहकर अध्ययन करने के सम्बन्ध में भी किंवदन्ती मिलती है किन्तु इसके लिए कोई प्रामाणिक आधार नहीं है।

एक महत्वपूर्ण किंवदन्ती राघवानन्द और रामानन्द में मतभेद के सम्बन्ध में है। रामानुजाचार्य ने भक्ति के क्षेत्र में उदारभाव प्रकट किया था और प्रपत्ति का मार्ग सबके लिए खोल दिया था। किन्तु सम्प्रदाय में जात पांत का भेद चला आता था और स्वामी राघवानन्द भी इसे मानते थे। स्वामी रामानन्द का भक्ति के क्षेत्र में भेदभाव अमान्य था। शिष्य की अधिक उदार देखकर स्वामी राघवानन्द ने उन्हें अलग सम्प्रदाय चलाने की अनुमति दे दी। रामानन्द ने सभी जाति के लोगों को दीक्षा दी। कुछ लोगों के अनुसार तीर्थाटन के बाद लौटने पर रामानन्द को अपने साथ भोजन कराने में गुरुभाइयों को आपत्ति हुई क्योंकि उनका विचार था कि यात्रा के समय छुआछूत सम्बन्धी मर्यादा का रामानन्द जी ने पालन न किया होगा। इस सम्भवतः राघवानन्द ने भी स्वीकार

१—देखो श्रीराघवाचार्य रामानुजकुलोद्भव।
याम्यादुत्तरमागत्य राममंत्रप्रचारकम्। हरिभक्तिसिंधुवेलामत चौथा तरंग।
२—बलदेव प्रसाद उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय पृ० २४४-४५।

किया और शिष्य को प्रतिभाशाली जान कर उन्हें अलग सम्प्रदाय चलाने की अनुमति दी। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी गुरु शिष्य मतभेद का उल्लेख किया है— रामानन्द के गुरु का नाम राघवानन्द था। किसी अनुशासन सम्बन्धी विषय पर गहरा मतभेद हो जाने के कारण इन्होंने मठ त्याग दिया और उत्तर भारत को आ गए थे। मठ मामूली सम्पत्ति वाला न था। इतनी बड़ी सम्पत्ति को जो महज हो त्याग सकता था उसकी स्वतन्त्र चिन्ता शक्ति का अन्दाज सहज ही लगाया जा सकता है। सच पूछा जाय तो मध्य युग की समग्र स्वाधीन चिन्ता के गुरु रामानन्द ही थे।[1] गुरु से मतभेद की इस किंवदन्ती के सम्बन्ध में अभी तक कोई विश्वसनीय सामग्री नहीं मिल सकी है। स्वामी रामानन्द ने तीर्थाटन तथा सम्प्रदाय संगठन के उद्देश्य से देश में विभिन्न स्थानों की यात्रा की होगी और इन सम्बन्ध में उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों पर विचार किया होगा। इन यात्राओं का योग उनकी दृष्टिकोण उदार बनाने में अवश्य है। अगस्त्य संहिता में रामानन्द की यात्राओं का उल्लेख किया गया है।[2] भविष्य पुराण में अयोध्या में मुसलमान बने हिन्दुओं को स्वामी रामानन्द द्वारा फिर से वैष्णव बनाये जाने का उल्लेख है।[3]

१—हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ४७।

२—शिष्यैर्नानाभि श्रीमानवनतरकमतिम ।
सूर्येशान्नाभिनित्य यथा विष्णु प्रतापवान ।
विराजमानस्मनन पर्यटनवनामिमाम ।
द्वारकादिषु तीर्थेषु तत्र तत्र जगद्गुरु ।
विद्या जित्वरोवाद श्रुतिस्मृतिनिमसर्दयन ।
विपरीतानुवर्ताकुर्वन शिष्याश्चेतनानय ।
षडक्षर मन्त्रराजन्तेभ्यश्चापदिशा मुनि ।
मन्त्रार्थश्रावयन्नित्य मन्त्रनस्तत्परामित ।
आगमुद्र चतुर्दिक्षु विचरन् धर्मतत्पर ।
वक्ता व वह्वा लोक रामाभिरत्समुत्तमम्।
—अगस्त्य संहिता पृ० ५३६ ६।

३—भविष्य पुराण अध्याय २१।
म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्द प्रभावत ।
संयोगिनश्च ते तथा अयोध्याया बभूविरे।
कण्ठे च तुलसी माला जिह्वा राममयी कृता।
भाले त्रिशूल चिन्ह च श्वेत रक्तताभवत्।

प्रायः सभी साक्ष्यों से सिद्ध है कि स्वामी रामानन्द का बन्ममठ काशी में पंचगंगाघाट पर था। यह मठ आज भी अवशेष रूप में वर्तमान है। मुसलमानों के शासन में इस मठ को ध्वस्त कर दिया गया था। इस कारण यहाँ कोई प्राचीन सामग्री सुरक्षित नहीं रह सकी।

नाभादास जी ने भक्तमाल में स्वामी रामानन्द के बारह प्रमुख शिष्य गिनाये हैं और इनके सम्बन्ध में विवरण भी प्रस्तुत किया है। नाभादास जी के अनुसार स्वामी रामानन्द के ये शिष्य थे—अनन्तानन्द, कबीर, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, पद्मावती, नरहर्यानन्द, पीपा, भवानन्द, रैदास, धना, सेन और सुरसुरी। ये नाम अगस्त्य संहिता आदि सम्प्रदाय के प्रामाणिक ग्रन्थों में भी मिलते हैं। भक्तमाल में प्रस्तुत विवरण को सभी विद्वानों ने प्रामाणिक माना है। पिछले कुछ वर्षों में की गयी खोज के आधार पर इधर इन शिष्यों के एक समय में वर्तमान होने तथा स्वामी रामानन्द के शिष्य होने पर शंका प्रकट की गयी है। समकालीनता का प्रश्न कबीर, सेन, धना, पीपा और रैदास के सम्बन्ध में उत्पन्न हुआ है। इस सम्बन्ध में संत साहित्य के विद्वान पं० परशुराम चतुर्वेदी ने अपना मत व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है—कबीर, सेन, धना, पीपा और रैदास इन पाँच व्यक्तियों में से कदाचित् किसी ने भी स्पष्ट शब्दों में रामानन्द को अपना गुरु स्वीकार नहीं किया है और उनमें से सभी ने उनका नाम तक नहीं लिया है। कम से कम पीपा जी ने अपने को कबीर साहब द्वारा तथा धना ने नामदेव, कबीर साहब, रैदास तथा सेन नाई की कथाओं द्वारा प्रभावित होना स्वीकार किया है। सम्भव है कि उक्त सभी संत एक ही समय और एक ही साथ ऐसी स्थिति में वर्तमान भी न रहे होंगे जिससे उनका स्वामी रामानन्द का शिष्य और आपस में गुरुभाई होना सिद्ध किया जा सके। मध्ययुग के महात्माओं की रचनाओं के प्रामाणिक संस्करण संपादित करने का काम अभी शेष है। जब तक इन महात्माओं की

१—श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियो।
अनन्तानन्द कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि।
पीपा भवानन्द रैदास धना सेन सुरसुर की घरहरि।
औरौ शिष्य प्रशिष्य एक तें एक उजागर।
विश्वमंगल आधार सर्वानन्द दशधा के आगर।
बहुत काल वपु धारि कै प्रणत जनन को पार दियो।
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियो।—भक्तमाल ३६।
—उत्तरी भारत की संत परम्परा पृ० २२४।

कृतियों के प्रामाणिक सस्करण उपलब्ध नहीं होते और उनके बारे में और जानकारी नहीं होती तब तक इस सम्बन्ध में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। परम्परा अवश्य इनके रामानन्द स्वामी के शिष्य होने के पक्ष में है और यह परम्परा प्राचीन है यह हम देख चुके हैं। इन महात्माओं ने भले ही स्पष्ट शब्दों में रामानन्द को अपना गुरु न घोषित किया हो किन्तु उनकी रचनाओं में स्वामी रामानन्द के सिद्धान्त उनका उदार दृष्टिकोण स्पष्टत दृष्टिगोचर होता है। डॉ० राम कुमार वर्मा ने इस सम्बन्ध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है— यद्यपि सन्त सम्प्रदाय नाथ सम्प्रदाय के विकास की एक स्वतन्त्र कड़ी है और योग का अभ्यास ही उसकी साधना का अंग बन गया था तथापि इस युग में भक्ति की जो धारा उत्तर भारत में लहरा उठी थी वह सन्त सम्प्रदाय की साधना का अंग बन कर रही। यही नहीं भक्ति का महत्व इतना बढ़ गया था कि योग की कष्टसाध्य क्रियाएं नाममात्र के लिए साधना के अन्तर्गत रह गयी थीं। एकमात्र भक्ति और उसके अन्तर्गत प्रेम की विश्वासमयी अनुभूति ही साधना की प्रमुख मान्यता बन गयी थी। रामानन्द के प्रभाव से राम और उनकी भक्ति का प्रभाव इतना अधिक था कि सन्त सम्प्रदाय में भी राम और उनकी भक्ति का रूप स्वीकार किया गया। यह बात दूसरी है कि राम का नाम ही सन्त सम्प्रदाय में मान्य हुआ राम का व्यक्तित्व नहीं। तत्कालीन परिस्थितियों की चर्चा करते हुए डा० वर्मा ने लिखा है— परम्पराओं के उचित सचयन तथा परिस्थितियों की प्रेरणा से धर्म ऐसा रूप खोज रहा था कि वह केवल आचार्यों की वाणी में सीमित न रहकर जन-जीवन की व्यावहारिकता में उतर सके और ऐसा रूप ग्रहण करे कि वह अन्य धर्मों के प्रसार में समानान्तर चलते हुए अपना रूप सुरक्षित रख सके। वह रूप सहज और स्वाभाविक हो तथा अपनी विचारधारा में सत्य से इतना प्रखर हो कि विविध वर्ग और विचार वाले व्यक्ति अधिक से अधिक सख्या में उसे स्वीकार कर सकें और उसे अपने जीवन का अंग बना लें। स्वामी रामानन्द ने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में धर्म को बहुत बड़ी सुविधा दे दी। उन्होंने प्रमुख रूप से बारह शिष्य बनाये—अनन्तानन्द कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि पीपा भावानन्द रैदास, धना सेन सुरसुर की घरहरि। (भक्तमाल)। इन शिष्यों में कबीर पीपा रैदास धना और सेन सन्त और कवि रूप में प्रसिद्ध हैं—इनमें कबीर अग्रणी थे। अधिकांश शिष्य समाज के निम्नवर्ग में से थे। अधिकांश शिष्यों का शास्त्रीय ज्ञान नहीं के बराबर था किन्तु जो जीवन के अनुभव और सघर्षों से जाग्रत हो उठे थे। ये धर्म का ऐसा रूप देख सकते थे जिसमें समाज के निम्न से निम्न स्तर के लोग विश्वास प्रवण बन सकते थे और ज्ञान

नीचा म धम के मूल-भावा की प्रतिष्ठा कर सकते थ। एक बात और भी थी कि स्वामी रामानन्द अपनी धार्मिक दृष्टि म इतन उदार थ कि उन्होंने अपने शिष्यों को स्वतन्त्र दृष्टिकोण अपनाने का पूरा अवसर द दिया थी। यह आवश्यक नहीं था कि उनके शिष्य रामोपासना म ही विश्वास रख। शिष्यों के लिए यही पर्याप्त था कि वे धम के वास्तविक मर्म को हृदयगम कर और भक्ति का मर्म अनुभूति प्राप्त कर। रामानन्द न जिन शिष्यों को भक्ति म दीक्षित किया व अपने विचार निष्ठा म स्वतन्त्र थ। परम्परा और युग के प्रभाव का रग व सगुण और निगुण उपासना के सन्धि-स्थल पर खड़े थ। यह अवश्य सत्य है कि क्रमश उनका झुकाव निगुणोपासना की ओर होता जा रहा थ। इनम कबीर के अतिरिक्त सेन धना पीपा और रैदास विशेष प्रसिद्ध थे। हिन्दी के अधिकाश विद्वान परम्परा तथा नाभादास के भाष्य पर स्वामी रामानन्द के प्रमुख द्वादश शिष्यों की सूची को स्वीकार करते ह। मध्य युग के महात्माओं के स्थिति काल के सम्बन्ध म निश्चित सामग्री का अभाव है। जब तक पूर्णत विश्वसनीय प्रमाण न मिल जाय तब तक सुदीघकाल से चली आ रही परम्परागत मान्यता को ही स्वीकार करना उचित होगा। अतएव नाभादास के द्वारा भक्तमाल म दी गयी स्वामी रामानन्द के शिष्यों की सूची को प्रामाणिक माना जाना चाहिए।

सम्प्रदाय और पद्धति—वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य रामानुजाचार्य न दक्षिण के भक्ति आन्दोलन को शास्त्रीय आधार प्रदान किया और विष्णु की उपासना का प्रचार किया। अवतारों म उन्होंने लक्ष्मीनारायण को अपना इष्टदेव स्वीकार किया। इसके साथ साथ अन्य अवतारों की उपासना भी भक्त लोग श्रद्धानुसार किया करते थ। कृष्ण की उपासना का भी प्रचार हो चुका था। जन साधारण म रामोपासना का प्रचार करने वाले आचार्य हुए स्वामी रामानन्द। रामानन्द सम्प्रदाय के साधुओं को वैरागी कहा जाता है। इस सम्प्रदाय के अन्तगत तपसी शाखा के साधु अपने को अवधूत भी कहते हैं। रामानन्दी साधुओं का मुख्य संगठन है। स्वामी रामानन्द के बाद उनके शिष्यों ने विभिन्न स्थानों म सम्प्रदाय का प्रचार किया। काशी म पचगगा घाट म रह कर उनके शिष्य अनन्तानन्द न सम्प्रदाय का प्रचार किया। अनन्तानन्द की शिष्य-परम्परा राजस्थान तथा गुजरात म बहुत फैली और अनेक साधु-सन्तों ने इन प्रदेशों म रामोपासना का प्रचार किया।

१—हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड पृ० २ ७१६।

स्वामी रामानन्द के महान व्यक्तित्व के सम्बन्ध में नाभादास का प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध है। नाभादास जी ने उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम राम की भाँति संसार का कल्याण करने वाला बताया है। और कहा है कि उन्होंने श्री राम की भाँति प्राणियों के उद्धार के लिए दूसरा सेतु (भक्ति) तैयार कर दिया। स्वामी रामानन्द के अनेक प्रतिभाशाली लोक कल्याण करने वाले विख्यात शिष्य थे जो दशों भक्ति के भण्डार थे। स्वामी रामानन्द राघवानन्द तक जीवित रहे और उन्होंने भक्तजनों का उद्धार किया। नाभादास जी ने स्वामी रामानन्द के शिष्यों की जो सूची दी है उसमें रामानन्द के उदार दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। उन्होंने सभी जाति के लोगों को अपना शिष्य बनाया और राममंत्र की दीक्षा दी। समाज के विभिन्न वर्गों में ग्रहीत इन सभी शिष्यों ने अपने समय में भक्ति का व्यापक प्रचार किया। भक्ति-क्षेत्र में पददलित लोगों के समान अधिकार की प्रतिष्ठा हो गयी और इस प्रकार उनके कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो गया। स्त्रियों के लिए भक्ति का मार्ग खुल गया। पद्मावती और सुरसुरी रामानन्द की दो प्रमुख शिष्याएँ थीं। भ्रष्ट हुए हिन्दुओं को उन्होंने पुन: वैष्णव बनाया। मध्य युग में जब हिन्दू धर्म संकीर्णताओं से बोझिल हो रहा था उस समय अप्रचलित स्वामी रामानन्द ने धर्म भ्रष्ट लोगों को पुनः वैष्णव बनाकर ग्रहण किया। इससे स्वामी रामानन्द के महान आत्मबल उनकी दृढ़ता एवं दूरदर्शिता का परिचय मिलता है।

स्वामी रामानन्द संस्कृत के पण्डित शास्त्रज्ञान सम्पन्न महात्मा थे। उन्होंने अपने गुरु स्वामी राघवानन्द से शिक्षा प्राप्त की थी शास्त्रों का अनुशीलन किया था और समस्त भारतीय ज्ञानराशि का आत्मसात किया था। उन्होंने अपने समय के समाज का सूक्ष्म अध्ययन किया था। दूर दूर तक यात्राएँ की थी और तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों तथा समस्याओं को भलीभाँति समझा था। युग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इन दूरदर्शी महात्मा ने समाज की समस्याओं के सम्बन्ध में व्यवस्थाएँ दीं और प्राणियों के कल्याण का मार्ग निकाला। स्वामी रामानन्द मध्य-युग के समग्र स्वाधीन चिन्ता के गुरु थे। उनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार था। मध्य-युग में भारतीय समाज में शिथिलता आ गयी थी तथा उसे विजयोन्मत्त इस्लाम का सामना करना पड़ा। स्वामी रामानन्द ने समाज को जकड़ने वाले जाति पाँति के बन्धनों को शिथिल कर दिया और भक्ति के रूप में नवीन जीवनी शक्ति का संचार कर भारतीय समाज को गतिशील बनाया तथा मार्ग प्रशस्त कर उसे प्रगति के मार्ग पर अग्रसर किया। स्वामी राघवानन्द ने चारि बरन आश्रम सबही को भक्ति दृढ़ाई थी। भक्ति के प्रचार का यह महत्

नीग साथ स्वामी रामानन्द द्वारा विन्द् रूप म सम्पन्न हुआ। स्वामी रामानन्द की प्रेरणा स प्रवाहित भक्ति भागीरथी म अभिषिक्त हो जाति-पाति जना न शान्ति लाभ किया। भक्ति का माग सबक लिए उन्मुक्त हो गया। सबके लिए राम और सबके गुरु की ओर सकेत करन वाली यह उक्ति जो स्वामी रामानन्द द्वारा रचित कही जाती है आज भी विख्यात हो गयी जाति पाति पूछ नहि कोइ हरि को भज सो हरि का होई। स्वामी रामानन्द न उपासना पद्धति की स्वतन्त्रता भी स्वीकार की। रामोपासना को उन्होंने लोक कल्याण की दृष्टि स अत्यन्त उपयुक्त समझा और दृढ़ता के साथ राममत का प्रचार किया। स्वामी रामानन्द के व्यक्तित्व के सम्बन्ध म काशी म रहन वाले समकालीन फकीर मौलाना रशीदुद्दीन न तज़कीर फुकरा म चर्चा की है और उन्हें तेज पुंज और पूर्ण योगेश्वर बताया है।[१]

स्वामी रामानन्द को अपने मतवाद का प्रचार जन साधारण म करना अभीष्ट था। रामानन्द स्वय सस्कृत के पण्डित थे किन्तु उन्होंने भाषा के सम्बन्ध म उदार दृष्टिकोण अपनाया और लोकभाषा हिन्दी के माध्यम से भक्ति का प्रचार किया। हिन्दी भाषा के प्रचार का श्रेय स्वामी रामानन्द को है। प्राचीन काल म महावीर और गौतम बुद्ध ने अपने मत का प्रचार लोकभाषा म किया था। स्वामी रामानन्द न इसी प्रकार भक्ति आन्दोलन के प्रचार के लिए हिन्दी भाषा का प्रयोग किया। आगे चल कर इस भाषा म अद्वितीय शक्ति सौन्दय सम्पन्न भक्ति साहित्य की रचना हुई। हिन्दी का माध्यम अपनाने स रामानन्द सम्प्रदाय के सन्त जनसाधारण का हृदय अपनी ओर आकृष्ट कर सके और रामोपासना का प्रचार उत्तर भारत के कोने कोने म कर सके। प बलदेव उपाध्याय न लिखा है—

हिन्दी को धम भाषा मानने स रामानन्दी वैष्णवो ने जनसाधारण तक ही अपने उपदेशों को नहीं पहुँचाया प्रत्युत उसे भारतवर्ष की सार्वभौम तथा सार्वजनिक भाषा भी बनाया। रामानन्दी वैष्णव लोग तीर्थ यात्रा के प्रसंग स समग्र भारत म घूमते थे। जहाँ कहीं वे जाते थे वहीं अपने भजनों तथा उपदेशों के द्वारा हिन्दी भाषा का प्रचार करते थे। सच्ची बात तो यह है कि इन्हीं वैष्णवों की कृपा से बिना किसी परिश्रम के हिन्दी भाषा मध्यकालीन धार्मिक क्रान्ति तथा आन्दोलन की माध्यम होने स धार्मिक जगत म सवत्र समभावेन आदृत तथा सत्कृत हुई। स्वामी रामानन्द के शिष्य समुदाय न हिन्दी को अपनाया। उनसे प्रेरणा पाकर जिन

१—कल्याण सन्तांक।

२—प बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय प २८ ८६।

भक्तों ने अपने अनुभूत सत्य को वाणीबद्ध किया प्रायः उन सभी ने हिन्दी भाषा का प्रयोग किया। फलस्वरूप मध्ययुगीन प्रगतिशील चिन्तनधारा की श्रेष्ठतम विभूति हिन्दी भाषा को मिल सकी।[1] स्वामी रामानन्द के नाम से कुछ हिन्दी रचनाएँ मिलती हैं। इन पर आगे विचार किया जायगा।

हिन्दी रचनाएँ—स्वामी रामानन्द के नाम पर प्रचलित ग्रन्थों में वैष्णवमताब्ज भास्कर और श्री रामार्चन पद्धति इन दो संस्कृत ग्रन्थों को विद्वानों ने उनकी प्रामाणिक रचना स्वीकार किया है। इन ग्रन्थों में स्वामी रामानन्द ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। वैष्णवमताब्ज भास्कर में उन्होंने अपने शिष्य सुरसुरानन्द के दस प्रश्नों के उत्तर दिए हैं। प्रश्नों के विषय हैं—तत्त्व जाप्य मंत्र इष्टस्वरूप मुक्ति-साधन उत्तम धर्म वैष्णवों के भेद निवास स्थान तथा कालक्षेप और मार्ग के साधन। श्री रामार्चन पद्धति में उन्होंने भगवान राम तथा गुरु सहित पूर्वाचार्यों का स्मरण करते हुए श्री रामचन्द्र की पूजा विधि का वर्णन किया है। काव्यगुण युक्त ललित संस्कृत में निबद्ध इन दो ग्रन्थों में स्वामी रामानन्द के मत का स्पष्ट रूपरेखा मिल जाता है।

स्वामी रामानन्द तत्वतः विशिष्टाद्वैतवादी थे। उन्होंने तत्ववाद रामानुजाचार्य से ग्रहण किया किन्तु उपासना पद्धति अपनी विशेष रखी। रामानन्द सम्प्रदाय रामानुज सम्प्रदाय के अन्तर्गत माना भी जाता था। इधर कुछ वर्षों से उसे स्वतन्त्र सम्प्रदाय सिद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है। स्वामी रामानन्द ने राम को ही ब्रह्म माना है। वे उन्हीं के सुखाम्बुज का स्मरण करते हैं। रामचन्द्र श्रीमान अच्युत शरण्य हैं विधि भव-योगिजन-वंदित हैं। वे राम गुणरहित्य संसार के हेतु सर्वज्ञ हैं।[2] विष्णु ने राम के रूप में अवतार लिया था। वे लोक में धर्म विस्तार करने वाले दाशरथि राम थे। रामानन्द सीतासहित इन्हीं दाशरथि राम का सदा स्मरण करते हैं। अकिंचन व्यक्ति भी उनकी शरण में जाकर उनकी कृपा प्राप्त कर सकता है। उनकी कृपा प्राप्ति में किसी प्रकार का बंधन नहीं है वह सबके लिए सुलभ है। अनुज वायुपुत्र और सीतासहित आराध्य देव की सेवा सदैव प्राणियों को करनी चाहिए।[3]

स्वामी रामानन्द ने रामभक्ति का व्यापक प्रचार किया। भक्ति को उन्होंने मार्ग का मुख्य साधन माना और उसे अर्थचित मुख्य प्रश्रय दिया। उनके

१—डॉ॰ बदरी नारायण श्रीवास्तव : रामानन्द सम्प्रदाय पृ॰ ८८६।
२—वैष्णवमताब्ज भास्कर पृ॰ १०८।
३—वही पृ॰ ८९।

अनुगार पर गस्कारा म मम्पृत हाकर वणाद्र जना को अहनिग श्रारामको भक्ति करनी चाहिए। स्वामी रामानन्द ने जिस भक्ति का उपदेश दिया वह महर्षिया द्वारा प्रवर्तित भागवत द्वारा निदिष्ट भक्ति है। उन्हाने भागवतोल्लिखित नवधा भक्ति का उपदेश दिया है। भगवान को शरण म जाना प्रपत्ति कहलाता है। भगवान को कृपा प्राप्त करने म उनका शरण म जान के सभी अधिकारी है। इसम किसी प्रकार का बंधन नहीं क्रियाकलाप की आवश्यकता नहीं है। स्वामी रामानन्द ने दास्य भक्ति पर विशेष जोर दिया। उन्हाने भक्ति को सर्वोत्कृष्ट तत्व माना है और यह स्पष्ट कर दिया है कि इसके अधिकारी प्राणी मात्र हैं।

स्वामी रामानन्द के नाम पर मिलन वाली हिन्दी रचनाए अत्यन्त विवाद ग्रस्त हैं। प्रारम्भ म स्वामी रामानन्द की रचनाओं का विद्वानों को पता नहीं था विल्सन[1] ने रामानंद के किसी ग्रन्थ की सूचना नहीं दी। फर्कुहर ने अनुमान किया है कि रामानंद अध्यात्म रामायण और अगस्त्य-सुतीक्ष्ण संवाद अपने साथ दक्षिण से लाये थे। मकालिफ को आदिग्रन्थ म संगृहीत एक पद रामानन्द का मिला था जिसे उन्होंने रामानंद कृत माना था। डॉ ग्रियर्सन को स्वामी रामानंद के कुछ पद मिले थे उन्होंने हनुमान-स्तुति का एक पद नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका म प्रकाशित भी कराया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी साहित्य के पाश्चात्य विद्वानों को रामानंद की हिन्दी रचनाओं का कुछ पता नहीं था।

हिन्दी साहित्य के भारतीय विद्वानों को भी आरम्भ म स्वामी रामानन्द के ग्रंथों के सम्बन्ध मे सूचना प्राय नहीं थी। मिश्रबन्धु विनोद म रामरक्षा और ज्ञान तिलक दो रचनाओं का उल्लेख है। ये नागरी प्रचारिणी सभा की खोज मे मिली थी। डॉ श्यामसुन्दर दास न अपने लेख—रामावत सम्प्रदाय—म हनुमान स्तुति सम्बन्धी रामानंद का पद प्रकाशित कराया था। इस पद को डा ग्रियर्सन ने उनके पास भेजा था।

१—सर्वे प्रपत्तरधिकारिणामता शक्ता अशक्ता अपि नित्य रगिण।
नापेक्ष्यते तत्रकुल बल च नो न चापिकालो नहि शुद्धितापिवा।
—वैष्णवमताब्ज भास्कर पृ० १७।

—श्रीमद्भागवत सप्तम स्कन्ध ५।

२—एच एच विल्सन रिलीजस सेक्ट्स आफ हिन्दूज पृ० ५७।

—जे आर ए एस हिस्टारिकल पोजीशन आफ रामानंद पृ १८५ ९२।

४—डा ग्रियर्सन माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान पृ० ७।

५—नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ४ पृ २२७।

पिछले तीन दशकों में स्वामी रामानन्द के सम्बन्ध में अध्ययन को कुछ अधिक गति मिली है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्वामी रामानन्द के नाम से मिलने वाले ग्रन्थों की सर्वप्रथम समीक्षा की। आचार्य शुक्ल ने रामरक्षा, योग चिन्तामणि तथा कुछ पदों का उल्लेख किया किन्तु उन्होंने हनुमान-स्तुति सम्बन्धी पद को छोड़कर शेष को स्वामी जी की रचना स्वीकार नहीं किया। डॉ० रामकुमार वर्मा ने रामरक्षा का उल्लेख करते हुए उसे अप्रामाणिक माना।[1] डा० बड़थ्वाल ने उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त सिद्धान्त पटल का उल्लेख किया था और इन रचनाओं को स्वामी जी की ही कृतियाँ माना।[2] प० बलदेव उपाध्याय ने स्वामी रामानन्द के नाम से मिली तीन नयी रचनाओं की सूचना दी। वे हैं—राममन्त्र योग ग्रन्थ, राम अष्टक और ज्ञान लीला।[3] इसी प्रकार डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने रामानन्द आरती की सूचना दी।[4] इधर स्वामी रामानन्द तथा उनके सम्प्रदाय के सम्बन्ध में डॉ० बदरी नारायण श्रीवास्तव ने अध्ययन प्रस्तुत किया है।[5] उन्होंने स्वामी रामानन्द के नाम से मिलने वाली रचनाओं पर विस्तारपूर्वक विचार किया है तथा उनकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त किया है। संवत् २०१२ में नागरी प्रचारिणी सभा से 'रामानन्द की हिन्दी रचनाएं' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया गया। इस ग्रन्थ में डॉ० बड़थ्वाल द्वारा प्राप्त सामग्री से संकलित रचनाएं रक्खी गयी हैं। कुछ रचनाएं सभा संग्रहालय तथा पंडित उदयशंकर शास्त्री के संग्रह से संकलित की गयी हैं। इस प्रकार रामानन्द के नाम से मिलनेवाली रचनाओं का यह प्रथम संग्रह है। इन सब ग्रन्थों में स्वामी रामानन्द के नाम से अब तक मिली रचनाएँ इस प्रकार हैं—

१ रामरक्षा २ योग चिन्तामणि ३ ज्ञान तिलक ४ सिद्धान्त पटल
५ ज्ञानलीला ६ आत्मबोध ७ मानसी सेवा ८ भगति जोग ग्रन्थ
९ वेदान्त विचार १० रामानन्द आरती ११ रामअष्टक
१२ राममंत्र जोग ग्रन्थ तथा १५ पद।

१—आचार्य शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ११-१२।
२—डॉ० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।
३—डॉ० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० ५१।
४—प० बलदेव उपाध्याय : भागवत सम्प्रदाय, पृ० २७०-२८४।
५—डॉ० माताप्रसाद गुप्त : हिन्दी पुस्तक साहित्य, पृ० २४१।
६—डॉ० बदरी नारायण श्रीवास्तव : रामानन्द सम्प्रदाय, पृ० ९९-१५४।

इन रचनाओं के सम्बन्ध में विद्वानों में भिन्न भिन्न मत प्रकट किए हैं। अधिकांश विद्वानों ने अप्रामाणिक माना है। स्वामी रामानन्द के नाम से मिलने वाली रचनाओं का सम्प्रदाय में बड़ा मान्य प्राप्त है जो सम्प्रदाय में मान्य और धारामावन पद्धति द्वारा प्राप्त है। इनमें से कुछ रचनाएँ सम्प्रदाय की शाखा विशेष में ही प्रचलित हैं। इन रचनाओं के सम्बन्ध में नीचे संक्षेप में विचार किया जायगा।

१ रामरक्षा—यह २८ छन्दों की एक छोटी-सी रचना है। सम्भवतः रामरक्षा का बहुत प्रचार रहा होगा। इसकी अनेक प्रतियाँ काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में मिली या जिनका उल्लेख सभा की खोज रिपोर्टों में किया गया है।[1] इसमें आरम्भ में निरंजन और गुरु की वन्दना की गई है। मध्य भाग में योग तथा योग द्वारा नाद प्राप्ति का वर्णन है। रचना स्तोत्र के रूप में पाठ के लिए निर्मित जान पड़ती है। डॉ० बड़थ्वाल के अनुसार—रामरक्षा के मन्त्र की रचना और बहुत प्रामाणिक जान पड़ता है। आचार्य शुक्ल ने ज्ञान पूर्व में स्तोत्र रामरक्षा को अप्रामाणिक माना है।[2] डा० माताप्रसाद गुप्त ने रामरक्षा को स्वामी रामानन्द कृत नहीं माना है।[3] इसमें कबीर और कमाल का नाम भी आया है। इसे रामानन्द की रचना नहीं कहा जा सकता। डा० राम कुमार वर्मा और नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों के सम्पादक मिश्र बन्धु और डा० हीरालाल जैन ने भी इसे रामानन्द कृत नहीं माना है। रामरक्षा स्तोत्र को असंदिग्ध रूप से स्वामी रामानन्द कृत नहीं कहा जा सकता अधिकांश विद्वानों का यही मत है।

२ योग चिन्तामणि—यह २३ छन्दों की रचना है। डा० बड़थ्वाल के अनुसार यह अध्यात्म ग्रंथ है जिसमें नाना भागों की समष्टि हुई है। आचार्य शुक्ल ने इसकी कुछ पंक्तियाँ विक्रम संवत् के भाई काया (गढ़) चढ़ा न जाइ आदि उद्धृत किया है और इस रचना को रामानन्द कृत नहीं माना है। इस रचना का भी विषय योग है। इसके छठवें छन्द की एक पंक्ति यह है— कहै रामानन्द सनगुरु क्या करि मिलिया सत्य का शब्द सुन भाइ। इससे यह स्पष्ट है कि यह स्वामी रामानन्द की रचना नहीं है।

१—रामानन्द की हिन्दी रचनाएं प० १७ ३२।

२—आचार्य शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास प० १२२।

—हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड प० ३ ५।

४—डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास प० ४८१।

५—खोज रिपोर्ट १९ ११ और १९१७ १९।

३ ज्ञान तिलक—यह ७४ छन्दों की रचना है। इसकी उपलब्ध खोज रिपोर्ट १९१७ ई० में किया गया है। इसका विषय योग है। यह स्वामी रामानन्द और कबीर के प्रश्नोत्तर के रूप में लिखा गया है। यह रचना स्वामी रामानन्द कृत नहीं है। इसका एक छन्द इस प्रकार है— अवरा वर माहि वकसल्या करम दाम कबीर। गुरु रामानन्द के वदन प मस्तक क्रम सरीर। स्वामी जी तुम सतगुरु हम दासा । पूछू एक सबद की भेव। करी कृपा कहो गम्य। इसी प्रकार के और भी स्थल इस रचना में मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि स्वामी रामानन्द ने नहीं बल्कि किसी और ने इसे लिखा है।

४ सिद्धान्त पटल—सिद्धान्त पटल तपसी शाखा का एक प्रमुख ग्रन्थ कहा जाता है और उसके लेखक स्वामी रामानन्द बताये गये हैं। स्वामी रामानन्द के प्रशिष्य कृष्णदास पयहारी तथा उनके शिष्य कील्हदास की परम्परा में योग का प्रवेश रामानन्द सम्प्रदाय में हुआ। इन महात्माओं के शिष्य समुदाय की एक अलग शाखा स्थापित की गयी जिसे तपसी शाखा कहा जाता है। इसमें योग मार्ग का प्रभाव अधिक है। सिद्धान्त पटल की रचना अत्यन्त निम्नकोटि की है। अतः साक्ष्य से स्वामी रामानन्द की रचना नहीं सिद्ध होती। इसमें रामानन्द को बार बार गुरु स्वामी आदि आदरसूचक शब्दों से सम्बोधित किया गया है।

५ ज्ञानलीला—यह १२ छन्दों की रचना है। इसका विषय ज्ञान और वैराग्य है। ज्ञानलीला सभा-संग्रह में सुरक्षित है। इसकी एक प्रति श्री उदय शंकर शास्त्री के संग्रह में मिली है। इसकी भाषा पंजाबी पुट लिये हुए सन्तों की भाषा जैसी है। जब तक और प्रमाण न मिल जाय इसे असन्दिग्ध रूप से स्वामी रामानन्द की रचना नहीं कहा जा सकता।

६ आत्मबोध—आत्मबोध गद्य में है। यह रचना रामानन्द और अवि नाशी की गोष्ठी के रूप में लिखी गयी है। भाषा की दृष्टि से यह बहुत परवर्ती रचना जान पड़ती है।

७ मानसी सेवा—मानसी सेवा ? छन्दों की छोटी रचना है। मन न

१—ज्ञानलीला के अन्तिम दो छन्द—

है हरि जिना कृपा रावारा चित न बिसरा सिरजनहारा।
मवन म हरि यह उवारा। निस दिन सिमरा नाम मुरारा॥१॥
नाम निरन्तर सकल पारा। रटा अपर घर द्वार उजारा।
रामानन्द य कहै समुझाई। हरि सिमरयो जमरा न जाई॥१॥

ग्रन्थ की गया किस प्रकार की जाय यह इसका विषय है। रचना साधारण है और इस स्वामी रामानन्द कृत न होकर अन्य का ग़कना।

८ भगति जाग ग्रंथ—यह १८ छन्दों की रचना है। इसमें निराकार निरंजन पूर्ण ब्रह्म की भक्ति की विधि बताया गया है। अन्तिम छन्द में रामानन्द का महत्त्व बताया गया है जिससे जान पड़ता है कि यह स्वामी रामानन्द की रचना नहीं है। —राह भगति अननि है किन्हा पार में। भाग हवा न पाइय कह रामानन्द गुरु दव।१४।

९ वेदान्त विचार—इस ग्रंथ की केवल सूचना मिली है। लक्ष्मण किला अयोध्या के पुस्तकालय की सूची में इसका उल्लेख रामानन्द के नाम से है। किन्तु रचना वहाँ उपलब्ध नहीं है।

१० रामानन्द आदर्श—डा० मातप्रसाद गुप्त ने इसकी सूचना हिन्दी पुस्तक साहित्य में रामानन्द के नाम से दी है। इसका प्रकाशन अहमदाबाद से हुआ था। किन्तु अब यह उपलब्ध नहीं है। नाम से जान पड़ता है कि उसमें रामानन्द के उपदेश संग्रहीत होंगे।

११ राम अष्टक—आठ छन्दों की यह रचना नागरी प्रचारिणी सभा के हस्तलेख संख्या ९५१ लिपिकाल संवत् १८६७ में संग्रहीत है। इसमें राम की स्तुति की गयी है। प्रत्येक छन्द के अन्त में श्री राम जी पूरन ब्रह्म है आता है। इस रचना में लंका दहन रावण मारीच वध विभीषण का राजतिलक आदि रामचरित के अंशों का संकेत है। यह अष्टक पाठ के लिए रचित जान पड़ता है। यह कदाचित् स्वामी रामानन्द कृत माना जा सकता है। किन्तु इसकी और प्राचीन प्रतियाँ मिल जाय तभी रामानन्द कृत होने के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा जा सकेगा।[1]

१—मानसी सेवा के अन्तिम दो छन्द—

जड़ पाषाण भरम की सेवा मूढ़ भटक नहीं मरना।
गगरह मर जगत बताइ तब भवसागर तिरना॥१२॥
बाहर भरम कव नहिं जाऊ अन्तर सेवा जागी।
रामानन्द रमा निरभै आणा पारब्रह्म लिव लागी॥१३॥

—राम अष्टक के कुछ छन्द—

अवधपुरी निजधाम कहा नाहट सरजू गंग है।
दसरथ नन्दन असुर गंजन श्रीराम जी पूरन ब्रह्म है।१।
संग सीता भ्रात लक्ष्मन धनुषधारी श्रीराम हैं।

१२ राममंत्र योग ग्रन्थ—यह आर्यभाषा पुस्तकालय में नवादान की खानी में सुरक्षित है। इसकी संख्या ८३२ प० २ लिपिकाल संवत् १८५५ विक्रमी। प्रस्तुत लेखक ने इसे आर्यभाषा पुस्तकालय के संग्रह में देखा है। राम नाम मंत्र की महिमा कही गई है। अन्तिम छन्द में स्वामी रामानन्द और कबीर की वन्दना भी की गयी है। यह रचना रामानन्द कृत नहीं है। डा० बड़थ्वाल ने भी इसे रामानन्द कृत नहीं माना था। अन्तिम छन्द में इसका किसी अन्य व्यक्ति की रचना होना सिद्ध हो जाता है।[1]

१ फुटकर पद—स्वामी रामानन्द के नाम से अब तक कुछ ही पद मिले हैं। सबसे पहले एक पद डा० ग्रियर्सन को मिला था। जिसमें स्वामी रामानन्द ने हनुमान की स्तुति की है। इस पद को पहले डा० श्यामसुन्दर दास के पास भेजा जो नागरी प्रचारिणी पत्रिका (भाग ४) पृ० ७ में प्रकाशित किया गया। आचार्य शुक्ल ने इस पद को प्रामाणिक माना है। इस स्तुति को डा० ग्रियर्सन डा० श्यामसुन्दर दास डा० बड़थ्वाल डा० रामकुमार वर्मा आदि सभी विद्वानों ने रामानन्द कृत माना है। इसका प्रचार भी वैरागी सम्प्रदाय तथा जन साधारण में पाया जाता है। किसी प्राचीन हस्तलेख में प्रस्तुत लेखक को इस पद की सूचना नहीं मिल सकी। इसके विषय स्वामी रामानन्द की प्रामाणिक रचनाओं से मेल में है। इस पद को स्वामी रामानन्द की रचना मानना उचित होगा।

बानकुंड नगराज कहिये श्रीराम जीव पुरन ब्रह्म है।७।
ब्रह्मा विष्णु महेश नारद आदि अठासी देवता।
इन्द्रादि सनकादि गावहीं श्रीराम जी पुरन ब्रह्म हैं।७।
राम अस्त्र कहत नागु निसि मन गावें भाग छाव।
रामानन्द अवतार अवधु श्रीराम जी पुरन ब्रह्म हैं।८।

[1]—राम मंत्र योग ग्रन्थ—
जग पाया गुरु मिलावा ऐसा धुनि में सुरति समावा।१०।
राम मंत्र एसी विधि पाज जो कोई पाज राम।
सतगुरु के परताप ते रामानन्द जो हम पाया बिसराम।२ ।
रामानन्द कबीर को मैं बलिहारी जाव।
अगम अगोचर गम नहीं तहाँ बताया गाव।२१।

२—हनुमान स्तुति—
आरति कीजै हनुमान लला की। दुष्ट दलन रघुनाथ कला की॥
जाके बल गरजे महि कांपे। रोग सोग जाके सिमा न चांपे॥

स्वामी रामानन्द का एक पद आदिग्रन्थ (संवत् १६ १) में गया है। यह पद काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित संवत् १६ के एक हस्तलिखित संग्रह में भी है (नागरी प्रचारिणी पत्र संख्या १ ८) तथा सभा में सुरक्षित एक अन्य हस्तलेख (संख्या १८ १ लिपिकाल संवत् १७७१) में स्वामी रामानन्द के नाम से दिया गया है। इस पद में वाह्य पूजा का व्यर्थ बताया गया है और अन्तस्थ ब्रह्म की उपासना पर जोर दिया गया है। इस पद को मैकालिफ ने स्वामी रामानन्द कृत माना है। बाद में डा० बड़थ्वाल तथा कुछ अन्य विद्वानों ने भी इसे रामानन्द कृत माना। ग्रन्थ साहब में संग्रहीत होने के कारण कुछ विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया कि इसमें परिवर्तन बहुत कम हुए होंगे और इसका संग्रह भी उच्च कोटि के भक्त की रचना होने के कारण ही किया गया होगा। आदि ग्रन्थ का समय संवत् १६६१ है जो स्वामी रामानन्द की मृत्यु के लगभग २० वर्ष बाद पड़ता है। इस लम्बी अवधि में एक ही नाम के रचयिताओं का अभिज्ञान

अजनी सुत महा वरदायक। साधु सन्त पर सदा सहायक॥
बाएं भुजा सब असुर संघारी। दहिनी भुजा सब सन्त उबारी॥
लछिमन धरनि में मूर्छि परयो। पैठि पताल जमकातर तोरयो॥
आनि सजीवन प्रान उबारयो। महा सबन के भुजा उपारयो॥
गाढ़ परे कपि सुमिरो तोही। होहु दयाल देहु जस मोही॥
लंका कोट समुन्दर खाई। जात पवन सुत बार न लाई॥
लंक प्रजारि असुर सब मारयो। राजा राम जिनके काज सवारयो॥
घंटा ताल झालरी बाजे। जगमग जोति अवधपुर छाजे॥
जो हनुमान जि की आरति गावे। बसि बैकुण्ठ परमपद पावे॥
लंक विधंस किया रघुराई। रामानन्द (स्वामी) आरती गाई॥
सुर नर मुनि सब करहि आरती। जै जै जै हनुमान लाल की॥

१—कहां जाइये हो घरि लागो रंग। मेरा चित न चलै मन भयो अपंग॥
जहां जाइये तहां जल पखान। पूरि रहे हरि सब समान॥
वेद समृत सब मेल्हे जोइ। उहां जाइये हरि इहां न होइ॥
एक बार मन भायो उमंग। घसि चोवा चन्दन चारि अंग॥
पूजन चाली ठाकुर ठाई। सो ब्रह्म बतायो गुर आप माहि॥
सतगुर मैं बलिहारी तोर। सकल विकल भ्रम जारे मोर॥
रामानन्द स्वामी रमत ब्रह्म। गुर के एक सबद काटै कोटि क्रम्म॥२॥
२—मैकालिफ : सिख रिलिजन खण्ड ६ पृ० १ ५।

लिया जाना असम्भव नहीं। पद में निर्गुण तत्व का वर्णन होने के कारण यह अनुमान किया गया है कि कदाचित् इस पद के रचयिता स्वामी रामानन्द से भिन्न कोई और नामभागी सन्त रामानन्द रहे होंगे। आचार्य शुक्ल ने इस पद को रामानन्द कृत नहीं माना है। इस उद्धरण से स्पष्ट है कि ग्रन्थ साहब में उद्धृत रामानन्द पद श्री वैष्णव भक्त रामानन्द के नहीं है और किसी रामानन्द के ही हो सकते हैं।[1] डा० बदरी नारायण श्रीवास्तव ने भी आचार्य शुक्ल के मत से सहमति प्रकट की है।[2] आचार्य शुक्ल का मत उचित जान पड़ता है।

रामानन्द के नाम से दो पद दादू दयाल के शिष्य रज्जबदास ने अपने सर्वंगी ग्रन्थ में दिये हैं।[3] इन पदों का विषय ज्ञान और वैराग्य है। सर्वंगी में संग्रहीत पहले पद में विषय सुख की निस्सारता वर्णित है और दूसरे में स्वामी के संग रहकर सेवक भक्त द्वारा अमृत पान की चर्चा है। यह दोनों पद भी आदि ग्रंथ में संग्रहीत पद की कोटि में रखे जाने चाहिए।

डा० बड़थ्वाल को रामानन्द के नाम से दो पद संवत् १८०७ के लिखे एक बड़े संग्रह में मिले थे। इनमें से सहज मत में चित्त बसने वाला पद पुरोहित हरि

१—आचार्य शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ११।

२—डा० बदरी नारायण श्रीवास्तव : रामानन्द सम्प्रदाय पृ० १६०।

३—हरि बिन जन्म वृथा खोयो रे।
कहा भयो अति मान बड़ाई धनमद अंधमति मायो रे।
अति उतंग तरु देखि सुहायो सैंबल कुसुम सूआ सेयो रे॥
सोई पद पुत्र कलत्र विष सम अति साम धुनि धुनि गायो रे।
सुमिरन भजन साधु की संगति अन्तरि मन मैल न धोयो रे॥
रामानन्द रतन जम त्रासें श्रीपति पद काहे न जायो रे॥३॥
सहज सरूप सब तन त्याग्यो। भगवन्त सगता एक थिर थाप्यो॥
मुक्ति अमृत आप जगायो। यो सेवग स्वामी संग रहायो॥
अमृत सुधानिधि अंत न पायो। पावन प्रान कहूँ अघायो॥
रामानन्द मिलि संग रहयो। जब लगि रस तब लगि पीवयो॥४॥

४—ज्ञान की बछ रे सगारो सब राम का नाव अधारा॥टेक॥
गढ़ चारी गढ़ पासी। गढ़ माहिं रही लपटाई॥
गढ़ रती तन माटी सोई। पाँच दुख पाव साई॥
मुलतानर राजा दाये। नाना विधि पा सब खेले।
सभी सुख रूपा सब हारे। जाया ये मूरत साई॥

नारायण जी के सं० १७४५ के संग्रह में भी है। डा० बड़थ्वाल ने इसे आधार मानकर विरक्त पद कहा है। ज्ञान-वैराग्य के इन पदों को स्वामी रामानन्द कृत मानना सन्दिग्ध है।

डा० बड़थ्वाल के अनुसार हिन्दी में रामानन्द की कम से कम एकाध रचना और होना चाहिए। उनके नाम के साथ यह अत्यन्त प्रसिद्ध उक्ति सम्बन्धित है—

जाति पांति पूछे नहिं कोइ। हरि को भजै सो हरि का होइ।

उपर्युक्त रचनाओं में से किसी में भी यह नहीं पाया जाता है। कुछ और सन्तों की रचनाओं में इसकी छाप मिलती है। दादू के शिष्य वखना ने कहा है—हरि को भजै सो हरि का होई। नीच ऊंच अंतर नहिं कोई। (वखना की वाणी पृ० १५६ ११९)। इसी प्रकार मलूकदास की भक्ति पद्धति में लिखा है—हरि को भजै सो हरि का होइ। हरि का ऊंच नीच नहिं कोइ। परन्तु जन समुदाय की स्मृति में उपरोक्त उक्ति रामानन्द के साथ इस घनिष्ठता के साथ सम्बद्ध है कि यह रामानन्द के अतिरिक्त और किसी की हो नहीं सकती। अतएव कम से कम वह रचना जिसमें यह उक्ति पाई जाती है अभी मिलने को शेष है। इस रचना के सम्बन्ध में अभी तक किसी सूत्र से सूचना नहीं मिल सकी है।

समीक्षा—रामानन्द के नाम से मिली हिन्दी रचनाओं की प्रामाणिकता विवादग्रस्त है। इनके सम्बन्ध में मुख्य कठिनाई यह है कि इनकी वर्ण्य विषय और निरूपण स्वामी रामानन्द के ज्ञात सिद्धान्त और साम्प्रदायिक मत के विरुद्ध पड़ता है। स्वामी रामानन्द के दो संस्कृत ग्रन्थ वैष्णवमताब्ज भास्कर और श्रीरामार्चन पद्धति उपलब्ध हैं और इन्हें सभी विद्वानों ने प्रामाणिक माना है। वैष्णवमताब्ज भास्कर में स्वामी रामानन्द ने अपने शिष्य सुरसुरानन्द के प्रश्नों का उत्तर देते हुए दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उन्होंने रामानुज के विशिष्टाद्वैत मत का समर्थन किया है किन्तु अपनी भक्ति पद्धति विशेष रखी है। रामानुज सम्प्रदाय में लक्ष्मी नारायण परमाराध्य हैं और रामानन्द सम्प्रदाय में सीताराम। उन्होंने रामानुज की

मैं मेरा ध्यान नसावै। तातैं आत्म समाधि न पावै॥
रामानन्द गुरु गमि गावै। तातैं भिन्न भिन्न समझावै॥५॥
सहज सुन्नमें थिति बसत। अगहि अगहि जिनि जाय अंत॥
न तहां इच्छया ओ अकार। न तहां नाभि न नालि तार॥
न तहां ब्रह्मा स्या बिसन। न तहां चौरास वेम बरन॥
न तहां दास माया मद। रामानद स्वामी रम अपड॥६॥

१—रामानन्द की हिन्दी रचनाएं पृ० ३।

अपेक्षा कर्मकाण्ड को कम महत्व दिया। रामानन्द सम्प्रदाय ने भक्ति को मोक्ष का मुख्य साधन माना और प्रपत्ति को अत्यधिक महत्व दिया। प्राणी का अपने आपको भगवान की शरण में सर्वथा छोड़ देना प्रपत्ति है। स्वामी रामानन्द राममक्ति के प्रथम आचार्य थे। उन्होंने भागवतानमान्ति भक्ति का प्रचार किया है। वैष्णवमताब्ज भास्कर में स्वामी रामानन्द ने ललित पदावली में भगवान् राम के लोक कल्याणकारी भव्य अवतार रूप की कल्पना की है। राम मंत्र राज का वे आजीवन प्रचार करते रहे। श्री रामार्चन पद्धति शुद्ध कर्मकाण्ड का ग्रन्थ है जिसमें राम के उक्त अवतारी रूप की उपासना का विशद विधान प्रस्तुत किया गया है। स्वामी रामानन्द ने प्राणि मात्र को प्रपत्ति का अधिकारी माना। सभी वर्गों के लोगों को बिना किसी भेदभाव के राममंत्र की दीक्षा दी और दास्य भक्ति को श्रेयस्कर बताया।

इन ग्रन्थों में उन्होंने भगवान राम के सगुण रूप का उत्कृष्ट वर्णन किया है। श्रीरामार्चन पद्धति में श्री वैष्णवों के कर्म निवास स्थल वाग्क्षेप भगवत्पूजनक्रम अर्चावतार का महत्व आदि के सम्बन्ध में निर्देश किया गया है। इन ग्रन्थों की भाषा प्राजल एवं प्रसादगुण सम्पन्न है। वैष्णवमताब्ज भास्कर और श्रीरामार्चन पद्धति से स्पष्ट है कि स्वामी रामानन्द सगुणरामोपासक महात्मा थे। वस्तुतः ए विश्व में भगवान् की कला की भावना करने वाले विशुद्ध वैष्णव भक्ति मार्ग के अनुयायी थे घट के भीतर रहने वाले योग मार्गी नहीं।[1] रामानन्द सम्प्रदाय भी उन्हें विशुद्ध वैष्णव भक्त मानता चला आ रहा है।

रामानन्द के नाम से मिली हिन्दी रचनाओं में भगवान राम का सगुण रूप नहीं मिलता। उनका विषय निर्गुण ब्रह्म ज्ञान और वैराग्य है। संस्कृत और हिन्दी रचनाओं में इस विरोध का समाधान करने का प्रयत्न कुछ विद्वानों ने किया है। डा० बड़थ्वाल ने लिखा है—रामानुज नवीन सिद्धान्त के नवोत्साह के साथ यश में स्नान होने के कारण अप्रतिवाद वातावरण के साथ उत्तर भारत में आये थे। उनकी कान्ति ने अधिकारों को उनके सम्मुख नत किया। बहुत से प्रसिद्ध स्थानों के लोग उनके अनुयायी हो गये। किन्तु उनके बीच रहने को वे नहीं आये थे। उनके दक्षिण चले जाने पर वे फिर अपने पूर्व भावों विचारों और पद्धतियों में मग्न हो गये। रामानन्द बाहर से रामानुज सम्प्रदाय में होते हुए भी वस्तुतः इन्हीं योगी-नाथों के उत्तराधिकारी हैं और उनमें पायी हुई सामग्री की उन्नति रामानन्द ने की। जिस समय रामानुज ने अपने वैष्णव मत का प्रचार उत्तर भारत में किया उस समय वहाँ

[1]—आचार्य शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १२०।

या जनता सिद्धा और योगियों की अपनी श्रद्धाजलि समर्पित कर रही थी। यत्र तत्र योग की सिद्धियों की धूम थी वास्तव में न सन्तों वर्न योगियों में योग साधना का प्रचार चारों ओर था।[1] डा० बड़थ्वाल के मत में स्वामी रामानन्द स्वयं हठयोग भावना से प्रभावित थे। पं० बलदेव उपाध्याय के अनुसार एक ही स्वामी रामानन्द जी ने जनता की रुचि तथा देश काल की परिस्थिति देखकर दो प्रकार की शिक्षा देने का श्लाघनीय कार्य किया। निर्गुण सम्प्रदाय के प्रवर्तक कबीरदास के गुरु होने के कारण यह बात अनुमान सिद्ध होता है कि उनकी शिक्षा में योग साधना तथा निर्गुण भक्ति की भी बात अवश्यमेव वर्तमान थी। सच तो यही जान पड़ता है कि स्वामी जी सगुण भक्ति धारा और निर्गुण भक्ति धारा—उभय भक्ति धाराओं के केन्द्र बिन्दु हैं जिनसे एक ओर तो तुलसीदास आदि रामभक्तों के द्वारा सगुण भक्ति का प्रचार भारत भूमि में हुआ तथा दूसरी ओर कबीर आदि निर्गुणिया सन्तों के द्वारा निर्गुण भक्ति का प्रचार भी जनता के बीच किया गया। तत्कालीन धार्मिक वायु मण्डल में योग साधना की विपुलता थी। अतः जनता की रुचि का ध्यान रखते हुए यदि स्वामी जी ने योग के कतिपय सिद्धान्तों को भी अपनी शिक्षा में स्थान दिया तो कुछ अनुचित नहीं जान पड़ता।[2] डा० माता प्रसाद गुप्त का अनुमान है कि रामानन्द नाम के एक से अधिक महात्मा हुए और वे कालान्तर में वैष्णवस्वामी रामानन्द से अभिन्न मान लिये गये। उन्होंने लिखा है— स्वामी रामानन्द का महत्व इस कारण है कि उन्होंने उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन का नेतृत्व किया। उनकी शिष्य परम्परा का बहुत कुछ विश्वसनीय इतिवृत्त हमें नाभादास के भक्तमाल में प्राप्त होता है। किन्तु इन शिष्यों में से किसी की रचना में राम का अवतारी रूप हमारे सामने नहीं आता। इन भक्तों में से जिन की रचनाएं हमें प्राप्त हुई हैं उनके राम निर्गुण ब्रह्म हैं। इसलिए एक सम्भावना यह भी है कि राम रक्षा स्तोत्र के रामानन्द उक्त सन्त परम्परा के प्रवर्तक रामानन्द से भिन्न रहे होंगे और कालान्तर में नाभादास के समय (संवत १६५) तक दोनों महात्माओं का व्यक्तित्व एक मान लिया गया हो।[3] हिन्दी विश्वकोष में रामानन्द नाम के दस व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है।[4] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि

१—डा० बड़थ्वाल रामानन्द की हिन्दी रचनाएं पृ० २६।
२—डा० बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय पृ० २८३।
३—डा० माता प्रसाद गुप्त हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड पृ० ३ ५।
४—हिन्दी विश्वकोष पृ० ४९ ९१।

स्वामी रामानन्द उदारचेता महात्मा थे। वे स्वयं सगुण रामोपासक थे और विशिष्टाद्वैतमतावलम्बी थे। उन्होंने जाति पाँति आदि का बन्धन तोड़कर एक उदार मतवाद का प्रवर्तन किया और अपने शिष्यों पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं लगाया। इस कारण उनके उपरान्त आगे चलकर शिष्यों प्रशिष्यों द्वारा विभिन्न रुचि और प्रतिभा के अनुसार सगुण निर्गुण नाना रूप में विकसित हुए। कतिपय अन्य विद्वानों का मत है कि स्वयं रामानन्द तो विशुद्ध वैष्णव भक्त थे किन्तु उनकी शिष्य परम्परा में परिस्थितिवश योग भावना का प्रवेश हुआ। स्वामी रामानन्द के शिष्य अनन्तानन्द और अनन्तानन्द के शिष्य कृष्णदास पयहारी थे। पयहारी जी राजपूताने के दाधीच्य ब्राह्मण थे। उन दिनों राजपूताने में नाथपंथियों का बड़ा प्रभाव था। इन्होंने नाथपंथियों को परास्त कर अपनी गद्दी स्थापित की थी। नाथपंथियों को पराजित करने के लिए इन्हें योग मार्ग का भी अभ्यास करना पड़ा होगा। इस सम्बन्ध में जनश्रुति भी मिलती है। इनके शिष्य कील्ह और अग्रदास थे। कील्ह योगाभ्यास में निष्णात थे उन्हीं को गलता गद्दी का उत्तराधिकारी बनाया गया। कील्ह के शिष्य द्वारकादास के पूर्णयोगी होने का साक्ष्य नाभादास ने दिया है— अष्टांग योग तन त्यागियो द्वारकादास जानै दुनी। योग भावना से प्रभावित इन महात्माओं की एक अलग शाखा बन गयी जिसे तपसी कहा जाने लगा। इस शाखा के अनुयायी स्वामी रामानन्द को भी पूर्ण योगी मानने लगे। विद्वानों का मत है कि बाद में इस शाखा में साम्प्रदायिक ग्रन्थों की रचना हुई जिन्हें स्वामी रामानन्द के नाम से प्रचारित किया गया। ये सभी मत तर्काश्रित हैं। स्वामी रामानन्द को हठयोग मार्ग से प्रभावित मानने के लिए कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। आचार्य शुक्ल ने उन्हें विशुद्ध वैष्णव भक्त माना है। आचार्य शुक्ल का मत समीचीन जान पड़ता है। सम्प्रदाय में भी स्वामी रामानन्द के विशुद्ध वैष्णव भक्त होने की मान्यता है। अतः स्वामी रामानन्द को विशुद्ध वैष्णव भक्त ही मानना उचित होगा और इसी आधार पर उनकी रचनाओं की समीक्षा की जानी चाहिए।

स्वामी रामानन्द के नाम से मिलने वाली अधिकांश हिन्दी रचनाएँ तपसी शाखा में प्रचलित हैं। सिद्धान्त पटल जिसमें योगमार्ग और वैष्णव धर्म का समन्वय करने का प्रयास किया गया है इस शाखा का प्रमुख साम्प्रदायिक ग्रन्थ है। इन हिन्दी रचनाओं की भाषा निम्नकोटि की है। किसी अंश तक इसका वर्तमान रूप लिपिकारों के प्रमाद के कारण विकृत हो सकता है फिर भी ये उच्च कोटि के पंडित की रचनाएँ नहीं कही जा सकतीं। स्वामी रामानन्द के संस्कृत ग्रन्थ आनन्द

१—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर पृ० १०।

हैं जो संग्रहित पदावली में निबद्ध हैं। संस्कृत और हिन्दी रचनाओं की भाषा में इतना अधिक अन्तर सम्भव नहीं हो सकता। इस आधार पर भी हम इन रचनाओं को स्वामी रामानन्द कृत नहीं मान सकते। स्वामी रामानन्द के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपने उपदेशों के लिए हिन्दी भाषा को अपनाया था और समय समय पर वे विनय और स्तुति के हिन्दी भाषा में पद भी बनाकर गाया करते थे। सम्भवतः उन्होंने हिन्दी में कुछ रचनाएं भी की होंगी। इनकी खोज करना हिन्दी सेवियों का परम कर्तव्य है। रचनाओं के सम्बन्ध में प्रामाणिक सामग्री का अभाव है। जब तक प्राचीन हस्तलेख न प्राप्त हो जाय तब तक इनके सम्बन्ध में निश्चित मत निश्चित करना कठिन है। इस समय तक जो हिन्दी रचनाएं रामानन्द के नाम से मिली हैं वे राम साहित्य के अन्तर्गत नहीं रखी जा सकतीं। केवल एक पद जिसमें उन्होंने हनुमान जी की स्तुति की है और जिसे विद्वानों ने प्रामाणिक भी माना है राम साहित्य के अन्तर्गत लिया जा सकता है।

अध्याय ५

आदि काव्य का हिन्दी रूपान्तरकार—गोस्वामी विष्णुदास

वाल्मीकि रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत—ये तीनों ग्रन्थ धार्मिक एवं साहित्यिक परम्पराओं के लिए उपजीव्य ग्रन्थ रहे हैं। इनके आधार पर परवर्ती काल में धार्मिक एवं साहित्यिक रचनाओं का विशाल परिमाण में निर्माण हुआ। ये ग्रन्थ संस्कृति के प्रतिनिधि एवं ज्ञान के भण्डार हैं। धार्मिक दृष्टि से ये सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं अतएव समाज में इनको धर्मग्रन्थों के रूप में मान्य प्रतिष्ठा मिली। देवालयों में इन ग्रन्थों के पठन पाठन की व्यवस्था रहती थी तथा व्यक्तिगत जीवन में इनका अनुष्ठान धर्मकार्य मान लिया गया था। इन ग्रन्थों के तत्कालीन भाषा में रूपान्तर प्रस्तुत करने की भी एक परम्परा पायी जाती है। कदाचित् ऐसा संस्कृत न जानने वाले लोगों के लिए पाठ एवं धर्म शिक्षा की सुविधा के लिए किया गया होगा। कृष्ण भक्ति शाखा में भागवत भाषा के रूप में अनेक ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें भागवत कथा का रूपान्तर प्रस्तुत किया गया है। महाभारत के भी रूपान्तर इसी प्रकार प्रस्तुत किये गये। आदि काव्य के आधार पर अनेक साम्प्रदायिक रामायणों की रचना की गयी जिनका समाज में बहुत प्रचार हुआ। जन साधारण के लिए वाल्मीकि रामायण के भाषा रूपान्तर प्रस्तुत किये गये। इस प्रकार के रूपान्तर विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं में मिलते हैं। तमिळ में इस प्रकार की रचना भास्कर रामायण है जो बहुत लोकप्रिय है। चौदहवीं शताब्दी में रचित यह एक उत्कृष्ट साहित्यिक कृति है। यह वाल्मीकि रामायण का संस्कृत गर्भित अनुवाद है। इसके लेखक भास्कर हैं किन्तु ग्रन्थ के कुछ अंश उनके पुत्र शिष्य आदि ने लिखे हैं। चौदहवीं शताब्दी की अन्य रचना रामचरितम् है। यह मलयालम की सर्वप्राचीन रचना है। इसके रचयिता तिरुवांकुर के राजा बताये गये हैं। रामचरितम् में वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड की कथा दी गयी है। मलयालम में पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वाल्मीकि रामायण का एक दूसरा रूपान्तर प्रस्तुत किया गया। यह कण्णश्श द्वारा रचित कण्णश्श रामायण है। इसी परम्परा में आगे चलकर राजावार केरल वर्मा ने वाल्मीकि रामायण का मलयालम रूपान्तर किया जो केरल वर्मा रामायण नाम से प्रसिद्ध है। गुजराती साहित्य में कृष्ण कथा की प्रधानता है

किन्तु गुजराती में भी आदि काव्य के स्पान्तर प्रस्तुत किए गये। इस प्रकार आदि काव्य के भाषा रूपान्तर की एक निरन्तर परम्परा भारतीय भाषाओं में मिलती है। हिन्दी में इस कोटि की प्राचीनतम उपलब्ध रचना गोस्वामी विष्णुदास द्वारा रचित भाषा वाल्मीकि रामायण है जिसका विवेचन प्रस्तुत अध्याय में किया जायगा। आगे चलकर इस परंपरा में हिन्दी के अनेक कवियों के आदिकाव्य के भाषा रूपान्तर उपलब्ध होते हैं।

विष्णुदास से हिन्दी संसार प्राय परिचित नहीं है। इनका नाम अब तक शोधकर्ताओं तक सीमित रहा है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में विष्णुदास के सम्बन्ध में उल्लेख नहीं मिलता। खोज रिपोर्टों में इनके संबंध में सूचनाएं प्रकाशित की गयी हैं। विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में विष्णुदास हिन्दी के गौरवशाली कवि हुए। भाषा और वर्णन शैली की दृष्टि से उनकी रचनाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। विष्णुदास ने जिस भाषा और कथा साहित्य का सृजन किया उसका विकास अगले दो शतकों में हिन्दी के परवर्ती महान कवियों की रचनाओं में देखा जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदास के प्राय सवा सौ वर्ष पूर्व की विष्णुदास की रचनाएं हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। हिन्दी साहित्य में विष्णुदास का गौरवपूर्ण स्थान है इनकी रचनाएं अप्रकाशित हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में लगभग ६० वर्ष पूर्व विष्णुदास के सम्बन्ध में प्रथम सूचना दी गयी। १९०६-८ की रिपोर्ट में उनकी दो रचनाएं महाभारत और स्वर्गारोहण बताया गयी। महाभारत कथा के हस्तलेख का समय १७६७ ई० और स्वर्गारोहण के हस्तलेख का समय १७७५ ई० बताया गया। महाभारत कथा में ७९ पत्र और दो हजार पाँच सौ ग्यारह श्लोक तथा स्वर्गारोहण में पन्द्रह पत्र और चार सौ अट्ठारह श्लोक बताये गये। महाभारत कथा में उल्लेख के आधार पर इसका रचना काल सं० १४९२ बताया गया। ये दोनों ग्रन्थ दतिया राजपुस्तकालय में सुरक्षित बताये गये हैं। सन १९१२-१४ की खोज रिपोर्ट में दूसरी बार सूचना प्रकाशित की गयी है जिसमें उनकी रचना रुक्मिणी मंगल की सूचना दी गयी। हस्तलेख में २४ पत्र श्लोक संख्या ३ तथा लिपिकाल १८६४ ई० बताया गया। प्रति के गोस्वामी राधाचरण वृन्दावन के पास होने की सूचना दी गयी और उसके आदि और अन्त के अंश भी उद्धृत किये गये।[2] सन १९०६-२८ की खोज रिपोर्ट में रुक्मिणी मंगल और सनेह लीला की सूचना दी

१—सभा खोज रिपोर्ट १९०६-८ पृष्ठ ९२ संख्या २४८।
२—वही सन १९१२-१४ पृष्ठ २४१ संख्या १९३।

गया।[1] इनके अंश भी उद्धृत किये गये। सन १९२९-३१ की खोज रिपोर्ट में महाभारत कथा स्वर्गारोहण और स्वर्गारोहण पर्व की सूचना दी गयी। स्वर्गारोहण और स्वर्गारोहणपर्व कदाचित एक ही ग्रंथ हैं किन्तु उनसे जो उद्धरण दिये गये हैं वे भिन्न हैं। सन १९ १ में डा० बड़थ्वाल ने रुक्मिणी मंगल की फिर सूचना दी।[2] इन सब खोजों में विष्णुदास की जिन रचनाओं का उल्लेख किया गया उनके नाम हैं—१ महाभारत कथा २ रुक्मिणी मंगल ३ स्वर्गारोहण ४ स्वर्गारोहण पर्व और ५ सनेह लीला। ये रचनाएं अप्रकाशित हैं। इनका विषय कृष्ण कथा है।

महाभारत कथा[3] में महाभारत के वृत्तांत का संक्षेप में वर्णन किया गया है। ग्रंथ का आरम्भ उपदेशात्मक छन्दों से होता है—

विनस धर्म बिपि पापडू विनस नारि गृह परवसू।
विनस राहु पन्थ पानि विनस खेल जुआरी डाई।
विनस नीच तन उपजाई विनस मूढ़ पुरान साखि।
विनस मागनो जर जु लाज विनस जूआ हाथ बिनु मारै।
विनस रोगी कुपथ जो करई, विनस रन हारे रन धरमी।
विनस राजा मंत्र जु हीनू विनस नटवु कला बिनु हीनू॥
विनस मन्दिर रावर पासा विनस काज पराइ आसा।
विनस विद्या कुमित्र पढ़ाई विनस सुन्दरि पर घर जाई॥
विनस यति गति कामी ब्याहू विनस अति लोभी नरनाहू।
विनस धन हीने जु अगारे विनस मन्दा चर जगाहू॥
विनस साधू लाहू चन्याय विनस सब करे अनभायें।
विनस तिरिया पुरिष उदासी विनसे मनहि हुये बिन हासी॥

— —

विनस विप्र बिन धर्म कर्मा विनस चौर प्रजा के ममा।
विनस पुत्र जो बाप रन्याय विनस सेवक करि मन भाय॥
विनस जन माय जिहि याजै विनस दान सब करि दाज।
इतो कपट बाट को बीज जो पड़ो बनवाग न दाज॥

१—खोज रिपोर्ट सन् १९२६-२८ पृष्ठ ७, ९६० संख्या ४९८ ६ ९।
२—वही १९३१ पृष्ठ ३७ संख्या ०६।
३—खोज सन १९२६-२१ पृ० ६५, ६, पिनहाट जिला आगरा के श्री कृष्ण चौबे की प्रति से उद्धृत।

अहंकार ते होइ अकाजू एम जाय तुम्हारा राजू।
हीनि कीनिह है निमारी जम दीन नर बन्न पमारा॥

इन पद्यों से उपन्न एव नानि के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक आदर्शों पर भी प्रकाश पड़ता है। अन्त में कवि ने परम्परागत फलश्रुति दी है तथा ग्रंथकार के रूप में अपना नाम भी दिया है—

विरपा बाढ़ भया आनन्द जो पावन समय गाव्यन्द।
हरिहर करत पाप सब गया अमरपुरी पाप सब गया॥
अविचल लोक जो उतिम धान नि चल वास पावन जान।
एकादशी सहस्र जो कर अश्वमेघ जज्ञ उत्तर॥
तारय सवत्र कर अस्नाना पढ़ चरित सुन द काना।
वरिप दिवस हरिवस पुरान गऊ कोटि विप्रन वह दान॥
जो फल मकर माघ अस्नाना जो फल पाडव सुनत पुराना।
गया क्षेत्र पिण्ड जो भर सूय पव गगाजी धर॥
पडो चरित जो मन द सुन नास पाप विष्णु कवि भन।
एक चित सुन द कान ते पाव अमरापुर थान॥
पढ़ो कथा सुन ते दान तिनको होय प्रयाग थान।
स्वर्गारोहण मन द सुन नास पाप विष्णु कवि भन॥

महाभारत कथा पर आधारित विष्णुदास की दो अन्य रचनाएं स्वर्गारोहण और स्वर्गारोहण पर्व हैं। इन दोनों रचनाओं में पाडवों के हिमालय जाने की कथा वर्णित है। दोनों ग्रन्थों में दोहा चौपाई का प्रयोग हुआ है। स्वर्गारोहण[1] में कवि गणेश स्तुति के पश्चात कथा का आरम्भ करता है—

गवरा नन्दन सुमनि द गननायक वरदान।
स्वर्गारोहण ग्रंथ का वरणा तत्व बखान।

गणपति सुमनि देह आधारा सुमिरत सिद्धि सो होइ अपारा।
भारथ भाषौ ताहि पसाई अरु सारद के लागौ पाई॥
अरु जो सहज नाथ वर लेहु स्वर्गारोहण विस्तर कहहु।
विष्णुनाम कवि विनय कराइ देहु बुद्धि जो कथा कहाई॥
रात दिवस जो भारथ सुनइ नाथ पाप विष्णु कवि भनई।
यों पाण्डव गिरि गये हेवार कही कथा गुरु वचन विचार॥

१—खोज रिपोर्ट १९२९-३१ पृ० ६५६-५७ दरियागंज जिला एटा के श्री नकलाल पटवारी की प्रति से उद्धृत।

दल कुरुवनहिं मारत कियो, कौरव मारि राज सब लियो।
जदुकुल में भय धर्म नरेसा गयो द्वार भयो प्रवेसा॥

द्वापर के अन्त होते जान और कलि के प्रवेश के उपरान्त युधिष्ठिर ने राज्य त्याग देने का निश्चय किया। उन्होंने चारों भाइयों को बुलाकर राज्य समाप्त करने को कहा किन्तु अन्त में सबने राज्य त्याग देने तथा हिमालय के लिए प्रस्थान करने का निश्चय किया—

सुनहु भ्रात यह धर्म नरेसा चार चार सुन दे उपदेसा।
अब यह राज तात तुम लेहु के भयो अनत कहै ते॥
राज काज अरु यह ससारा मैं छाड्यो यह कहै सुजाग।
धनु बाण न लेउ नगारा तिलमा क्यो जान यह गा॥
ते ते भूमि भगतु कस्वारा काट दुख्म होन सगरा।
ठाढ़ भय ते चारो भाई भीमसेन कहै सिर नाई॥
कर जग जाग विनइ सबा गयो द्वापर कलि आयो देवा।
गात हिम माहि जूझन गयऊ ...... सब द्व भयऊ॥
नारा जुद्ध न जानो जाय कलि जग देव रह्यो ठहराई।
इतने वचन सुन नरनाया पाचो बंध चल इक माया॥
नगर लोक गाव गमवाए मानत भयो न काहु को राय।
कचन पुरी सु उत्तम ठाऊ तहा बस पाण्डव को राऊ॥

स्वर्गारोहण के अन्त में कवि ने अपने नाम का उल्लेख किया है तथा माहात्म्य का वर्णन किया है।[1] माहात्म्य वर्णन महाभारत कथा तथा विष्णुनाम के जय

१—वही।

गंगाजल स्नान या मन धरै और जो अश्वमेध पुनि करै।
सहस्र सकल कर अस्नाना सो फल पाण्डव सुनत पुराना॥
कर दस हरिवंश सुनाई देहु कोटि विप्रन को गाई।
गया मध्य को पिंड भराई और फल कर आचमन कराई॥
सूर्य पुत्र कुरुक्षेत्र नहाई तारो पाप सब सम जाई।
स्वर्गारोहण मन दे सुनई नाम पाय विष्णु कवि भनई।
विन ...मान रहहि जो दाना तासो फल गंगा असनाना।
यह स्वर्गारोहण की कथा पढ़त सुनत फल पाव जथा।
पाण्डव चरित जो सुन सुनाय अन्न धन पुत्रनि फल पाव॥
स्वर्गारोहण की कथा पढ़ै सुनै जो कोई।
अष्टादशी पुराण को ताहि महाफल होइ॥

ग्रंथों से समान रूप से मिलती है। उसमें दो ग्रंथों के एक ही रचयिता को होना स्पष्ट है। स्वर्गारोहण पर्व में भी पाण्डवों के हिमालय जाने का वर्णन है। इसके अंश सभी खोज रिपोर्ट में उद्धृत किए गए हैं। उद्धृत अंशों में पाण्डवों के हिमालय के लिए प्रस्थान कुन्ती की विलाप आदि प्रसंग वर्णित है।[1] रचना में चौपाई का प्रयोग किया गया है। विष्णुदास की अन्य रचना सनेह लीला है। इस ग्रंथ में कृष्ण द्वारा उद्धव को गोपियों के लिए सन्देश देकर गोकुल भेजने की कथा है। कृष्ण ब्रज में अपनी बाललीला का स्मरण करते हैं और गोपियों के प्रेम में विह्वल हो जाते हैं। गोपियों को आश्वासन देने के लिए ज्ञान का सन्देश देकर वे उद्धव को गोकुल भेजते हैं। गोपियों की सगुण रूप में उत्कट आस्था से उद्धव प्रभावित होते हैं और लौटकर कृष्ण को ब्रज का वृत्तान्त सुनाते हैं—

तब ऊधो आय यहाँ श्रीकृष्ण चले के धाम।
पाय लागि वन्दन किया बोलत ले नाम॥
ग्वाल बाल सब गोपिका ब्रज के नाव जनाय।
तुमहाँ पाय लगत कह्यो सुनो देव ब्रह्मन्य॥
नन्द जसोदा हेत की कहिये कहा बनाय।
व जाने के तुम भने मो प कह्यो न जाय॥
व चित टारत नहीं स्याम राम की जार।
मध नामक पुरतो ग्रहै मूरति मधर विचार॥
अस गोपिन के प्रेम का महिमा कछू अनन्त।
मै पूछी पट मास लों तऊ न पायो अन्त॥
देह गेह सब छाडि के करत रूप को ध्यान।
बन को भजन विचारिये सो सब फाको मान॥

———

तब हरि ऊधो सो कह्यो हूं जानत सब अंग।
हों कहूं छाड्यो नहीं ब्रज बासिन को संग॥
ब्रज तजि अनत न जाय हों मरे तो या नेह।
भूतल भार उतारिहों धरिहों रूप अनेक। इत्यादि।

कृष्ण कथा सम्बन्धी विष्णुदास की अन्य रचना रुक्मिणी मंगल है। इस ग्रंथ में कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह की कथा वर्णित है। यह मंगल काव्य है। हिन्दी

१—खोज रिपोर्ट सन १९२९ १ प ६५७ ५८।
२—खोज रिपोर्ट सन १९२६ २८ प ७६ ।

साहित्य में विवाह प्रसंग को लेकर मंगल काव्यों की रचना की एक परम्परा मिलती है। पृथ्वीराज रासो के ४६ वें समय के विजय मंगल में यह काव्य रूप मिलता है। इस प्रसंग में संयोगिता को वधूधर्म का उपदेश दिये जाने का उल्लेख है। मंगल काव्य परम्परा के अन्तर्गत प्रथम स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में विष्णुदास की कृति रुक्मिणी मंगल उपलब्ध है। इस परम्परा के अंतर्गत आगे भी रचनाएं रहीं। कृष्ण रुक्मिणी विवाह की कथा को लेकर नरहरि भट्ट ने रुक्मिणी मंगल की रचना की। गोस्वामी तुलसीदास की इस प्रकार की रचनाएं पार्वती मंगल और जानकी मंगल हैं। पृथ्वीराज राठौड़ कृत वेलि और मीराकृत नरसी जी का माहेरा आदि रचनाएं इसी मंगलकाव्य परम्परा के अन्तर्गत रची गयी।

विष्णुदास की रचना रुक्मिणी मंगल काव्य की दृष्टि से अत्यन्त प्रौढ़ एवं सरस है। इसमें कथा दोहा में वर्णित है। रुक्मिणी मंगल का हस्तलेख (संख्या ३१८) आर्यभाषा पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसे प्रस्तुत लेखक ने देखा है। आरम्भ की पुष्पिका इस प्रकार है—श्री गणेशायनमः। अथ विष्णुदास कृत रुक्मनी मंगल लिख्यते। अन्त की पुष्पिका में लिखा है—इति श्री रुक्मणी मंगल। संपूर्ण। शुभमस्तु॥ हस्तलेख का लिपिकाल नहीं दिया गया है। खोज रिपोर्ट में रुक्मिणी मंगल के अंश उद्धृत किये गये हैं।[1] ग्रंथ के प्रारम्भ में गणेश स्तुति की गयी है—

रिधि सिधि सुख सकल विधि नवनिधि दे गुरु ज्ञान।
सकति भगति सुत पति पाइयत गनपति को धर ध्यान॥
जाके चरन प्रताप तें दुख सुख परत न दीठ।
ता गजमुख सुख करन का सरन आवरे दीठ॥
प्रथम ही गुरु के चरण वंदन गौरीपुत्र मनाइय।
आदि है विष्णु जुगादि है ब्रह्मा संकर ध्यान लगाय॥
देवा पूजन घर घर मांगत बुध जो ज्ञान दिवाइय।
तातें अति सुख होय अब आनंद मंगल गाइय॥
मारा लक्ष्मी सुरहा सरस्वती नितनी सास नवाइय।
चन्द्र सूर गाउ गंगा जमुना नितन अति सुख पाइय॥
संत महंत की पग रज ले मस्तक तिलक चढ़ाइय।
विष्णुदास प्रभुप्रिया प्रनाम का रुक्मनी मंगल गाइय।

---

[1]—खोज रिपोर्ट सन् १९२६-२८ पृ० ७ ६० सम्वापुर जिला सीतापुर के श्री गारत लाल दुबे की प्रति से उद्धृत।

स्तुति के पश्चात् कथा का आरम्भ होता है। कवि राजा भीष्म की प्रिय पुत्री रुक्मिणी और ब्रह्म के अवतार कृष्ण की कथा कहता है—

गुरु गाऊ गणपति म चरण कमल बिन लाय।
मन इच्छा पूरण करो जो हरि होय सहाय।
भीष्म नृप को नन्दिनी कृष्ण ब्रह्म अवतार।
जिनकी अस्तुति करत हौं सुन नर नार नार॥
तुछ मत मोरी थोरी सी बौराई भाषा काव्य बनाई।
राम रोम रसना जो पाऊ महिमा वरण नहिं जाई॥
सुर नर मुनिजन ध्यान धरत हैं गति तिनहू नहिं पाई।
तोरा अपरपार प्रभू को को नरि सक बनाई॥
चित समान गण गाऊ स्याम के कृपा करी जोना राई।
ना कोई सरन पर हैं रावर कीरति जग म छाई।
विष्णुदास घन जावन उनरा प्रभु जा मी प्रीति लगाई॥

विष्णुदास भक्त कवि थे। उन्होंने रुक्मिणी का चित्रण कृष्ण की दासी के रूप म किया है। त्रिभुवन स्वामी को पाकर रुक्मिणी के मन की आस पूरी हो गयी। इस मंगल काव्य का अंतिम पद द्रष्टव्य है—

विष्णु पद

मोहन महलन करत विलास।
कनक मन्दिर म केलि करत हैं और कोउ नहिं पास॥
रुक्मनि चरन मिराव पूजी मन की आस।
जो चाहो सो अम्ब पावो हरि पति देवकी सास॥
तुम बिन और न कोऊ मेरा धरणि पताल अकास।
निस दिन सुमिरन करत तिहारो सब पूरन परकास॥
घट घट व्यापक अंतरजामी त्रिभुवन स्वामी सब सुखरास।
विष्णुदास रुक्मन सनाइ जनम जनम को दास॥

इन पदों की रचना गोस्वामी विष्णुदास ने सूरदास जी से लगभग सौ वर्ष पूर्व की थी। इसकी चर्चा करते हुए डा० शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है—ब्रज भाषा म सगुण कृष्ण भक्ति का आरम्भ वल्लभाचार्य के वृन्दावन पधारने के ८० ९० साल पहले ही कवि विष्णुदास द्वारा किया जा चुका था। यह एक नया ऐतिहासिक सत्य है।[1] वैष्णव पदावली के सम्बन्ध म नागरी प्रचारिणी पत्रिका

१—डा० शिवप्रसाद सिंह सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य प १४९ ५२।

में कहा गया है—सूरदास को ब्रजभाषा का प्रथम पद्यकर्ता मानना कथमपि उपयुक्त नहीं है क्योंकि उनसे लगभग सत्तर अस्सी वर्ष पूर्व के एक कवि की ब्रजभाषा की कविता तथा पद भी उपलब्ध हुए हैं। इस कवि का नाम विष्णुदास है। इनका प्रथम परिचय तो बाबू श्याम सुन्दर दास ने १९०६-७ की हिन्दी ग्रन्थों की खोज रिपोर्ट में दिया था परन्तु इनके ऐतिहासिक महत्त्व का पता अभी चला है। वर्तमान खोज से पता चला है कि ब्रजभाषा में काव्य का आरम्भ सूरदास से लगभग एक शताब्दी पूर्व हो ही गया था। विष्णुदास की काव्य रचनाओं की सूचना हिन्दी पुस्तकों की खोज रिपोर्टों में प्रकाशित हुई है। परन्तु उनके काव्यों का ऐतिहासिक मूल्य अब आँका जाने लगा है। साहित्य की दृष्टि से इनके दो काव्य नितान्त महत्त्वपूर्ण हैं—सनेह लीला तथा रुक्मिणी मंगल। इनमें से सनेह लीला गोपी तथा उद्धव के सम्वाद के रूप में है और सूरदास के भ्रमर गीत का मूल रूप माना जा सकता है। रुक्मिणी मंगल मंगल-काव्य है जिसमें श्रीकृष्ण के साथ रुक्मिणी जी के विवाह का काव्यमय वर्णन है। इस रुक्मिणी मंगल में पद शैली के दर्शन हम मिलते हैं। ब्रजभाषा में विष्णुदास प्रथम पदकार माने जा सकते हैं।

सन् १९४१-४३ की खोज रिपोर्ट में विष्णुदास की भाषा वाल्मीकि रामायण नामक रचना की सूचना दी गयी है।[2] इस सूचना की चर्चा करते हुए डा० माता प्रसाद गुप्त ने लिखा है—उन्हें (विष्णुदास को) वाल्मीकि रामायण के किसी हिन्दी रूपांतर का कर्ता बताया गया है। विष्णुदास नाम के भक्त एक से अधिक हुए हैं। एक विष्णुदास महाभारत के एक संक्षिप्त रूपान्तर के कर्ता हैं और उनका समय संवत १४९२ विक्रमी (सन् १४३५) माना गया है। यदि वे ही वाल्मीकि रामायण के रूपांतर के भी कर्ता हों तो कुछ असम्भव नहीं है।[3]

विष्णुदास नाम के एक से अधिक भक्त हुए हैं। एक विष्णुदास स्वामी रामानन्द की शिष्य परम्परा में हुए। भक्तमाल के अनुसार कृष्णदास पयहारी के शिष्यों के तईस नामों में विष्णुदास का भी नाम है। गलतागादी की गुरु परम्परा में रामानन्द अनन्तानन्द कील्ह छीत कृष्णदास विष्णुदास नारायणदास नाम आये हैं। रसिक प्रकाश भक्तमाल में कील्ह अग्र कृष्णदास विष्णुदास नारायण दास आदि नाम आये हैं। ये विष्णुदास कदाचित रामभक्त रहे होंगे किन्तु इनकी

१—हिन्दी में वैष्णव पदावली का प्रथम रचयिता, नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६६ अंक २-४ पृ० १८८।

२—सभा खोज रिपोर्ट १९४१-४३ पृ० ७३४ संख्या २१९।

३—हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड पृ० ३०७।

रचनाओं के सम्बन्ध में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है।[1] गजराना कवि मान्ण के पुत्र विष्णुदास साल्ववा नाना [illegible] में [illegible]। उन्होंने गजराना में रामायण की रचना की थी। महाराष्ट्र में एक कवि विष्णुदास हुए जिन्होंने रामचरित सम्बन्धी काव्य रचना की था। ये गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य परम्परा में थे।[2] विष्णुदास नाम के भक्तों के सम्बन्ध में अभी [illegible] कार्य नहीं हो पाया है। किन्तु इतना निश्चित है कि कृष्ण भक्ति सम्बन्धी जिन विष्णुदास की रचना की खोज सभा की खोज रिपोर्टों में किया गया है वे एक ही कवि की रचनाएँ हैं। भाषा और वर्णन शैली की दृष्टि से भाषा वाल्मीकि रामायण भी इन्हीं विष्णुदास कवि की रचना सिद्ध होती है।

सभा की १९०५-८ की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में विष्णुदास के सम्बन्ध में विशेष विवरण नहीं प्रस्तुत किया गया है। रिपोर्ट में यह सूचना दी गयी है कि ये गोपाचल गढ़ अथवा ग्वालियर के रहने वाले थे जहाँ उन दिनों एक राजा डूंगर सिंह का राज्य था। रिपोर्ट में विष्णुदास रचित महाभारत कथा का रचना काल सन १४३५ ई० बताया गया है। ग्वालियर में डूंगर सिंह का राज्य काल संवत १४८१ से संवत १५१[illegible] विक्रमी तक माना गया है। डूंगरसिंह के पुत्र कीर्तिसिंह का राज्यकाल संवत १५१[illegible] से १५२६ विक्रमी माना गया है। ग्वालियर का नाम गोवगिरि गोपाचल गढ़ भी था। इन दोनों राजाओं के राज्यकाल में ग्वालियर विद्या एवं साहित्य का केन्द्र बन गया था इसका प्रमाण मिलता है। इनके राज्यकाल में अपभ्रंश के जैन कवि रइधू ने पद्म पुराण तथा अन्य रचनाओं का प्रणयन किया था। रइधू ने सुकौशल चरित की रचना संवत १४९६ विक्रमी में की थी और इसके पूर्व वे पद्मपुराण की रचना कर चुके थे। संवत १४९२ में डूंगर सिंह के राज्यकाल में विष्णुदास द्वारा महाभारत कथा की रचना इतिहास सम्मत सिद्ध होती है। इस प्रकार हिन्दी कवि विष्णुदास और अपभ्रंश कवि रइधू समकालीन तथा एक स्थान के निवासी सिद्ध होते हैं। विष्णुदास के सम्बन्ध में और कोई सूचना अभी तक नहीं मिली है। इनका नाम गोस्वामी विष्णुदास मिलता है।

१—भक्तमाल पृ० [illegible]४८।

[illegible]—डाक्टर बल्के रामकथा पृ० २१८।

[illegible]—नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६१ पृ० ८।

४—डा० हरिवंश कोछड़ अपभ्रंश साहित्य पृ० २४ ।

[illegible]—परमानन्द जैन शास्त्री महाकवि रइधू—वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ३९९।

सभा की सन् १९४१ ४३ की खोज रिपोर्ट म भाषा वाल्मीकि रामायण क रचयिता विष्णदास कह गय है। ग्रंथ म २१० पत्र और ६२४१ अनुष्टुप बताय गय हैं। यह ग्रंथ म्युनिसिपल म्यूजियम इलाहाबाद म सुरक्षित है। प्रस्तुत लखक ने इस हस्तलख का सग्रहालय म दखा है। इसमे २१९ पत्र है। सग्रहालय का विवरण पजिका म इस—श्री वाल्मीकि रामायण का हिन्दी छद अनुवाद—लिखा गया है और अनुवादकर्ता विष्णुदास कह गय ह। हस्तलेख क दाता का नाम आचाय राधाकृष्ण गोस्वामी महाजनी टोला प्रयाग लिखा गया है। हस्तलख क आरम्भ म कुछ पत्र भी लगे हुए है। जिनम विजयादशमी क अवसर पर पूजा का तिथियुक्त विवरण दिया गया है। इन पष्ठो म—जो जाता जन्मतिथि तरणे सेतुबध समुद्र—आदि दर्ज दिया है और फिर पूजा की तिथियाँ दी गयी हैं। प्रथम उल्लख सवत १८०७ का है। इसक बाद क्रमानुसार सवत १८३० तक विजयादशमी पूजा का उल्लेख है। यह पूजा कदाचित हस्तलेख क स्वामी के यहा सम्पन्न हुई होगी। इससे ज्ञात होता है कि इस हस्तलख का लिपि काल सवत १८०७ क पूव का है। दखन स भी हस्तलख पुराना जान पड़ता है। विजयादशमी पूजा क विवरण वाले पत्रो क पश्चात ग्रथारम्भ नही होता। इस समय हस्तलेख क आरम्भ क पत्र नही है। पाण्डुलिपि का आरम्भ २३वें पृष्ठ से होता है। जान पड़ता है कि बीस पत्र पूव हस्तलेख क आरम्भ क पत्र थ। क्योकि सन् १९४१ ४३ की सभा की खोज रिपोट म ग्रन्थ क आरम्भ क अश उद्धत किय गय हैं।

इस सग्रहालय म वाल्मीकि रामायण का एक और रूपान्तर है। सग्रहालय पजिका म इस रूपान्तर का नाम—वाल्मीकि अनुवाद रामायण—लिखा हुआ है। इसकी हस्तलेख सख्या २८४ २२९ है। इसक भी दाता आचाय राधाकृष्ण गोस्वामी हैं। कर्ता और लिपिक का नाम नही दिया गया है और लिपिकाल का भी उल्लख नही किया गया है। भाषा की दष्टि से यह परवर्ती काल की तथा किसी अन्य कवि की रचना जान पड़ता है।

विष्णुदास कृत भाषा वाल्मीकि रामायण म आदि काव्य का सक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर चौपाइयो म प्रस्तुत किया गया है। इसका प्रथम काण्ड बालकाण्ड द्वितीय काण्ड हनुकाण्ड और तृतीय काण्ड उत्तरकाण्ड कहा गया है। काण्डो क अन्तगत सग अथवा अध्याय रख गय है। पहले काण्ड म ४५ और दूसरे म ४६ सग हैं। तीसरा काण्ड अपूर्ण है। कथाक्रम वाल्मीकीय कथा क अनुसार है।

१—म्युनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद, हस्तलेख सख्या २२२।२८६।

प्रारम्भ में रामकथा की उत्पत्ति वर्णित है। तदुपरान्त प्रथम सर्ग में श्री शृंगी ऋषि का आगमन तथा राजा दशरथ का सुमंत्र द्वारा आगमन वर्णित है। दूसरे सर्ग में पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन है—

सिंगी रिषि दसरथ ले जाई। हाथ बैठ जो पूत पाई। ६।

इति श्री वाल्मीकि कृत रामायन भाषा बचन सिंगी रिषि जनम तपस्या अगस्त्य गवन बर्नो नाम प्रथम सर्ग।

दसरथ मुनि मया के वन आए गय सिंगी रिषि तन।
गोमपाद की करि मनुहारि ले आए अवधपुरी प्योमार। ७।
जनक आदि पीहमा के राउ महम अगामा रिषिहि कराउ।
अस्वमेध दसरथ अरम्भौ सिंगी रिषि आचाज भयौ। ८।

कवि ने तीसरे सर्ग में गंगावतरण, चौथे सर्ग में विश्वामित्र चरित्र और पाचवें सर्ग में विश्वामित्र यज्ञ का वर्णन किया है। बालकाण्ड के छठे सर्ग में सीता स्वयंवर तथा राम वनवास की कथा विस्तार में कहा गया है। राम लक्ष्मण और सीता वन जाते हुए तमसा के तीर पहुँचते हैं जहाँ सन्ध्या हो जाती है। राम को उनके साथ आये नगर निवासी सो जाते हैं और उस समय सुमंत्र रथ लेकर आगे निकल जाते है। सवेरा होने पर अयोध्या वासी इधर-उधर राम को ढूँढते है और उन्हें न देखकर विलाप करते हैं। राम शृंगवेरपुर पहुँचते है जहाँ निषादराज उनका स्वागत करता है और भेंट प्रस्तुत करता है।

१—भाषा वाल्मीकि रामायण—

लछिमन कुवर कर मनुहारि कोउन बहुरे पुरष का नारि।
चलत चलत निआयर आयया तमसातीर मिलाना भयो।४२७।
ठाइ ठाइ जब सूतो लाग तब बुधि उपनी रामनि जाग।
कहू सौ न जनाइ बात घरतन रथ हाक्यौ अधरात।४२८।
धारा दूर खाज तिन कायौ बहुर बन मारग हाकायौ।
जाग्या लाग बहुत दुप भयो हाहादइ राम कित गयौ।४२९।
राम लछिमन कहि करहि पुकार इत उत धावहिं बारबार।
तिनहू न काहू देख्यौ कह्यौ रथ को साज तबहि जन गह्यौ।४३ ।
बहुरि महाजन नगरी गय। राम न देख बिलप गए।
मरउनार गय बल्तार। मऊ जाय गाव के तार।४३१।
कासिल देस रघु हिंयरी तात रस न राघौ बला।
सिंगबरि नगरी सुभ ठाउ भाउ सुबस नाम गुहराउ।४ २।

लक्ष्मण और सीता के साथ राम गंगा पार कर प्रयाग पहुँचते हैं। वहाँ से भरद्वाज मुनि के आश्रम पर जाते हैं—

चौदह बरस तपा हम भए, दे उपदेस पिता पठए।
सोइ अबहि हाथ धरि भाउ रहिय जोग बताउ ठाउ।४४४।
इतनौ सुनत रिषीस्वर भने देवराज तुम करिहौ घने।
चित्रकूट तुम जोगो ठाउ चउदह बरस रहो रिषि राउ।४४५।

प्रयाग से राम सीता और लक्ष्मण चित्रकूट की ओर प्रस्थान करते हैं। विष्णुदास ने चित्रकूट गमन का कवित्वपूर्ण वर्णन किया है। भरद्वाज मुनि मार्ग दिखाकर अपने आश्रम पर लौट जाते हैं। राम यमुना के निकट पहुँचते हैं और नाविक को बुलाकर नाव पर चढ़ते हैं। यमुना पार करने के पश्चात जंगल को पार करते हुए राम चित्रकूट पहुँचे और वहाँ आश्रम बनाकर निवास करने लगे। चित्रकूट पहुँचने की कथा का वर्णन छठवें अध्याय में किया गया है।

राम वनवास का यह वर्णन आदि काव्य में अयोध्या काण्ड में आया है। इस कथा का यही रूप परवर्ती राम साहित्य में भी मिलता है। विष्णुदास ने

राम आनि तिनि आदर कीया राजु देस सबु चाहे दीया।
तिनि मनुहारि राम की करी ले अनेक विधि गजवर तुरी।४३८।
तब करि मार गंग पर गयौ उया सूर भुनसारा भयौ।
सपनें राम सुमंत्र न जाई। कह बात राघो समुझाइ।४४४।

१—वही—

चित्र कुवर तो तारय कहो रिषि बहुर मारग दिखराए।
चलत चलत जमुना पहुँचायौ ढीवर वालि नाव चढ़ि गयौ।४४६।
आपुन दोऊ चढ़े कुमार पर कपरा धरि हथियार।
अरु तिनि सीता लै चढ़ाई पल में पार पहुँच जाई।४४७।
छाडे बनघन ताल निवार पाछे लछिमन राम अगिवार।
धन्य पौहन रचै चौपास कुहुकुहु बोलै बाइन्वास।४४८।
दिन बसन नन्दनवन कूल देस अलगा दास समतूर।
दखन पौहन गिरवर पास, जन है सिवमूरति कैलास।४४९।
तरहरि मान्दकी न बहै करि आश्रम तहा रहे।
भोजन हाम करहिं मृग मारि जग बर्नहि बरन सवारि।४५०।
इतिश्री वाल्मीकि कृत रामायन भाषा वनन सौ रामजी वनवास गवन करनी चित्रकूट विराजना नाम पठमो अध्याइ।

बालकाण्ड के अंतिम छंदों में अपने नाम का उल्लेख भी किया है और फलश्रुति कही है। खोज रिपोर्ट में उल्लिखित कवि की अन्य रचनाओं में भी इस प्रकार की फलश्रुति मिलती है। बालकाण्ड के अंतिम छन्द (४५वां सर्ग) में फलश्रुति का वर्णन किया गया है।[1]

भाषा वाल्मीकि रामायण का दूसरा काण्ड हनुकाण्ड है। इसमें युद्धकाण्ड तक की कथा कही गयी है। इस काण्ड का आरम्भ इस प्रकार होता है—

श्री राम जी श्री गनेस जी श्री सरस्वती जी गुरु सहाय अथ श्री रामायन का दूसरो काण्ड श्री हनूकाण्ड लिख्यते।

इसके उपरान्त सीता की खोज हनुमान द्वारा सागर लंघन की कथा प्रारम्भ होती है—

> बाल्मीक जो कह्यो पुरान बाल कथा जो करौं बखान।
> बाल चरित थोरा मन रह्या हनू गए सु बौहन कह्या।१।
> हनू गए सु सुनहु करि ध्यान बाल लंकि आव मतान।
> रिप दरिद्र न व्याप रागु होइ न बधौ नारि वियाग।२।
> लही सुधि अंगद गह गह्या मधुर जामवत सा कह्या।
> मोसा कहौ कौन बरवीर नापि जाइ साइर कौ नीर। ।
> या साइर का वार न पार सुरनर कौन उलघन हार।
> मारे हिये भया सदेह हम सौ बड़ा अपराधि एह।४।

इस वर्णन के अन्तर्गत २८वीं चौपाई के बाद एक श्लोक दिया गया है जिसमें जामवंत हनुमान को समुद्र लंघन के लिए प्रेरित करते हैं—

१—वही

> थारी बुधि विद्या गुनहीन अहनिसि राम चरन मनलीन।
> विस्नदास कवि विनती कर स करिज भवसागर तर।१३३०।
> मनहि सुनहि जे कर उपगार दान देहि ज विनहा सार।
> तिन फल विस्नदास कवि भन कोटि असप न जाना गन।१३३१।
> देहि कोटि विप्रन को गाइ सागर सगम गगा जाइ।
> सूज पव कर कुरपत ता फल होइ सदाव्रत दत।१३३२।
> जा फल अठसठि तारथ काय सो फल राम विचार होय।
> जा फल विस्नदास कवि भन राघौ चरित कान सुन।१३३४।

इति श्री बालमीकि कृत रामायन भाषा वरनन प्रथम काण्ड बालकाण्ड सपूरन सुभमस्तु।१।

उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लंघयस्व महार्णवम्।
पराहिमवभूतानां हनुमन् या गतिस्तव।२४।

इतिश्री वाल्मीकि कृत रामाइन भाषा बंधन हनू कांड हनूमान स्तोत्र नाम प्रथमो स्वर्ग।१।

यह श्लोक वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड के सरसठवें सर्ग का अड़तीसवाँ श्लोक है जिसे कवि ने यहाँ उद्धृत किया है। विष्णुदास ने वाल्मीकि रामायण का गहन अनुशीलन किया था और अपना रूपान्तर मूलकृति के अत्यधिक निकट रखा था। इस ग्रन्थ में श्लोक यत्रतत्र इस प्रकार रखे गये हैं। उक्त श्लोक के उपरान्त हनुमान समुद्र पार कर लंका पहुँचते हैं।

हनूकांड के द्वितीय सर्ग में कवि ने लंका नगर, अशोक वाटिका में सीता, सीता-हनुमान संवाद तथा सीता मनोदशा का वर्णन किया है। साक्षात्कार होने पर पवनसुत ने सीता से कहा—

सुनि सुनि सीया पवन सुत कहैं। तो लगि राम विलपतु रहैं।
बदर गये दहौं दिसि पूरि। हीड पवत नीर दूरि।१८३।
नीलूं भूप तिनि मायी प्यास। माग निरखि तुम्हारी आस।
सीता चाहत तमी वधि। ज स पाव स मब सिधि॥
मेरो भाग पहुच्यो आइ। मैं तुम जननि रूपी माइ।
अब ह्वं है राघो सजोगु। रावन सव परिहरो सोगु॥
वृमत राम वधो लछिमना। तुम लगि ढरे गिरवर घना।
भोजन करन सोव राति। अहनिसि जननि तुम्हारी ताति॥१८६॥

सीता को आश्वस्त करने के लिए हनुमान ने राम नामांकित मुद्रिका अर्पित कर दी—

जब तह कछु न ऊतर दीया। आइपूत मन धापो कीया।
जानि अजहूँ मन न पतयाइ। हनिवत मुद्रा अर्पी धाइ।१९७।
राम नाम तहि लिख्यो सुनाई। सीता बांचे बारंबार।
आसू गरे छाय तो नैन। मूषो बात न आवै बैन।१९८।

× × ×

धन धन मुद्रा धा हनिवत। सीता सुख उपज्यो रूपत।
जोरे हाथ नवायो माथ। उपजो भयो हतु जब दीस।२०२।
धनि धनि पवन पूत बरबीर। धनि जननी जिहिं पाल्यो बीर।
सो आजा साइर को पीयो। हीय न डर रावन को कीयो।२०४।

अत म सीता ने चूडामणि उतार कर हनुमान को दिया—

मनि त्रमालिक जनक सुभाया। वना मैं थ का सायो।
धरी हाय हनिवतहि तन। बौहरि सम्म नह आपन।२८५।
मनि पाज आनन वार। विकल गया जानकी सरीर।

o o o

जौ न पत्याउ जननि मुनि धन। नि त्म म न्पौगि नन।
लछिमन राम ख थ पार। मघम्प धन बरस धार।२९०।

इति श्री बाल्मीकि कृत रामायन भाषा वनन हनवाड साता हनू सम्सौ वनन नाम दुतियो सग॥

हनूवाड म युद्धकाण्ड वा कथा वस्तु का वणन विस्तार स किया गया है। हनूवाड के अत म कवि न पुन रामचरित का महिमा का वणन किया है। विष्ण दास भक्त कवि थ। जान पडता है कि उन्होन केवल धार्मिक विषया पर हा रच नाए का था। किसा राजा आदि का प्रशसा म काइ ग्रथ नही लिखा था। छिया ओसव सग म हनूकाण्ड का अतिम अश इस प्रकार है—

> जोग जुगति मन राप ध्यान वचन बौहति दति ज दान।
> तारथ स कर जा हान तिनि को राम नाम परवान।१५५५।
> पुहमा काउ राउ न आहि स्वारथ करन विाउ जाहि।
> विस्नदास मन राघो रहे राम चरित घमलगि कहें।१५५६।
> पिता वचन सया वन पड मारयौ दसकधर बलि वड।
> सुर ततास काटि जस लया सा श्रीराम सभा का जया।१५५७।

इति श्री हनूकाड सपूरन शुभम त जयाप्रति लिप्यत दाप न दायत।

ग्रथ का तीसरा काण्ड उत्तर काण्ड है। इसम उत्तर रामचरित का वणन किया गया है। कथावस्तु आदिकाव्य क अनुसार है। यह काण्ड अपूण है। हस्तलेख म २१९ पत्र क बाद क पत्र नही ह। ९३ व छन्द क बाद ग्रथ खडित है। अतिम पत्र पर अतिम अश इस प्रकार है—

> साता सहित भयौ अभिषय पौहमी राम रघुवसी एकु।
> एकछत्र सिर राज समत पाछ बरस भोगइ बहुत।९३२।
> कुस लौकुस राज यन कर राम पिता चरन चितु धर।
> बहुत हत राम सो आहि साता सहित अजुध्या ताहि।९३३।

इसके पश्चात शेष कथा का अंश नहीं है। आदि काव्य के अनुसार सम्पूर्ण रामचरित इस ग्रन्थ म रहा होगा। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध म खोज की अपेक्षा है। देखने से सग्रहालय का हस्तलेख प्राचीन जान पड़ता है। लिपिकार ने किसी पूर्व प्रति से इसे तैयार किया था। इस ग्रन्थ की और प्रतिया मिल जाय तो इसका पाठ निर्धारण भी सम्भव हो सकेगा। तुलसी पूर्व हिन्दी राम साहित्य के अध्ययन एव मूल्याकन की दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अध्याय ६

दास्य भक्ति का पल्लवन—ईश्वरदास

विक्रम की चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दी में उत्तर भारत में स्वामी रामानन्द ने राम भक्ति का प्रचार किया था। स्वामी रामानन्द के शिष्य वर्ग ने देश के विभिन्न भागों में गद्दियां स्थापित कर रामभक्ति का प्रचार क्षेत्र व्यापक बनाया। स्वामी रामानन्द तथा उनके शिष्य प्रशिष्य महात्माओं के प्रयास से भक्ति आन्दोलन मध्यकाल में जन आन्दोलन के रूप में परिवर्तित हो गया। समग्र भारतीय समाज को इस आन्दोलन ने प्रभावित किया। इस काल में भक्ति का अजस्र प्रवाह सुरसरि की पुनीत दिव्यधारा की भांति प्रवाहित हुआ। इस प्रवाह में स्नान समाज को अपूर्व सुख एवं शांति की उपलब्धि हो सकी। भक्ति आन्दोलन की सर्व प्रमुख विशेषता वैभवशाली भक्ति साहित्य का निर्माण है जो अद्यतनकाल तक कोटि-कोटि जनों का संबल बना हुआ है।

स्वामी रामानन्द ने दास्य भक्ति का प्रचार किया था। अनन्य भाव से आराध्य की सेवा परिचर्या पर उन्होंने बल दिया। शरणागति अथवा प्रपत्ति को स्वामी रामानन्द ने भक्ति का विशिष्ट तत्व बताया। दास्य भक्ति समाज में सर्वाधिक प्रधान हुई। दास्य भक्ति का पल्लवन आगे चलकर हिन्दी साहित्य में हुआ। स्वामी रामानन्द की मृत्यु के लगभग एक शताब्दी के उपरान्त दास्य भक्ति का हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम साक्षात्कार ईश्वरदास की रचनाओं में होता है। विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में इसी धारा में गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस तथा अपनी अन्य रचनाओं में दास्य भक्ति का सर्वोत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया।

ईश्वरदास के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल ने अब से तीन दशक पूर्व भक्ति साहित्य का सामान्य परिचय देते हुए लिखा था—शिवसिंह और विश्राम की काव्य परम्परा में यद्यपि अधिकतर आश्रयदाता राजाओं के चरितों और पौराणिक या ऐतिहासिक आख्यानों की ही प्रवृत्ति थी पर साथ ही कल्पित कहानियों की भी चलन था इसका पता लगता है। दिल्ली के बादशाह सिकन्दरशाह (संवत् १५४६ १५७४) के समय में कवि ईश्वरदास ने सत्यवती कथा नाम की एक कहानी दोहा चौपाइयों में लिखी थी। जिसका आरम्भ तो व्यास जनमेजय

के संवाद से पौराणिक ढंग पर होता है पर जो अधिकतर कल्पित स्वच्छंद और धार्मिक मार्ग पर चलने वाला है।[1] आचार्य शुक्ल ने संक्षेप में कथानक तथा रचना काल का उल्लेख भी किया है। सत्यवती साहित्य कथा के अतिरिक्त आचार्य शुक्ल ने ईश्वरदास की अन्य किसी रचना का उल्लेख नहीं किया। सत्यवती कथा सन् १९३७ में हिंदुस्तानी में प्रकाशित की गयी।[2]

ईश्वरदास की रचनाओं के सम्बन्ध में सूचनाएं नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में प्रकाशित की गयी। सन १९२३ २५ की रिपोर्ट में भरत विलाप की सूचना दी गयी।[3] विवरण संख्या १७३ पृ० ६६८ में इस रचना में ९ पत्र १३५ अनुष्टुप होने की सूचना दी गया तथा हस्तलेख का लिपि काल संवत १९०३ बताया गया। प्राप्ति स्थान सम्बन्धी सूचना के साथ रचना के आदि और अन्त के अंश भी उद्धत किये गये। सन १९२६ २८ की रिपोर्ट में स्वर्गारोहण नाम की रचना की सूचना दी गयी। रचना का आरम्भ रामप्रसाद के नाम से और अन्त ईश्वरदास के नाम से होता है। रिपोर्ट के सम्पादक ने यह मत व्यक्त किया कि इसके रचयिता कदाचित ईश्वरदास हैं। रिपोर्ट में संख्या १८५ पृ० ४६ में ग्रंथ के आदि और अंत के अंश दिये गये तथा हस्तलेख का लिपिकाल संवत १९१४ बताया गया। सन् १९४४ ४६ के प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की खोज की उन्नीसवां त्रवार्षिक विवरणिका में श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने ईश्वरदास की दो रचनाओं—भरत विलाप (संख्या २१) और अगन्पज (संख्या २३) की सूचना दी।[4] उक्त सूचना में इन रचनाओं के अंश भी प्रकाशित किये गये। सन् १९६१ में श्री उदयशंकर शास्त्री ने ईश्वरदास की रचनाओं की विस्तृत विवरण दिया और भरत विलाप अगन्पज तथा राम जन्म के हस्तलेखों के सम्बन्ध में सूचनाएं दी।[5] एक अन्य रचना एकादशी कथा भी कवि की बनायी गयी है। इन समस्त विवरणों में ईश्वरदास की रामकथा सम्बन्धी जिन तीन रचनाओं की सूचनाएं मिलती हैं वे ये हैं (१) भरत विलाप (२) अगन्पज तथा (३) रामजन्म।

१—आचार्य शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ ७३ ७४।
२—हिन्दुस्तानी भाग ७ (१९३७)।
३—सभा खोज विवरण १९२३ २५ संख्या १७३।
४—सभा खोज विवरण १९२६ २८ संख्या १८५।
५—नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५६ अंक १।
६—नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६१ अंक १।

ईश्वरदास के सम्बन्ध में विशेष सूचना उपलब्ध नहीं है। कवि ने अपनी कृति सत्यवती कथा का रचनाकाल संवत १५५८ विक्रमी दिया है जो इस प्रकार है—

> जानि एक पन्द्र के सगा पाच आतमा आगे जगा।
> भादौ मास पाप उजियारा तिथि नौमी सो मंगलवारा।
> नपत अश्विनी भेपक चन्दा पच जना सा मन्दा अनन्दा।
> *जोगिनीपुर दिल्ली बडथाना साह सिकन्दर बड सुल्ताना।*
> कठ बठ सरसुती विद्या गणपति दीह।
> ता दिन कथा अरभ यह ईसरदास कवि कीह।५।

इस उल्लेख से कवि दिल्ली के बादशाह सिकन्दर शाह का समकालीन ठहरता है। ग्रथ की रचना संवत १५५८ विक्रमी में आरम्भ की गया। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने यह मत व्यक्त किया है कि ईश्वरदास दिल्ली के ही पास जोगिनीपुर स्थान के निवासी थे। यह मत तर्कसंगत है। कवि ने अपने समय के राजा सिकन्दरशाह का केवल उल्लेख किया है। जोगिनीपुर दिल्ली का ही एक नाम है। यह मानने के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि कवि स्वयं दिल्ली का निवासी था। रचनाओं में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह अयोध्या के आस पास की ठेठ अवधी है। अयोध्या के आसपास के क्षेत्र से कवि का सम्बन्ध होना चाहिए। विश्वसनीय सूचना के अभाव में ईश्वरदास के सिकन्दरशाह के राज्यकाल (संवत १५४६ १५७४) में वर्तमान होने के अतिरिक्त और कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता।

ईश्वरदास नाम के एक से अधिक कवियों की सूचना मिलती है। १९३२ ३४ की खोज रिपोर्ट में मारवाडी हिन्दी में रचित गण हरि रस की सूचना दी गयी है।[1] इसके रचयिता गन्वी ईश्वरदास बताये गये। विवरण में कहा गया—खोज में मिली दो प्रतियों में समय नहीं दिया गया है हो सकता है कि लेखक खोज विवरण (१९२६ २८ सख्या १८५ १९२० २५ सख्या १७३) में उल्लिखित रचयिता हों पर ऐसा कहने के लिए कोई प्रमाण नहीं। राजस्थान के भक्त कवि महात्मा ईश्वरदास प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। इनकी रचनाओं में हरिरस को अच्छी ख्याति मिली जिसमें ३६१ छन्दों में अवतारों की स्तुति की गयी है।[2] इनका समय संवत १५९२ बताया गया है। ईश्वरदास नाम के अन्य कवि सत्यवती कथा

१—सभा खोज विवरण १९३२ ३३ सख्या ९१ पृ० ३८।

२—ईश्वरदास हरिरस राजस्थान रिसर्च सोसायटी कलकत्ता स० १९९५।

के रचयिता ईश्वरदास से भिन्न हैं। ईश्वरदास की अब तक मिली सभी रचनाएं अवधी में हैं।

ईश्वरदास के नाम के सम्बन्ध में भी विवाद है। श्री उदयशंकर शास्त्री ने अपने लेख में रचनाओं के हस्तलेखों में प्राप्त उल्लेखों के आधार पर कवि के नाम पर विचार किया है। किन्हीं हस्तलेखों में ग्रंथकार का नाम सूरजदास लिखा हुआ है। अपना मत व्यक्त करते हुए श्री शास्त्री ने लिखा है—"इससे यह प्रतीत होता है कि ग्रंथ का मूलकर्ता सूरजदास है न कि ईश्वरदास। यह भी हो सकता है कि इनका एक नाम हो और दूसरा उपनाम अथवा किसी लिपिकार ने भूल से ताना रूपा में एक ही नाम लिख लिया हो। अतएव जब तक कोई अन्य प्रमाण नहीं मिलते तब तक यह समस्या बनी ही है।" वास्तव में नाम के सम्बन्ध में शंका के लिए अवकाश नहीं जान पड़ता। सत्यवती कथा ईश्वरदास की रचना है यह निर्विवाद है। सत्यवती कथा में कवि ने अपना नाम ईश्वरदास लिखा है। इस रचना को ध्यान में रखने पर पता चलेगा कि इसमें कवि ने अपने नाम का उल्लेख आठ बार किया है। कवि का नाम १, २, ४, ५, ४६, ५३, ५८ दोहों में तथा पचासवें दोहे के बाद अर्धाली में 'ईश्वरदास कवि सरस विहारा' में आया है। अतएव यह स्पष्ट है कि कवि का वास्तविक नाम ईश्वरदास ही था। सम्भव है सूरजदास कवि का उपनाम रहा हो। ईश्वरदास की कृतियों का सम्पादन भी हुआ है।[1] कलकत्ते से सन १९०६ में मुद्रित भरत विलाप की एक प्रति नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में है। इसके हस्तलेखों की सूचनाएं अन्य स्थानों से भी प्राप्त हुई हैं। भरत विलाप की कुछ प्रतियों में ग्रंथकर्ता के रूप में तुलसीदास का नाम आया है। इससे यह भी अनुमान किया गया है कि भरत विलाप के रचयिता तुलसीदास थे किन्तु वे मानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास से भिन्न थे और उनके पूर्ववर्ती भी थे। सूरजदास अथवा किसी तुलसीदास के भरत विलाप के कर्ता होने के सम्बन्ध में जो मत व्यक्त किए गए हैं वे तर्कातीत हैं इसके लिए कोई ठोस आधार नहीं है। भरत विलाप को सत्यवती कथा के

१—नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६१ अंक १।

२—ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियां सं० शिवगोपाल मिश्र।

—सभा खोज विवरण १९२६-२८ तृतीय परिशिष्ट।

नाम लिए पूजहिं पाओ राम रतन मन लाय।
तुलसीदास मन सीस भक्ति पर मन जाय।

४—हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य डा० सियाराम तिवारी पृ० १००।

रचयिता ईश्वरदास को ही कृति माना जाना चाहिए। जब तक इसके विपरीत कोई पुष्ट प्रमाण न मिल जाय।

रचनाएं

सत्यवती कथा तथा भरत विलाप आदि रचनाओं के रचयिता एक ही कवि ईश्वरदास है। यह इन रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। सत्यवती कथा में सरस्वती की वन्दना की गयी है।

कण्ठ बैठ सरस्वती विद्या गणपति दीन्ह
ता दिन कथा अरंभ यह ईसरदास कवि कीन्ह।१।

इसी प्रकार भरत विलाप का आरम्भ इस भांति है—

सरसति चरण मनिाय मन मे रहुा उछाह।
रामकथा कहु भाषहु जाके गुन अवगाह।१।

सत्यवती कथा की समाप्ति इस प्रकार हुई है—

सहस्र नाम जो सुन कहत कथा फल पाउ
कहि ताथ जन कीन्हा ईसरदास कवि गाउ।५८।

भरत विलाप की अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है—

भरत विलाप कथा कीमरु ईसरदास कथा गाइ।
जो नर सुनहिं जो गावहीं जनम जनम अघ जाइ।

दोनों रचनाओं में शाब्दिक साम्य भी मिलता है—

जाम्वन्त तू चोप जह वह कथा आहि।
वनपर्व है जो व्यासा कथा सोधहु ताहि। स क ८।
चाप दल बिना तब भयऊ अन्तर वर्गि जाजन मत गयऊ।भ वि १०।
स्वर्ग उपर ब्रह्मा कर थान दस इन्द्र आगे परधान।स क ।
रामचन्द्र ठाना अयोध्याना राव नगर सकल परधाना।भ वि ।

शब्दावली की समानता के उदाहरण बताये जा सकते हैं। भाषा और वर्णन शैली के आधार पर ये रचनाएं एक ही कवि ईश्वरदास की सिद्ध होती है यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

सत्यवती कथा ईश्वरदास कृत धार्मिक आख्यान काव्य है। वनवास के समय पाण्डवों को मारकण्डेय ऋषि द्वारा सुनाई गयी सत्यवती कथा का इसमें वर्णन है। इसमें सतीत्व और पतिव्रत धर्म की महिमा का वर्णन किया गया है। इस रचना का रामकथा से सम्बन्ध नहीं है। किन्तु इसमें रामकथा का निर्देश मिलता है। सत्यवती अपनी सहेलियों के साथ सरोवर में क्रीड़ा एवं स्नान करती

हैं। ऋतुवर्ण इस एक वृक्ष पर चढ़ कर देखता है। वाणों का इसको भार होता है। इस अवसर पर उनकी उक्ति इस प्रकार है—

एक सखा दस पल्लव डारा चकित ह्वै के सबन निहारा।
एक सखी वह मोहि अस भावा रामचन्द्र जनु देखन आवा।
की ब्रह्मा हरिहर की माया की हनुमंत विभीषण आया।

ऋतुवर्ण के साथ विवाह सम्पन्न हो जाने पर सत्यवती नारायण से कहती है कि राम जिस पर प्रसन्न हों देवता लोग उस पर कृपा करते हैं—

जा वह परसन हो रघुराया देव लोग ताके कर माया।

ईश्वरदास की राम कथा सम्बन्धी रचनाएं तीन हैं—भरत विलाप, अंगद पैज और राम जन्म। भरत विलाप का नाम कई हस्तलेखों में भरत मिलाप भी मिलता है। रचना को देखने से भरत विलाप का नाम सम्भव जान पड़ता है। भरत विलाप की कई हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध हुई हैं। चार प्रतियों का हवाला श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने १९४४-४६ की खोज-रिपोर्ट में दिया है। इसमें अंगद पैज का भी उल्लेख किया गया है।[1] भरत विलाप की दो प्रतियों और राम जन्म के सम्बन्ध में सूचनाएं श्री उदयशंकर शास्त्री ने दी हैं। भरत विलाप और राम जन्म श्री शास्त्री के संग्रह में सुरक्षित हैं। उन्होंने यह भी बताया है कि मनसाराम पुस्तकालय गया में एक गुटका है जिसमें राम-जन्म और भरत विलाप रचनाएं हैं।[2]

भरत विलाप में ईश्वरदास ने राम वनगमन के उपरान्त भरत के ननिहाल से लौटने, दशरथ की अन्त्येष्टि, राम को वापस लाने के लिए भरत की चित्रकूट यात्रा तथा चरणपादुका लेकर अयोध्या लौटने की कथा का वर्णन दोहा चौपाइयों में किया गया है। रचना करुण रस से ओतप्रोत है। इसमें भरत की लाक्ष्य

१—नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४६ अंक १।

—भरत विलाप की चार प्रतियों का पता इस प्रकार है—(१) संवत १८८० की लिखी प्रति पं० गयाप्रसाद शास्त्री (ग्राम बनसाला डाकघर भदैया जिला सुल्तानपुर के पास (२) नागरी प्रचारिणी सभा काशी (याज्ञिक संग्रह) में (३) श्री दौलतराम पाण्डे ग्राम और डाकघर महिआव पुर जिला इलाहाबाद के पास (४) नागरी प्रचारिणी सभा काशी में।

—अंगद पैज का पता—पं० आनन्द त्रिपाठी, ग्राम देवनापुर डाकघर मरवारा, जिला इलाहाबाद।

२—नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६१, अंक १।

भक्ति का चित्रण किया गया है। भरत राम के अनन्य भक्त के रूप में सामने आते हैं। भरत विलाप के हस्तलेख (नम्बर २७/२।१६८२ और नं ?१७८। २ ५) लेखक ने आयभाषा पुस्तकालय में देखे हैं। इनका लिपिकाल क्रमशः संवत १८९० और १८८ विक्रमी है। श्री उदयशंकर शास्त्री ने अपने संग्रह की एक प्रति का पाठ नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित कराया है। नागरी प्रचारिणी सभा के सन १९२ २५ के खोज विवरण में संवत १९ ३ की प्रति के आदि और अंत के अंश उद्धृत किये गये हैं। साहित्यिक दृष्टि से भरत विलाप महत्वपूर्ण रचना है। दशरथ की मृत्यु के उपरांत भरत के अयोध्या लौटने तथा राम को अयोध्या लिवा लाने के लिए चित्रकूट जाने तथा चरण पादुका लेकर लौटने के करुण प्रसंग वाल्मीकि रामायण में अयोध्याकांड में ६८वें सर्ग से लेकर ११३वें सर्ग तक में वर्णित हैं। ईश्वरदास कृत भरत विलाप पर विचार करते समय गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस में कथा के कुछ अंश उद्धृत कर दिये गये हैं। जिससे हिन्दी राम साहित्य में इस कथा प्रसंग का विकास स्पष्ट हो जायगा।

भरत विलाप का आरम्भ राम वनगमन के निर्देश से होता है। रामचन्द्र वन को चले गये। अयोध्या में शोक व्याप्त हो गया नगर निवासी रुदन करने लगे। अवध उजड़ गया। दशरथ ने पुत्र शोक में प्राण त्याग दिया। केकयी ने पत्र देकर भरत को ननिहाल से बुलाने के लिए दूत भेजे। दूत शीघ्रता से चलकर भरत के पास पहुंचे—

रचि रचि कागद पत्र लिखावा। दूत हाथ दै नहर पठावा।
जाहु दूत भरत के पासा। अवधपुरी के भयौ निरासा।
चौप दूत बिलम तब भयऊ। अतरबसि जाजन सत गयऊ।
जहवा भरथ चतुरंगन रहऊ। जाइ सो दूत दडवत कीएउ।

भरत ने अनिष्ट की आशंका से चिन्ताग्रस्त होकर तुरंत अयोध्या के लिए प्रस्थान किया—

एसन मोर न मन पतिआइ अब तौ अयोध्या देपहु जाई।
आतुर चलेउ न बसन सभारा आगे पीछे न एक विचारा।
चलि चलि आए अवध प्रवेसा नही सभार पाग सिर केसा।
थपत कलपत रावत जाई पुनि कहे नगर लोग कुसलाइ।
मन उदास दरौं तब दूता मोरे मन न होइ परतीता।
वसुधा लगौं मन के हीना पसु पछी सब दूत मलीना।

अयोध्या के निकट पहुंच कर भरत ने चारो ओर सुनसान देखा। नगर के लोग मन मारे दुखी हो रहे थे। शोक संतप्त पुरजन अश्रुपात कर रहे थे—

अवध निकट जब पहुँचे आए, सुयशपाल देखा मन जाइ।
नगर के लोग सब मन मारा, अवध निरख बाट पसारा।
घर घर रोव पुरुष अरु नारी, रोइ गाइ रोवहिं पनिहारी।
बन महँ रोव पसु औ पंछी, हाहाकार रोवहिं जल मछी।
भरथहिं देखि लोग सब धाइ, कुसल भरथ पूछ मन लाए।

अयोध्या की यह दशा देखकर भरत शोकातुर हो गये। राम वनगमन की बात सुनकर वे मूर्छित हो गये। इस प्रकार वे राजमहल में कौशल्या के पास गये—

बारहिं बार मोह बस भूमि पर मुरछाइ।
छिद सुमिरि रघुनायकहिं बरनि न सकि पाई।
सुमिरि राम लछिमन दोउ भाई रोवत नयन बारि भरि लाई।
तहाँ सुमित्रा कहि बिलखाइ भरथहिं देखि बिकल उठि धाई।
भरथ सुमित्रा दोउ गले लाई पुनि गमाना जोर कराई।
कौसिल्या तब रोवति आइ भरथहिं देखि बिकल होइ धाई।

१—इस प्रसंग के वर्णन के लिए देखिए रामचरितमानस—अयोध्याकाण्ड—
सुनि सुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए।
अनरथ अवध अरंभेउ जब तें, कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें।
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना।

— — —

एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ।
गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ।।१५६।।
चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके।
हृदय सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई।
एक निमेष बरस सम जाई। एहि बिधि भरत नगर निअराई।

— — —

श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा।
खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए।
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी।
पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवँहिं जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय बिषाद मन माहिं।।१५७।।
हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी।। इत्यादि।

रावहिं भरथ बहुत विस्यार्इ पुनि कौसल्या पास बराई ।
पूछ भरथ कहा दुवौ भाई कहवा लषन कहाँ रघराइ ।
जिन देषत मोर नन जुड़ाइ पुनि कौसिल्या कहा बिस्यार्इ।

कौशिल्या ने भरत को राम के वनगमन की सूचना दी। इस पर भरत शत्रुघ्न और सब रानियाँ विलाप करने लगीं। राजमहल में शोक समुद्र उमड़ पड़ा। कौशल्या ने भरत को समझाया और सान्त्वना दी। वहाँ से भरत कैकेयी के पास पहुँचे। उन्होंने कैकेयी की भर्त्सना की—

वन्दिवि चाहू प्रवाह मन कौसल्या मन माइ ।
बहुरि चल निज मातु पह करुना वरनि न जाइ।

रावन भरथ चल पुनि ताहा वठी कैकइ मंदिर जाहा ।
भरथहिं देषि कैकइ उठि धाई कहा भरथ ठांग रहु माई।
अब ताहिं मिल्ह ककई माइ राम लषन जब लहु वताइ ।

— — —

राम लषन वन दीह पठाइ जिन देषत मोर नन जुड़ाई ।
कैकइ पापिन अजगत कीन्हा राम लषन साता बन दीन्हा ।
धिग जीवन ककई ताहारा भरतऊ जौ न हानि महतारी ।
कैकइ राज करो घर जाइ हमहु जाब वन जह रघराई ।
जहि नीती अकरम कीन्ह ते भाई सो तो भरथ वनहिं अब जाई।

१—वही अयोध्याकाण्ड—

जस को जाव जनु जग माहा जहि रघनाथ प्रान प्रिय नाहा।
भ अति अहित राम तउ ताहा को तू अहसि सत्य कहु माहा।
जो हसि सो हसि मह ममिलाइ आखि आड उठि वइहिं जाई।

राम विराधा हृदय त प्रगट कीन्ह विधि माहिं।
मो समान को पातकी बादि कहउ कछु ताहिं।१६१।

— — —

भरतहिं देखि मातु उठि धाई मुरछित अवनि परी घइआई ।
देखत भरत विकल भय भारी परे चरन तन दसा बिसारी।
मात तातु कहँ देहि दखाई कहँ सिय राम लखन दोउ भाई ।

— — —

कौसल्या के वचन सुनि भरत सहित रनिवासु ।
व्याकुल विलपत राजगृह मानहु सोक निवासु ।१६५।इत्यादि।

पिता के स्वर्गवास का समाचार पाकर भरत पुनः मूर्छित हो गये। आश्वस्त होने पर उन्होंने अन्त्येष्टि संस्कार किया, श्राद्ध कर्म किया और पिता की आत्मा की शान्ति के लिए बहुत दान पुण्य किया। दशरथ की अन्त्येष्टि का वर्णन वाल्मीकि रामायण में भी आया है जिसे ईश्वरदास ने इस प्रकार कहा है—

> लै पिता गंग नहवावा दाह कीन्ह दस करम करावा ।
> तिलांजलि दान पुण्य बहु पितु हित सब विधि कीन्ह ।
> बहुरि जाय निज मातु पहं पुनि सो सोचन कीन्ह ।।१

कैकेयी की भरत ने पुनः भर्त्सना की। गुरु वशिष्ठ का अभिवादन किया। राम को लाने के लिए भरत ने चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया। राम के दर्शन से दुखी भरत चित्रकूट की ओर चले जा रहे थे। मार्ग में राम के चरण चिह्न देख उन्होंने दण्डवत किया। चलते चलते भरत के पांव में फफोले पड़ गये—

> समुझि सो राम बाग वन सरत रोवत भरथ भए मन मगन।
> गुरु वसिष्ठ तब बोलउ जाई धीरज धरो मम नृपति भाई।
> तब उठि भरथ गहहि सिर नाई लै असीस तब गुरु समुझाइ।
> बसि राम यहं आव [illegible] तुरित मिलि जाइ।
> तब उठि भरथ जो वनहिं सिधारा जहिं वन राम रखत पगु धारा।
> रोवत कलपत सपत जाइ को सहै दुख भारी अधिकाइ ।
> कस सिधारहु श्री रघुराई, तुम रूप बिन जो मोर जाई ।
> यहि विधि ते तुम वन पगु धारा कठिन पथ पग है गुरु भारा ।
> महि पर पाव राम कर चीन्हा रोवत भरथ दण्डवत कीन्हा ।

१—तुलसी अयोध्याकाण्ड—

> एहि विधि दाहक्रिया सब कीन्ही विधिवत न्हाइ तिलांजलि दीन्हा।
> सोधि सुमृति सब बेद पुराना भरत कीन्ह दसगात विधाना ।
> जहं जस मुनिवर आयसु दीन्हा तहं तस सहस भांति सब कीन्हा।
> भए बिसुद्ध दिए सब दाना धेनु बाजि गज बाहन नाना।
> सिंहासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
> दिए भरत लहि भूमि सुर भे परिपूरन काम।।१६९।
> पितु हित भरत कीन्हि जस करनी सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी।

कहा राम लछिमन दुवो भाइ धरती मातु माहि देह बनाइ।
चलन न पाव पथ के आरा परउ दाउ तल पाएन फारा।[1]

इश्वरदास ने मार्ग में निषादराज से भेंट तथा भरत के प्रयाग पहुँचने का उल्लेख नहीं किया है। भरत चित्रकूट पहुँचते हैं। उनके साथ सेना को देख लक्ष्मण क्रुद्ध हो जाते हैं किन्तु भरत के शील का वर्णन कर राम उन्हें आश्वस्त करते हैं और भरत का प्रेमपूर्वक स्वागत करने के लिए कहते हैं। राम द्वारा भरत के शील की प्रशंसा

१—वही अयोध्याकाण्ड—

पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ।
जहँ सिय राम लखन निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए।
भरत बचन सुनि भएउ बिषादू। तुरत तहाँ लेइ गयउ निषादू।
जहँ सिंसुपा पुनीत तरु रघुबर किय बिश्रामु।
अति सनेह सादर भरत कीन्हेउ दण्ड प्रनाम।१८७।
कुस साथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई।
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई।

— — —

गवन भरत पयादेहि पाए। कोतल जाहिं संग डोरिआए।

— — —

झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओस कन जैसे।
भरत पयादेहि आए आजू। भयहु दुखित सुनि सकल समाजू।

१—वही अयोध्याकाण्ड—

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा।
भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ।   ।

— — —

लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना।
सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता।
भरत हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा।
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजियारी।
कहत भरत गुन सील सुभाऊ। पेम पयोधि मगन रघुराऊ।
सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपा निकेतु।२३१।—इत्यादि।

का वर्णन वाल्मीकि ने एक पृथक सर्ग में किया है (२९७)। रचनाकार ने इस अवसर का सुन्दर वर्णन किया है। इस प्रसंग की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

ऐसा मन करि जो आवा बन पर भरत पहं तजि धावा।
जाना भरथ पान ते आवा गात निसरि वरन मा जावा।

— — —

भरथ समान न मोर सुभाइ सत्रुघन भूपन जानौं भाइ।
रामचन्द्र कर आयसु पाइ। लछिमन गए भरथ के ठाइ।
करि प्रनाम बात मन लाए धाए भरथ अंक महं लाइ।
धाए रामहि अंक पहं लाए भरथ पर पुनि राम के पाइ।

— — —

अस कहि भरथ पर पुनि चरना उपजा प्रेम जाय नहि वरना।
रोवहि भरथ नयन नीर लाए। राम उठाइ बहुरि उर लाए।
अतिप्रिय बहुरि बचन कहि भरथ कीन्ह परचार।
समाचार सुनाय कहि बन्धुय मति साय।

भरत से पिता के निधन का समाचार सुनकर राम दुःखी हो गये। भरत ने माताओं और पुरवासियों की शोक दशा का भी वर्णन किया और राम से आग्रह किया कि वे अयोध्या लौट चलें अन्यथा सब लोग अपने प्राण गंवा देंगे। राम ने पिता के वचन को मान्य देकर वन में रहना श्रेयस्कर बताया और भरत को लौटने के लिए समझाया। भरत लौटने के लिए तैयार नहीं होते। राम ने उन्हें आश्वस्त करते हुए अवधि तक राज-काज करने को कहा। भरत ने सबके धर्म को समझा और राम की पादुका लेकर अयोध्या लौटे। वे नन्दिग्राम में तप करते हुए रहने लगे—

पिता बचन हम मानि के चौदह वरख प्रमान
तब लगि राज सभारो मोर बचन हित मान।

कीन्ह चरन अवध मुनि पाइ तबहिं भरथ रोवहि गहलाए।
बहुरि रमा बहु भांति बुझाइ। दस चार गनि कहि समुझाइ।
रामचन्द्र की आया पाइ चले भरथ चरनन सिर नाइ।
सबके धरम जानि सुख माना आए भरथ अवध असथाना।

— — —

नहिं आए लछिमन रघुराए। तब पावरी सिर लाग चढ़ाइ।
राम लखन सिय बन सुख पाइ। चरन सालमहि सब बनाइ।
हमहु रहब पुर बाहर जाइ। नन्दिग्राम भइ बावरी बनाए।
कुस विसल साथरी बनाइ। बठ आसन प्रभु मन लाइ।
॥

आगे पौआ धरि सरि नाइ। रामहिं जपत सत्य सिर नाइ।
नित प्रति पूजा ताकी करही। अवध अधार प्रान तन धरही।'

इसके पश्चात श्रुति माहात्म्य के दोहे के साथ यह रचना समाप्त हो जाती है।

राम जन्म की एक प्रति की सूचना श्री उदयशंकर शास्त्री ने अपने संग्रह के गुटके में होने की दी है। एक अन्य प्रति मन्नूलाल पुस्तकालय गया में सुरक्षित गुटके में बताया गया है। इस रचना में कवि ने श्री रामजन्म कथा का वर्णन किया है। यह प्रति प्रस्तुत लेखक को देखने को नहीं मिल सकी। अंगद पैज की सूचना श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने सभाखोज रिपोर्ट १९४४-४६ में दी है। अंगद की प्रतिज्ञा इस रचना का वर्ण्य विषय है। इस रचना में ईश्वरदास ने अपना नाम दिया है। प्रति खंडित मिली है। खोज विवरण में उद्धृत अंश इस प्रकार है—

अंगद पैज

मारा दोहइ मत्रा चाप पठवहु एक दूता।
वेगि जइ ल अवहा वलि रइक पुत्रा (वालि राइ क पूता ?)

— — —

रघुनंदन अस बोले अंगद का नहा जन (जान ?)
राम राम जग तरन इसरदास कवि भान।

१—वही अयोध्याकाण्ड—

बचु प्रबोध कीन्ह बहु भाती। बिनु अधार मनताप न साती।
भरत साल गुरु सचिव समाजू। सकुच सनेह बिवस रघुराजू।
प्रभु करि कृपा पावरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्ही।

— — —

नंदि गाव करि परन कुटीरा कीन्ह निवास धरम धुर धीरा।
जटाजूट सिर मुनि पटधारी। महि खनि कुस साथरी सवारी।
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा।

— — —

नित नव राम पेम पन पीना। बढ़त धरमदल मन न मलीना।

— — —

नित पूजत प्रभु पावरी प्रीति न हृदय समाति।
मागि मागि आयसु करत राजकाज बहु भाँति।।३२४।।

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है—[1] भरत विलाप और अंगद पैज तो एक ही ग्रन्थ के अंग जान पड़ते हैं। सम्भव है कवि ने रामचरित्र पूरा लिखा हो और ये उसी के अंग हों। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि सरस्वती की वन्दना सत्यवती कथा और भरत विलाप दोनों में की गयी है। अंगद पैज की खण्डित प्रति मिली है जिसमें यदि वह स्वतन्त्र रचना हो—मंगलाचरण के अंश प्राप्त नहीं पर विलाप वर्णन दोनों के मिलते जुलते हैं। कवि का नाम ईसरदास दोनों ग्रन्थों में दिया है। भाषा भी सबकी अवधी है। जो रचनाएँ ईसरदास की अब तक मिली हैं उनके आधार पर इस सम्बन्ध में कुछ निर्णयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि ईसरदास ने रामकथा के मार्मिक अंशों को लेकर स्वतन्त्र रचनाएँ की हों। यह भी हो सकता है कि उन्होंने पूरी रामकथा पद्यबद्ध की हो जिसके अंश प्राप्त रचनाओं में मिले हों। इस सम्बन्ध में और खोज की अपेक्षा है।

भाषा—आचार्य शुक्ल ने सत्यवती कथा की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है—पुस्तक में पाँच पाँच चौपाइयों (अर्धालियों) पर एक दोहा है। इस प्रकार ५८ दोहों पर यह समाप्त हो गया है। भाषा अयोध्या के आसपास की ठेठ अवधी है[2]। घाट (है) का प्रयोग जगह जगह है। यही अवधी भाषा और चौपाई दोहे का क्रम आगे कहानी का रूप रंग सूफी कवियों ने ग्रहण किया। चौपाई-दोहे का क्रम सत्यवती कथा में निश्चित रूप से मिलता है। किन्तु भरत विलाप की जो प्रतियाँ अब तक मिली हैं उनमें यह क्रम निश्चित नहीं है। सभा संग्रहालय के संवत् १८८० के हस्तलेख में चौपाई दोहे का क्रम है, किन्तु संवत १८९० के हस्तलेख में दोहे नहीं दिये गये हैं। श्री उदयशंकर शास्त्री ने भरत विलाप की जो प्रति नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित की है उसमें चौपाइयों की संख्या दोहों के साथ भिन्न भिन्न है। भाषा इन सभी रचनाओं की अवधी है। इन कृतियों में अयोध्या के आसपास के क्षेत्रों में बोली जाने वाली अवधी भाषा का प्रयोग किया गया है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

१—जो कछु बाद बचन हमारा। सो सब सुजन इहि समारा।
२—सो चरित्र सुनु मन लागा। ताहर कहत छूटि बैरागा।
३—की सहसी कुला आगा। अधिक रूप एकर सब चाहीं।
४—अतयन्त कष्ट कहा नहिं जाइ। मन उठ मन पर मुरछाई।

१—श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९५६ अंक १।
२—आचार्य शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ७४।

५—कहा व्याधि म चरु न पारौं।
६—एसी भाति देवत ह दुनन्न का का हा ध्यान।
७—चोप दूत विना तर भयऊ। अतरयमि जाजन मन गयऊ।
८—ककइ पापिन अजगुन का हा राम न्पन माता वन ना हा।
९—जेहि नीनी अकरम कीन त माई सा तौ भरय वर्नहि अत जान।
१०—हमन रहत पुर वाहर जाइ। नन्हि ग्राम भुइ वासरा गनाई।
११—आग पौआ सिर धरि नाइ। रामहि जपन मन्त गय पान।

रचनाआ म कतिपय स्थरा पर पूरबा प्रयाग भा मिरता न। भग्न विराग क हुरुतरुया म भाषा की कुछ भिन्नता दिखाया नता हं ता कदाचित रिपिकाग क कारण हागा। आर प्रतिया क मिरु जान पर पाठ निर्धि चत किया जा सकगा। अयाध्या क आसपास की इसा भाषा का प्रयाग आग चर कर गास्वामी तुरुमा लास न रामचरितमानस तथा अपना अय रचनाआ म किया है।

सत्यवती कथा सन् १९२७ म हिदुस्ताना म प्रकाशित का गयी था। इस रचना के साथ सम्पादक ने एक टिप्पणी दा ह— सत्यवता कथा की भाषा अवधा ह। अवघी भाषा म प्रम और वार गाथाए रिखन क रिए क्या चना गयी यह दूसरा हा प्रश्न है। गास्वामा तुरुसीदास न इस भाषा का रामायण म जा परिष्कृत रूप प्रदर्शित किया है वह शतान्दिया म वन पाया हागा। कवि ईश्वरदास की अवधा तुरुसीदास जा की अवधा स ७४ वष पूव की हे। ईश्वरदास का गिनता श्रष्ठ कविया म नहीं का जा सकती। भावा और भाषा का हानता का दष्टि स उनका तुरुना पद्मावती क रचयिता नूरमुहम्मद स हा सकता ह। इनका भाषा म छन्द शिथिलता क लिए असाधारण तार मराड करना पडता हे। भावा म कवित्व का अभाव ह। कहानी का वणन भी कुछ राचक नहा ह। साहित्य का दष्टि स सत्यवता कथा नाची श्रणा का कृति है। पर ग्रथ का महत्व इस कारण ह कि यह उस समय की अवधा भाषा का प्राय जसा का तसा नमूना उपस्थित करता ह। जहा तहा दा एक प्रयाग व्रजभाषा और भाजपुरी के हैं। पर इस प्रकार क प्रयाग जायसी और तुलसीदास म भा मिलत है। इस समुचित मूल्याकन नहा कहा जा सकता। वास्तव म ईश्वर दास का रचनाए कई दष्टिया स अत्यधिक महत्वपूण ह। इनम तत्कालीन अवधा का स्वरूप सुरक्षित है। शुद्ध साहित्यिक दष्टि स भी य कृतिया बहुमूल्य ह। इनक पाठ निधारण का समस्या अवश्य है, जिसक कारण भाषा सम्बधा कठिनाई का अनभव हाता है। रचनाआ की और प्रतिया मिल जान पर पाठ निधारित किया जा सकगा। इस समय जा हस्तलख सुलभ हैं उनक आधार पर भा पाठ निर्धारण का प्रयास किया जा सकता है। इन रचनाआ का भाषा प्रवाहपूण एव सजाव है। कथा

प्रसंगों के वर्णन प्रौढ़ एवं मार्मिक हैं। यह इन रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है।[1]

१—रचनाओं के कुछ अंश —

चल महेस तब नाद मसारा रव डमरू धरण आधारा।
चन्द्र लिलाट जटा मह गंगा परे सीस फनि सोभित अंगा।
भस्म धवल विभूति बिभेसा डाला सिंगी गहि महेसा।
भग रीछा लिय जपमाली चले तहां जहं तप कर भारी।

— — —

जहवां कन्या कर अमनाना ताहि गरवर को करे बखाना।
चारउ घाट बधाई पापाना भीतर मन्दिर का अंतर जाना।
पुरइन लागी बरन मनारा तामर मन्द बन्ठ धरिआरा।
चढ़ी बेलि तह चकरा रंगा बहुबिधि भवरा कर बिरामा।
जग के जतु जानि नहिं जाई नाना पंछि करन तहि ठाई।

— — —

राव प्यासा जहां पुकारा ठाहर भिउ राव मर भारी।
बाघ सिंह गरजा बन माहीं रासत पपा बहुत आनाही।
जनु बलर मर रासत आई रासत बानर इत्य ठाई।

— — —

चारि वप पुरनर रचन मग अपार।
गाव का नारि सबा कन्या बन्द गुमार।८२।

अहिनिसि कष्ट दुखी के अगा मग मारा तन रगा पतगा।
बाघ भालु तह बन बिरागा चहुं दिसि फरन्द बहुत सियारा।
घरप जग्घर बहे बनासा नमरन त्रिगुन ठमकु अरासा।
गरज सघन गाजि अंधियारा नदि भयावन तरम नागी।
दामिनि दमकि घन ना गाजा बाढ़ा डागत बन कर पाता।
बिनती मार बन्न गुरु तजउ ठाउ नरनाह।
बहुत कष्ट न तिहू पा कर ईसर मन माह।८६।

— — —

रवग भार ब्रह्मा कर धाना धग दव और परधाना।
रत पर अनुमति कान्ह बिचारी चर तजु अग गी कुमारी।
ब्रह्मा महिमा जग त्रिपुरारी आगा रव धर सब मारा।

रामकथा विषयक रचना करने विष्णुदास में भरत की जिस दास्य भक्ति की अभिव्यक्ति हुई है वह रामचरित मानस की पूर्व पीठिका के रूप में दिखाई देता है। मानस में इसी दास्य भक्ति का विकसित स्वरूप उपलब्ध होता है। ईश्वरदास ने कथा प्रसंगों का वर्णन संक्षेप में किया है। ये प्रसंग परवर्ती राम साहित्य में विस्तार के साथ वर्णित मिलते हैं। ईश्वरदास की रामकथा सम्बन्धी रचनाओं से इस बात का संकेत मिलता है कि भक्ति भावना से प्रभावित होकर राम साहित्य विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में किस दिशा में विकसित हो रहा था। यह संकेत भक्ति भाव भाषा छन्द आदि क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से मिलता है। हिन्दी राम साहित्य के ईश्वरदास

नारद सहित बरम्हा आये गन गंधरब सिवकन सिधाये।
चान्द सूर तारागन और और सब झार।
अंधकार कीन्ह बहु काह कथा कहौ बिचार।४८॥
(सत्यवती कथा से)

— — —

भरथ बचन सुनि केकई भई बहुत खभार।
पुत्र चला बनराज तजि त्रिथा कलंक हमार।
भरथ देखि रावहिं बिलपाई कहा केकई पुनि समुझाई।
धिग धिग तोर राज औ पाटा राम लखन बिन अवधपुर घाटा।
राम चरन बिनु लाग हमारी राज करो धिग जन्म तुमारी।
जो तुम चाहो बन भरथ सिधाई पिता सौ दाह देहु तुम जाई।
कर धरि लागन लाग उठाई काहे भरथ करो पछिताई।
तोहर रोवत सब मरि जाई उठि के भरथ तहा चलि जाई।

— — —

हम सब बांधव रहैं बन पिता गए सुरधाम।
केहि बिधि साम काम पुर राज प्रजा प्रिय काम।
कहा भरथ सुनिए रघुराई हमनहिं अवधहिं जाइब भाई।
सग रहहिं हम बिपति गवाई लखपति चरन नाथ लौ लाई॥
कहा भरथ तुम मानहिं काजा पूजहु राज अवधपुर राजा।
भाइन मह हम सवक तोहारा करि सवा पावहिं निसतारा।
भरथ बचन सुनि प्रभु सुख माना कहा भरथ तुम साध सुजाना।
दसरथ पिता भरथ अस भाई सत्य कहौ जग काउ न पाई।

गौरवास्पद रचयिता हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में उन्हें उनका उचित स्थान दिया जाना चाहिए।

घर धरि भरथहि लाइ उगाई जाहु भरथ अब मोरि लगाई।
प्रजा लोग सब बापहु जाई महता मंत्री सब बगाई। इत्यादि।

(भरत विलाप से)

अध्याय ७

भागवत भावित रामचरित—महात्मा सूरदास

पुराण साहित्य में प्राचीन इतिहास प्रस्तुत करने की विशिष्ट शैली अपनाई गई है। पञ्चलक्षण पुराणों में प्राचीन राजवंशों का वर्णन तथा उन वंशों में सम्भूत महान् पुरुषों के चरित का वर्णन मिलता है। इस क्रम के अन्तर्गत पुराणों में इक्ष्वाकुवंश तथा रामचरित का वर्णन किया गया है। पुराणों में मुकुटमणि श्रीमद्भागवत का प्रधानतम विषय श्रीकृष्ण चरित है। इस विपुलकाय महापुराण में प्राचीन राजवंशों तथा अन्य अवतारों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। भक्ति की महिमा का प्रकाशन इस महनीय उपजीव्य ग्रन्थ का विशेष प्रयोजन है। श्रीमद्भागवत से स्फूर्ति तथा प्रेरणा ग्रहण कर अवान्तरकाल में कृष्ण चरित एवं कृष्ण भक्ति सम्बन्धी विशाल साहित्य की रचना हुई। ये रचनाएं संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश हिन्दी तथा देश की अन्य भाषाओं में विभिन्न साहित्य रूपों में निबद्ध मिलती हैं। इसी क्रम में हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में कृष्ण भक्ति साहित्य में जो अपूर्व श्री सम्पन्नता तथा सरसता मिलती है वह भागवत के प्रभाव तथा प्रेरणा से ही सम्भव हो सका। कृष्ण भक्त कवियों ने श्रीमद्भागवत के आधार पर अपनी रचनाएं प्रस्तुत कीं। इस परम्परा में श्रीकृष्ण चरित के अमर गायक महात्मा सूरदास ने पीयूषनिस्यन्दिनी पदावली की रचना की। श्रीमद्भागवत में इक्ष्वाकुवंश के वर्णन के साथ रामावतार का वर्णन किया गया है। सूरदास ने भी सूरसागर में रामावतार का वर्णन किया है। सूरदास द्वारा वर्णित रामचरित प्रस्तुत परिच्छेद का विवेच्य विषय है।

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय में अवतार वर्णन के प्रसंग में राम का वर्णन करते हुए कहा गया है कि राम ने देवताओं का कार्य सम्पन्न करने की इच्छा से राजा के रूप में अवतार ग्रहण किया और समुद्र बंधन आदि वीरतापूर्ण [illegible] का। (१ [illegible] २२)। द्वितीय स्कन्ध के सातवें अध्याय में ब्रह्मा ने भगवान के लीलावतारों की कथा सुनाई है। इसके अन्तर्गत [illegible] में रामावतार का संक्षिप्त वर्णन करते हुए भागवतकार ने कहा है कि हम पर अनुग्रह करने के लिए परमात्मा के कला अंशभूत कलाओं—भरत शत्रुघ्न और लक्ष्मण के साथ इक्ष्वाकुवंश में अवतीर्ण हुए। पिता के आदेश से भार्या के साथ वन गये उनसे विरोध कर रावण

उनके हाथों मारा गया। लंका को नष्ट करने के लिए राम समुद्र तटपर पहुँचे उस समय सीता के वियोग में उनके नेत्र लाल हो रहे थे उनकी दृष्टि से ही जलजन्तु जलने लगे समुद्र ने भयभीत होकर उनको मार्ग दिया। रावण के वक्षस्थल में टकरा कर ऐरावत के दाँत चूर्ण होकर दिशाओं में फैल गये थे, जिससे दिशाएँ धवलित हो गई थीं, तब विलासमत्त रावण हँसने लगा था। वह रावण सीता को चुराकर ले गया और जब युद्ध के लिए आया तब राम के धनुष की टंकार से उसका अभिमान प्राणों के साथ तत्क्षण विलीन हो गया। २ ७ २३–२५।

श्रीमद्भागवत के नवम् स्कन्ध में इक्ष्वाकुवंश का तथा वंश के राजाओं का वर्णन किया गया है। इस स्कन्ध के अन्तर्गत श्री शुकदेव ने दसवें तथा ग्यारहवें अध्यायों में परीक्षित को श्रीरामचरित सुनाया है। इन अध्यायों में श्लोक संख्या क्रमशः १६ और ३६ है। दसवें अध्याय में देवताओं की प्रार्थना से साक्षात् भगवान ब्रह्ममय हरि के अंश रूपांशों से चार रूप धारण कर दशरथ के पुत्रों के रूप में अवतीर्ण होने के साथ रामचरित का आरम्भ होता है। चौथे श्लोक में रामकथा के प्रसंगों का निर्देश करते हुए राम की स्तुति की गयी है। अनन्तर विश्वामित्र यज्ञ, सीता स्वयंवर, धनुर्भंग, रामसीता विवाह, परशुराम गर्वखण्डन, रामवनगमन, शूर्पणखा विरूपीकरण, खरदूषण वध, सीताहरण, जटायु दाह संस्कार, सुग्रीव मैत्री, बालि वध आदि सीता की खोज प्रसंगों का वर्णन सात श्लोकों में है। समुद्र दर्शन तथा सेना के पार उतरने का वर्णन चार श्लोकों में किया गया है। समुद्र ने राम से निवेदन किया—आप सेतु बाँध दें इससे आपके यश का विस्तार होगा दिग्विजय करने वाले भूपाल जब आयेंगे तब वे आपके यश का गान करेंगे। राम रावण युद्ध सात श्लोकों में वर्णित है। रावण वध के उपरान्त राक्षसियों का विलाप रुदन आदि पाँच श्लोकों में वर्णित है। राम ने अशोक वाटिका में सीता को देखा। विभीषण को लंका का राज्य देकर सीता को विमान पर बिठाया तथा लक्ष्मण सुग्रीव और हनुमान के साथ राम ने अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में देवता उन पर पुष्प वर्षा कर रहे थे। अयोध्या पहुँचने पर भरत ने सिर पर पादुका रख कर नगर निवासियों के साथ राम का स्वागत किया। अयोध्या में राम के स्वागत, राज्याभिषेक तथा रामराज्य का वर्णन विस्तार से तेरह श्लोकों में वर्णित है। शेष लीलाओं का वर्णन करते हुए शुकदेव जी ने उत्तर रामचरित का ग्यारहवें अध्याय में वर्णन किया है। इसमें सीता निर्वासन, लवकुश जन्म, सीता का धरती में प्रवेश, रामराज्य तथा राम का परमधाम गमन वर्णित है। श्रीमद्भागवत में वर्णित यह कथा रामचरित के मुख्य प्रसंगों का निर्देश मात्र करती है तथा राम की महिमा का वर्णन करती है। श्रीमद्भागवत की योजना का अनुसरण करते हुए सूरदास जी ने भी रामचरित का वर्णन किया है।

श्रीमद्भागवत की परम्परा तथा सूर के रामचरित वर्णन की चर्चा करते हुए डा० दीनदयालु गुप्त ने लिखा है—'अष्टछाप के प्रथम चार कवियों से पहले का राम-काव्य परम्परा में केवल दो व्यक्तियों का उल्लेख हम हिन्दी साहित्य के इतिहास में मिलता है। एक भागवतदास और दूसरे भूपति कवि। कवि भागवतदास के हिन्दी में लिखे भेद भास्कर ग्रंथ के नाम के अतिरिक्त डा० रामकुमार वर्मा ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में उक्त ग्रंथ का और कोई परिचय नहीं दिया। हस्तलिखित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण भाग १ नामक पुस्तक में आचार्य डा० श्यामसुन्दर दास ने भी कवि भागवतदास के बारे में लिखा है—'इनके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।' इसलिए इस रचना के सम्बन्ध में यहाँ कुछ नहीं कहा जा सकता। भूपति का भागवत भाषा दशम स्कंध तथा रामचरित रामायण रचनाओं के सम्बन्ध में खोज रिपोर्टों की सूचनाओं तथा हस्तलेखों के आधार पर डा० गुप्त ने यह सिद्ध किया है कि इनका समय विक्रम की अठारहवीं शताब्दी (संवत् १७४४) है। डा० गुप्त ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है— इस प्रकार अष्टछाप के प्रथम चार कवियों से पहले रामकाव्य परम्परा में आने वाला कोई ग्रंथ अभी तक नहीं मिला। सूरसागर के नवम स्कंध में सूरदास द्वारा वर्णित राम चरित भागवत नवम स्कंध का अनुकरण है, राम काव्य परम्परा के किसी हिन्दी कवि का प्रभाव नहीं है। नन्ददास आदि दूसरे वर्ग के चार अष्टछाप भक्तों के समय अथवा इनके जीवन काल में ही तुलसी का रामचरित मानस आ गया था। नन्ददास के ऊपर स्वयं तुलसी दास जी के रामचरित मानस का गहरा प्रभाव पड़ा था।[1]

सूरदास का जन्म आचार्य शुक्ल ने संवत् १५४० माना है। सम्प्रदाय में मान्यता है कि सूरदास जी वल्लभाचार्य से आयु में दस दिन छोटे थे। इससे सूरदास की जन्मतिथि वैशाख शुक्ल ५ सं० १५३५ ठहरती है। इस जन्मतिथि को डा० दीनदयालु गुप्त तथा अन्य विद्वानों ने स्वीकार किया है। आचार्य शुक्ल ने इनके मृत्युकाल का अनुमान संवत् १६२० में किया है। वार्ता में निर्देश है कि सूरदास की मृत्यु गोस्वामी विट्ठलनाथ की मृत्यु से पहले हो चुकी थी। गोस्वामी विट्ठलनाथ की परलोक यात्रा संवत् १६४२ में हुई थी। इससे कितने पूर्व सूरदास ने इहलीला समाप्त की थी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। प्रायः मान्य मत यह है कि सूरदास जी की मृत्यु संवत् १६३७ में हुई थी। अस्तु सूरदास जी का समय संवत् १५३५ से संवत् १६३७ तक ठहरता है। संवत् १६०७ में सूरदास जी ने साहित्य लहरी समाप्त की थी। आचार्य शुक्ल का मत है कि

१—डा० दीनदयालु गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० २२४।

सूरदास जी ने सूरसागर की रचना के उपरान्त ही इसका निर्माण किया होगा। इससे सिद्ध होता है कि सूरदास जी सूरसागर की रचना गोस्वामी तुलसीदास की निर्विवाद रचना रामचरित मानस के बहुत पहले कर चुके थे। सूरदास की रचना के सम्बन्ध में डा० राम निरंजन पाण्डेय ने यह मत व्यक्त किया है—जन्म संवत् के आधार पर सूरदास जी गोस्वामी तुलसीदास जी से १४-१५ वर्ष आयु में बड़े थे। इस तरह तुलसीदास हिन्दी के राम कवियों में सूर का स्थान प्रायः सर्वप्रथम मान लिया जा सकता है। सूर और तुलसी एक दूसरे से प्रभावित हुए होंगे। इसमें सन्देह नहीं है कि इन सब महात्माओं में से एक भी एकांगदर्शी नहीं था। इनकी उपासना में इनके युग तक विकसित सब उपासना पद्धतियों के उपास्य तत्व मिलते हैं। इन सन्तों ने चारों तरफ से सत्य और पवित्रता का संग्रह कर लिया था तथा असत्य और अपवित्रता का परित्याग कर दिया था। इसी पद्धति के आधार पर सूर की समन्वय साधना में राम विष्णु शिव इत्यादि देवता संग्रहीत हो गये हैं। राम और विष्णु को कृष्णभक्ति शाखा में भी महत्व दिया गया है क्योंकि राम और कृष्ण दोनों विष्णु के अवतार माने गये हैं।[1]

महात्मा सूरदास ने अभेदोपासना के आधार पर राम और कृष्ण की उपासना की है। पुष्टिमार्ग के अन्यतम व्याख्याता सूरदास ने भक्तितत्व भागवत से ग्रहण किया। इन सारग्रहा एवं उदारचेता महात्मा ने ईश्वर के सगुण रूपों की समान रूप से उपासना की है। यद्यपि इन रूपों में कृष्ण को उन्होंने प्रमुखता दी किन्तु राम को उन्होंने अपने हृदय से दूर नहीं किया। अभेदोपासना का यह तत्व सूरसागर में सर्वत्र दृष्टिगत होता है। सभी प्रकार के आग्रह के अभाव की चर्चा करते हुए डा० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है— सूरदास सामान्यतः वल्लभ के पुष्टि सम्प्रदाय के कहे जाते हैं किन्तु उनमें हम वह साम्प्रदायिकता नहीं पाते जो उस सम्प्रदाय के प्रायः सभी भक्तों में मिलती है। सम्प्रदाय के और किसी प्रमुख भक्त ने रामचरित का गान नहीं किया है किन्तु सूरदास की यह अनन्य रागात्मिका रामचरित का गान करती है। तुलसीदास में भी हम बहुत कुछ यही बात पाते हैं। तुलसीदास के रामकाव्य और कृष्ण काव्य में आकार प्रकार विषयक जो अनुपात है लगभग वही अनुपात सूरदास के कृष्णकाव्य और रामकाव्य में दिखाई पड़ता है और सूरदास ने राम का गुणगान और उनकी लीलाओं का वर्णन उतनी ही तन्मयता से किया है जितना तुलसीदास ने कृष्ण की लीलाओं का किया है। इसमें सन्देह नहीं कि अपने इष्टस्वरूप के प्रति उनका

1—डा० रामनिरंजन पाण्डेय रामभक्ति शाखा, पृ० ३९६।

जितना अधिक उत्कट अनुराग है उतना अन्य स्वरूप के प्रति नहीं फिर भी उनकी पूरी श्रद्धा अन्य स्वरूपों के प्रति है। सूरदास ने रामचरित के सम्बन्ध में भी अन्तर पद रचना की दृष्टि से सुन्दर का पद है। इसलिए रामसाहित्य में सूरदास का योग उपेक्षणीय नहीं है। यही नहीं वह उल्लेखनीय भी है।[1]

सूरदास ने वल्लभाचार्य के आदेश से श्रीमद्भागवत की कथा को पदों में गान किया है। सूरसागर की रचना सूरदास ने भागवत के आधार पर की और उसी वर्णन पद्धति को अपनाया। दशमस्कन्ध में आई कथा को सूर ने विस्तार के साथ वर्णन किया है। शेष स्कन्धों की कथा थोड़े में कही है। भागवत में दिए गए अवतारों के वर्णन के आधार पर सूरदास ने भी अवतारों तथा भक्ति की प्रशंसा पर आधारित पदों की रचना की है। इसी पद्धति के अन्तर्गत रामावतार वर्णन भागवत में किया गया है और सूरसागर में इसे भी उसी रूप में सूरदास ने अपनाया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास का रामावतार वर्णन भागवत की योजना का अनुसरण है। किन्तु यह कह देना आवश्यक है कि सूरदास ने रामचरित का जो वर्णन किया है वह गेय पद शैली में स्वतन्त्र है तथा सर्वथा मौलिक है। यह सूर के रामचरित वर्णन के विवेचन से स्पष्ट हो जायगा।

रामचरित वर्णन—सूरदास ने रामजन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन किया है। पहले उन्होंने कहा है कि जय और विजय नाम के दो पार्षद विप्र शाप से असुर हो गये थे। एक को हरि ने वाराह रूप धारण कर मारा था और एक को नरसिंह रूप धारण करके संहार किया था। ये ही पार्षद रावण और कुम्भकर्ण हुए। इनके संहार के लिए भगवान् राम का अवतार अयोध्या में राजा दशरथ के यहाँ पुत्र रूप में हुआ। यह कथा राजा परीक्षित को जैसे शुकदेव ने सुनाया था उसी प्रकार इसका सूरदास वर्णन करते हैं।

बालकाण्ड रामचरित का वर्णन रामजन्म से आरम्भ होता है। जब सूर ने दिव्य दृष्टि से देख लिया कि श्यामसुजान श्रीराम ने भूभार उतारने के लिए अवतार लिया है। राजा दशरथ के आँगन में भीड़ लगी है। अयोध्यावासियों को अपार सुख हुआ है। पुत्र जन्म पर राजा दशरथ ने सर्वस्व दान कर दिया कल्पवृक्ष सम हरि के आय। याचक निहाल हो गये। रामजन्म पर अयोध्या में बधाई बजती है। स्त्रियाँ मंगलगान करती हैं सामवेद की ध्वनि होती है। राजा दशरथ वशिष्ठ से रामजन्म के समय में पूछते हैं। वशिष्ठ तिथि पर विचार कर कहते हैं कि राम का चौदह भवन में यश छायगा। रामजन्म पर राजा दशरथ के घर

१—डा० माताप्रसाद गुप्त हिन्दी साहित्य प० ६।

देश देश के राजाओं ने बधाई के टीके भेजे। रत्न-स्वर्ण मणि थारों में भर भर कर आये। घर घर मंगलाचार होने लगा। नगरनिवासी सब आनन्द में भर कर शरीर की सुध बुध भूल गये। दशरथ ने गौ हाथी दान में दिये। सूरदास आशीष देते हैं कि रामचन्द्र चिरजीवी हों।[1] रामजन्म और अयोध्या में मंगल का वर्णन सूर ने तीन पदों में किया है (९ १६ १८)। इसके उपरान्त दो पदों में राम की बालक्रीड़ा का वर्णन किया गया है। रामचन्द्र घुटनों के बल चलते हैं। दशरथ कौशल्या के सामने कनकमय आँगन में राम क्रीड़ा करते हैं। माता पिता उन्हें देख कर आत्मविभोर हो जाते हैं। रामचन्द्र अपने भाइयों के साथ बालक्रीड़ा करते हैं जिसे देख तथा तोतली बातें सुनकर लोग मगन हो जाते हैं (९ १९ २०)। गोस्वामी तुलसीदास ने कवितावली (१ १-७) तथा गीतावली (१ ७) में बाल लीला वर्णन किया है जो सूर के कृष्णलीला वर्णन के अनुसार है।

विश्वामित्र ने अयोध्या आकर यज्ञ रक्षा के लिए राम लक्ष्मण को माँगा। राम ने ताड़का को मारकर विश्वामित्र का यज्ञ कराया। तदनन्तर सीता स्वयंवर देखने जनकपुर गये। मार्ग में राम गंगा तट पर आये। वहाँ पाषाणभूता अहिल्या का चरणों से स्पर्श कर उद्धार किया। सूरदास कहते हैं कि जिनका पतित उधारन विरद है उनके लिए यह कौन काम बड़ा है (९ २१-२२)। जनकपुर में श्रीरामचन्द्र के सुन्दर रूप को देखकर सीता निमिष रहित निहारा करती है कि राम से हमारा नेह हो गया है। धनुष तोड़ना तो पिता का व्रत कठिन है और राम अभी किशोर हैं इनसे यह शिव धनुष कैसे चढ़ाया जायगा यह मुझे संशय है। सीता की चिन्ता जानकर प्रभु ने धनुष हाथ में लिया। धनुष के टूटते ही अन्य राजा उसी प्रकार छिप गये जैसे भोर में तारागण छिप जाते हैं (९ २३)। धनुषभंग का सूरदास ने सुन्दर वर्णन किया है—

१—सूरसागर—

रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर।
देस देस तें टीको आयो रतन कनक मनि हीर।
घर घर मंगल होत बधाई अति पुरवासिनि भीर।
आनँद मगन भये सब डोलत कछु न सोध सरीर।
मागध बंदी सूत लुटाये गौ-गयंद हय चीर।
देत असीस सूर चिरजीवौ रामचन्द्र रनधीर।(९-१८)

ललित गति राजत अति रघुबीर।

— — —

करुनामय जब चाप लियो कर बाँधि सुदृढ़ कटिसार।
भूभृत सास नमित जो गवनत पावक मात्यो नाग।
डोलत महि अधार भयो फनिपति कूरम अति अकुलात।
दिग्गज चलित खलित मुनि आसन इंद्रादिक भयभीत।
रवि मग तज्यो तुरग नाहिं त्यों उलटि लाग जान।
सिव विरंचि व्याकुल भए सुनि मुनि जब तोरयो भगवान।
भंजन शब्द प्रगट अति अद्भुत अष्ट दिसा नभ पूरि।
स्रवनहीन सुनि भए अष्टकुल नाग गरल भय चूरि।।[1] २६।

— — —

दशरथ जनकपुर आये। जनक मन्दिर में आकर बैठे जहाँ भाँवरियों का भार पुराया गया था। विप्रों ने वेद का उच्चार किया युवतियों ने मंगलाचार गाया। विमान पर चढ़े सुर गन्धर्व राम सीता विवाह देखकर सुखी हुए। सूरदास ने कंकण मोचन की अत्यन्त कोमल कल्पना की है। हाथ से कंकण नहीं छूटता है। राम सीता की कर स्पर्श कर मग्न हो गये। सखियाँ देख देखकर सुख लूटती हैं। स्त्रियाँ मंगलचारी गाती हैं और कहती हैं कि हे रघुपति जे पिता और भाइयों को बान कहें यह कंकण तब छूटेगा जब कौशल्या माता आयेगी। स्वर्ण थाल में पराग डाया जाता है युवतियों के बीच जए और जय जय सीना करती हैं। खेल में रामचन्द्र हार गये और सोना जीत गई। विप्रों ने स्वस्तिवाचार से राम का अभिषेक कराया। जनकपुर में अपार आनन्द फैल गया।

१—तुलसीदास गोस्वामी तुलसीदास का धनुषभंग वर्णन रामचरित मानस—
भरे भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले।
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल विकल विचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं। इत्यादि—
बालकाण्ड २६१।

२—सूरसागर
कर कर कंकन नहिं छूटै।
राम सिया कर परस मगन भए कौतुक निरखि सखी सुख लूटै।
गावत नारि गारि सब दै दै तात भ्रात की कौन चलावै।

दशरथ विदा होकर चले। जनक ने प्रभूत दायज दिया और वंदना की। मार्ग में परशुराम मिले राम ने धनुष चढ़ाया। परशुराम प्रभु का स्वरूप समझकर वन को चले गये। अयोध्या पहुँचने पर नगर के लोगों ने अपूर्व सुख का अनुभव किया। कौशल्या आदि माताओं ने आरती उतारी। इस अवसर पर सुर-नर मुनि के सुख पर सूरदास बलि जाते हैं। इस प्रकार बालकाण्ड की कथा सूरदास ने चौदह छन्दों में कहा है। रामजन्म अयोध्या में मंगल शरक्रीड़ा धनुषभंग करण मोचन आदि वर्णन सर्वथा मौलिक है। अहल्योद्धार का प्रसंग भागवत में नहीं है जिसका वर्णन सूर ने किया है।

अयोध्या काण्ड—अयोध्या काण्ड की कथा का वर्णन सूरदास ने २६ छन्दों में किया है। अपनी वृद्धावस्था का विचार कर राजा दशरथ का मन भारी है। उन्होंने निश्चय किया कि अवध का राज्य राम को सौंप कर संन्यास लेना चाहिए। इस अवसर पर कैकेयी ने उन्हें दो वरों का स्मरण कराया और कहा कि भरत का राज्याभिषेक हो तथा रामचन्द्र चौदह वर्ष के लिए वन जायँ। यह सुन कर दशरथ अत्यन्त व्याकुल हो गये कुछ कहते नहीं बना। उन्होंने कैकेयी को बहुत समझाया किन्तु उसने अपना हठ न छोड़ा। राम-लक्ष्मण-सीता का ध्यान कर दशरथ दुखी होकर रुदन करने लगे। रानियाँ तथा पुरवासी यह सुनकर शोक में डूब गये। कैकेयी ने राम से कहा कि राजा संकोच के मारे कुछ नहीं कह पा रहे हैं। उन्होंने मेरे पुत्र को राज्य और तुम्हें चौदह वर्ष का वनवास दिया है। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर राम कौशल्या के पास आज्ञा लेने गये। सुनते ही कौशल्या कातर हो उठी। दशरथ श्री राम के लिए विलाप करते हुए कहते हैं कि राम के प्रस्थान करते ही मेरे प्राण चले जायँगे। रामचन्द्र ने सीता को वन के कष्टों को समझाकर जनकपुर चले जाने को कहा। सीता ने कहा कि मैं आपके रूप को वनवास के समय देखूँगी उस समय मेरा जन्म सफल हो जायगा। मैं सकल सुख को तिलांजलि देकर वन विपिन में आपके साथ चलूँगी। राम ने लक्ष्मण से भी अयोध्या में रहने को कहा। लक्ष्मण के नेत्रों में नीर भर आये वे कुछ कह न सके और राम के चरणों में लिपट गये। अन्तर्यामी प्रभु ने प्रीति जानकर उन्हें अपने साथ ले लिया।

तब कर डारि छुए रघुपति जू जब कौसिल्या माता आई।
पुलकि अंग जल निरमल धरि आना भरि कुश जो कनक को।
मज्जन जूर सकल जुवतिन में, हार रघुपति जितो जनक को।
घर निगार अजिर गृह मगन विप्र करें अभिषेक रंगाय।
सूर अमित आनद जनकपुर, सोभा सुकृत पुरातन गाया।।१५।।

दशरथ पश्चात्ताप करते है। बार बार राम की बात चलाते हैं और कहते है कि राम-सीता-लक्ष्मण किस प्रकार वनफल का भोजन करेंगे और पैरों पर मार्ग बिना रथ अथवा पत्राण के किस प्रकार चलेंगे। इस प्रकार भाव करते हुए दशरथ विलपन लगे चारों ओर सब लोग अत्यन्त रुदन करने लगे। राम-सीता-लक्ष्मण वन की ओर चल दिये। पुरजन यह सुनकर विकल हो गये। दशरथ भी राम हा माता कहते हुए अचेत हो गए। राम सीता और लक्ष्मण के साथ केवट वन की ओर चल गये। (० ९)।

केवट प्रसंग का मार्मिक वर्णन सूरदास ने नाव पदों में किया है। ९ / ६२। लक्ष्मण केवट से नाव लाने के लिए कहते हैं। वे कहते हैं कि रामचन्द्र गंगापार उतरने के लिए खड़े हैं उधर तुमने नाव कहां छिपा दी है। केवट कहता है कि श्री रामचन्द्र की पगरज के स्पर्श से शिला स्त्री रूप में परिवर्तित हो गयी मेरी तो काठ की नाव है। इसी से मेरी जीविका चलती है अतएव चरण धोने दीजिए तब नाव पर बैठिए अथवा थाह जल का स्थान मैं निकट ही किया सकता हूं।[1]

१—सूरसागर—

नौका हौं नाहीं न लाऊं
प्रकट प्रताप चरन को देखो ताहि कहो पुनि पाऊं।
कृपासिंधु पै केवट आयो कंपत करत सो बात।
चरन परसि पाषान उड़त है कत बेरी उड़ि जात।
जो यह बहू होइ काहू की दारु स्वरूप धरै।
छूट देह जाइ सरिता तजि पग सों परस करै।
मेरी सकल जीविका याम रघुपति मुक्त न कीजै।
सूरजदास चढ़ो प्रभु पाछ रेनु पखारन दीजै।९४१।

— — —

मैं निरधन कछु वित नाहीं जाति ग्रौर गंवाऊं।
मो कुटुम्ब याही लागी एसी करि पाऊं।
मैं निधन कछु धन नहीं परिवार घनेरा।
सकल लोकहि काष्ठि के बांधौ तुम बेरा।

— — —

नर हो जथ्याह न चढ़ौ तुम्हें बताऊं।
सूरदास की विनती नाहि पहचाऊं।९४२।

केवट प्रसंग भागवत में नहीं है। वाल्मीकि रामायण में भी यह प्रसंग नहीं है। अध्यात्म रामायण मे केवट प्रसंग अहल्योद्धार के उपरान्त जनकपुर जाने के लिए गंगापार करते समय रखा गया है जिसका वर्णन बालकाण्ड के छठे सर्ग में किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस मार्मिक प्रसंग का वर्णन किया है— पात भरी सहरी सकल सुत बारे बारे केवट की जाति कछु वेद न पढ़ाइहौं अथवा एहि घाट ते थोरिक दूरि अहै कटि लौं जल थाह देखाइहौं जू आदि उक्तियाँ सुन्दर बन पड़ी हैं। रामचरित मानस में इसी भाव का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने केवट के प्रेम लपेटे अटपटे बैन का वर्णन किया है। सूरदास और तुलसीदास के वर्णनों के अनन्तर केवट प्रसंग हिन्दी साहित्य में रामचरित का मर्मस्पर्शी अंग बन गया है।

केवट प्रसंग के अनन्तर सूरदास ने पुरवधुओं के प्रश्न के नवीन प्रसंग की उद्भावना की है। वन जाते हुए पुरवधुएँ सीता से प्रश्न करती हैं। वन जाने का कारण पूछती हैं तथा राम लक्ष्मण से उनके सम्बन्ध के बारे में जिज्ञासा करती हैं। यह प्रसंग भागवत में नहीं है। वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण में भी यह प्रसंग नहीं मिलता। महानाटक में पुरवधुओं के प्रश्न का प्रसंग मिलता है (३.१५.१६) जिसमें मार्ग में घटाहिया की स्त्रियाँ सादर पूछती हैं कि हे आर्ये यह नीलकमल से समान नयनवाले तुम्हारे कौन हैं। मुख को नीचा करते हुए जानकी ने

१—अध्यात्म रामायण १ ६ २-४।

२—मागी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।
चरन कमल रज कहुँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।
छुवत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई।
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।
यहि प्रतिपालउँ सब परिवारू। नहिं जानउँ कछु और कबारू।
जौ प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू।
पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आनि दसरथ सपथ सब साची कहौं।
बरु तीर मारहु लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं। इत्यादि

—रामचरित मानस, अयोध्याकाण्ड

ल्जा से मुस्कराकर स्पष्ट उत्तर दे दिया।[1] इस मार्मिक प्रसंग में सूर का भी चित्तवृत्ति रमी है। उन्होंने इसका वर्णन तीन पदों में किया है। पुरवधुएँ माता से पूछती हैं—

सखी री कौन तिहारे जात।
राजिव नैन धनुष कर लीन्हे बदन मनोहर गात।
लज्जित होहि पुरवधू पूछत अंग अंग मुसकात।

कुछ अन्य स्त्रियाँ माता से कहती हैं—अरी मृगनैनि तुम कहाँ की निवासी हो तुम्हारा गाँव कौन है। माता ने उत्तर दिया कि हम सरयू के तीर बसे अयोध्या के रहने वाली हैं जहाँ के नगर है जहाँ के कुल के राजा दशरथ राज्य करते हैं। स्त्रियाँ फिर पूछती हैं—वह तुम किस कारण से वन को जा रही हो सच्ची बात कहो घरबार छोड़कर पैदल क्यों जा रही हो। सीता उत्तर देती है— सासु की सौति सुहागिनि सो सखि अति ही पिय की प्यारी। अपने सुत को राज दिवायो हमको देस निकारी। स्त्रियों ने जब यह विपरीत बात सुनी तो उनके नेत्रों से नीर बहने लगा। कुछ स्त्रियों ने सीता से राम और लक्ष्मण के साथ अपने घर चलने के लिए आग्रह किया। इस पर सीता ने कहा कि राजा दशरथ ने चौदह वर्ष तक वन में रहने की आज्ञा दी है इस कारण हम घर में नहीं रह सकते। उनके वचन को सत्य करके लौटने पर हम सबसे फिर मिलेंगे। स्त्रियों ने फिर पूछा—सीता तुम्हारे देवर कौन हैं और तुम्हारे पति कौन हैं। सीता ने उन्हें बताया कि गौर वर्ण वाले मेरे देवर हैं और श्याम गात्र वाले मेरे पति हैं (९-४४)। ग्रामवधुएँ दूर तक सीता के साथ गयीं फिर उनसे बिछुड़ने पर वे कहने लगीं—

कहि धौं सखी बटाऊ को हैं।
अद्भुत बधू लिये सँग डोलत देखत त्रिभुवन मोहैं।
× × ×
सूरदास प्रभु के अंग-अंग निरखत पुरजनि पूछ धाइ।
राजिव नैन मैन की मूरति मननि लियो बसाइ।

१—महानाटक—पृ० ४३
पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना
कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति।
स्मितविकसितगण्डं व्रीडविभ्रान्तनेत्रं
मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता।। १५।

गई सकल मिलि संग दूरि लौं मन न फिरत पुर वास।
सूरदास स्वामी के बिछुरत भरि भरि लेति उसास।९-४५।

गोस्वामी तुलसीदास ने जमुना पार कर चित्रकूट जाते हुए मार्ग में ग्राम वासियों तथा ग्रामवधू सीता वार्तालाप का विशद चित्रण किया है। रामचरित मानस में यह प्रसंग अयोध्याकाण्ड में दोहा ११०-१२१ के बीच विस्तारपूर्वक दिया गया है जिसमें सीता के तिरछे नयनों से राम को पति बताने का हृदयस्पर्शी वर्णन तुलसीदास जी ने किया है।[1] केवट प्रसंग की भाँति ग्रामवधू प्रसंग भी सूर तुलसी के वर्णन के पश्चात् हिन्दी राम साहित्य का अपूर्व सरसतायुक्त बयान बन गया है।

राजा दशरथ ने पुत्र वियोग में शरीर त्याग दिया। अयोध्या के पुरवासी जीव जन्तु शोकसागर में निमग्न हो गये। भरत के ननिहाल से लौटने तथा कैकयी के प्रति उनके वचन का वर्णन तीन पदों में किया गया है (९ ४७ ४९)। गुरु वशिष्ठ के सम्मान पर भरत राजा दशरथ का विधिवत् अन्त्येष्टि संस्कार करते हैं। तदनन्तर भरत चित्रकूट जाते हैं। भरत के चित्रकूट जाने तथा पादुकाएँ प्राप्त करने की कथा पाँच पदों (९ ५१ ५५) में सूर ने कहा है। इस अवसर पर करुणा का प्रवाह उमड़ पड़ा है। भरत राम से कहते हैं—रघुनाथ से विमुख होकर किस विधि जीवन हो सकता है? इन चरण कमलों को देख बिना धरती पर कौन सा सुख मिल सकता है। भरत हठ करके राम के चरण पकड़ लेते हैं किसी प्रकार छोड़ते नहीं। वे कहते हैं—हे रघुनाथ निठुरता छोड़िए कौशल्या माता परम दुखी हैं आप भवन लौट चलिए। राम ने भरत को समझाया, पिता के आज्ञा का स्मरण कराया तथा उपदेश देकर भरत को आश्वस्त किया। भरत अवलम्ब के रूप में राम की पादुकाएँ लेकर अयोध्या लौटे—

भरत गात सीतल ह्वै आयौ नैन उमगि जल ढारयौ।
सूरदास प्रभु दई पावरी अवधपुरी पगु धारि।९-५६।

१—रामचरित मानस—
बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि।
भइँ मुदित सब ग्राम बधूटीं। रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं।
अति सप्रेम सिय पाँय परि बहुबिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस॥११६॥

चित्रकूट त चल खीन तन मन विश्राम न पायौ।
सूरदास वलि गयौ राम कै निगम नति जहि गायौ। — ।

भरत के चित्रकूट गमन तथा पादुका लेकर अयोध्या लौटने की कथा का आदि काव्य के पश्चात परवर्ती रामकथा साहित्य में विकास होता रहा है। इसका सर्वाधिक विकास गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस में मिलता है।

अरण्यकाण्ड—अरण्यकाण्ड की कथा का वर्णन सूर ने बारह पदों में किया है। इसका आरम्भ शूर्पणखा के नासिका छेदन से होता है। जटायु पद में खरदूषण वध वर्णित है। कनक मृग तथा सीता हरण की कथा चार पदों में वर्णित है। राम धनुष बाण साथ लिए कटिक कसन दृढ़ बांधकर जब कनक मृग के पीछे दौड़ते हैं तब सूर उनके आराध्य सगुण अवतारी रूप का स्मरण करते हैं—

पाछ्रे सजत सदा गन गनत अड अनेक अवधि बर आय।
सूर सजन महिमा त्रिवरावत रमि रति सुगम चरन आगय। ५८।

सीता ने पुष्प वाटिका लगाया। आराम वाटिका के पौधों को प्रेमपूर्वक वह सींचते थे। अकुर धारे धारे बढ़ उनमें फल और फूल लगने लगे। पौधों की सुन्दर पंक्तियाँ इस प्रकार लगी थी जैसे स्वर्ण को लाए सजाई गयी हो। वहाँ कनक मृग बनकर मारीच आता है दिखाई पड़कर फिर भाग जाता है। राम पीछे धनुष लेकर जाते हैं। लक्ष्मण के भी चले जाने पर रावण विभूति लगाकर भिक्षा मांगता है सीता भिक्षा लेकर आती है और रावण उन्हें हरकर ले जाता है और अशोक वाटिका में रखता है। सूरदास कहते हैं—करम रेख मेटी नहि जाई। (९–१९)। सीताहरण प्रसंग में सूरदास ने लक्ष्मण के राम के पास जाते समय रेखा खींचने तथा लक्ष्मण के प्रति सीता के (कठोर) वचन का निर्देश मात्र करते हुए माया सीता के हरे जाने का वर्णन किया है।[1] वाल्मीकि रामायण में माया सीता के हरण का उल्लेख नहीं है और न अध्यात्म भागवत में इसकी चर्चा है। माया

१—सूरसागर—९.६०।
इहि विधि वन बसे रघुराइ।
स्वामि के तन नमि मानत लछमन के फल लाइ।
जगत जननी करी बारी मृगा चरि चरि जाइ।
कापि के प्रभु जान लागे तहि धनुष चढ़ाइ।
जनक तनया धरी अगिनि में छाया रूप बनाइ।
यह न काऊ भेद जाने दिना या रघुराइ।
कह्यौ जनजननी रह्यौ ह्यां तुम छांडि जनि कहुँ जाइ।

माता वर्णन सबसे पहले कूर्म तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण (सातवीं शताब्दी) में मिलता है। इसका विकसित रूप अध्यात्म रामायण में मिलता है जहाँ कहा गया है कि रामचन्द्र ने रावण की इच्छाओं को जान लिया और सीता से कहा कि अपने आकार को छाया कुटी में निवसित कर दें और एक वर्ष तक अग्नि में अदृश्य रूप से रहें। राम का वचन सुनकर सीता ने वैसा ही किया। मायामयी सीता ने मायामय मृग को देखकर शीघ्र मृग लाने के लिए बाध्य कर राम को राम से कहा।[1] माया सीता के हरण की कथा सूरदास ने नहीं दी है। अनन्तर गोस्वामी तुलसीदास ने इसका वर्णन किया है। परवर्ती राम-साहित्य में भी यही कथा ग्रहीत हुई है।

सीताहरण के उपरान्त राम सीता के वियोग में विलाप करते हैं। राम विलाप को सूर ने तीन पदों में वर्णन किया है (९६२-६४)। राम सीता का नाम लेकर पुकारते हैं तथा शोकमग्न हो अश्रुपात करते हैं। लक्ष्मण से राम कहते हैं—हे भाई इतना ने मिल कर इस वन में जानकी को हर लिया है इनके पास सीता के अंगों के कुछ चिह्न दिखाई देते हैं। सिंह ने उनकी कटि कोकिल ने मधुर वाणी, चन्द्रमा ने मुख की छवि मृग ने नेत्र की शोभा चम्पक पुष्प ने वर्ण भ्रमर ने केश-पाश शोभा अनार ने दन्तावली हंस ने गति बिम्बाफल ने ओष्ठ तथा सर्प ने वेणी की शोभा चुराया है।(९६३)। वन में राम प्रेम विह्वल हो लता पादप से सीता के सम्बन्ध में पूछते हैं—

> फिरत प्रभु पूछत वन-द्रुम बेली।
> कहाँ बंधु काहू अवलोकी इहि मग वधू अकेली।
> × × ×
> कहूँ सिंदूर कहूँ कर-कंकन कहूँ नूपुर कहूँ चार।
> सूरदास वन-वन अवलोकत विलख वदन रघुवार।(९६५)।

गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रसंग का मार्मिक वर्णन अरण्यकाण्ड में किया है।[2] राम ने आगे जाकर जटायु का दाह-संस्कार किया है और उसे निज पद प्रदान

> रता मृग मारीच मारयो गिरयो लखन सुनाइ।
> गयो गति रख माता कह्यो सो बहि नहि जाइ।
> नहिं तिलिमि गयो छल करि लई साथ चुराइ।

१—अध्यात्म रामायण ७ १-८।

२—रामचरित मानस ३ २८।

३—रामचरित मानस

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनयनी। इत्यादि—२८—७।

किया। अनन्तर राम शबरी के आश्रम गये। भक्ति के वश में शबरी के जूठे फल खाये और उसे अमर पद दिया। भक्ति की महिमा का बखान करते हुए सूरदास ने इस प्रसंग में कहा है—

जाति न काहू की प्रभु जानत भक्ति भाव हरि जुग जुग मानत। (९ ६७)
शबरी का प्रसंग भागवत में नहीं है। वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण में यह प्रसंग आया है। भक्ति भावना के प्रचार के साथ शबरी की कथा लोकप्रिय हो गयी। सूर की भांति तुलसी तथा अन्य परवर्ती राम-साहित्य के रचयिताओं ने इसका वर्णन किया है।

किष्किंधा काण्ड—श्रीमद्भागवत में किष्किंधा काण्ड की कथा का निर्देश मात्र मिलता है। सूर ने इस कथा को ६ पदों में (९ ६८-७) में कहा है। राम सीता की खोज करते हुए ऋष्यमूक पर्वत पहुंचे। वहां हनुमान से भेंट तथा सुग्रीव से मित्रता हुई। राम ने सीता के आभूषण वानरों के पास देख सप्त ताल वध किया और बालि का वध किया तथा सुग्रीव को राज्य दिया। सीता की खोज के लिए वानरों के दल भेजे गये। राम ने हनुमान को मुद्रिका दी। समुद्र तट पर सम्पाती ने वानरों को सीता का पता बताया।

सुन्दर काण्ड—सुन्दर काण्ड की अधिकारिक कथावस्तु का श्रीमद्भागवत में केवल निर्देश किया गया है। हनुमान का समुद्र पार करना हनुमान सीता सम्वाद लंका दहन सीता का राम को सन्देश राम की लंका के लिए प्रस्थान आदि का वर्णन भागवत में नहीं है। सूरदास ने इन प्रसंगों का चित्रण विस्तार के साथ किया है। भागवत के कथा निर्देश मात्र के स्थान पर सूरदास ने तन्मयता के साथ सुन्दरकाण्ड की कथा का वर्णन ३२ पदों में किया है।

समुद्र तट पर वानर दल विचार करता है कि समुद्र पार कौन वीर लंका जायगा। जामवन्त ने हनुमान के बल की सराहना की और उन्हें समुद्र लांघने के लिए प्रेरित किया। हनुमान ने अपना शरीर बड़ा कर गर्जना कर दिया। एक गिरि शिखर पर चढ़ कर किलकिला नाद किया और समुद्र पार करने के लिए उछल पड़े। उस समय गगन में आघात हुआ कमठ नाग-वसुधा नभ कांपने लगे रवि-रथ विचलित हो गए। हनुमान आकाश में ऐसे जा रहे थे जैसे मेरुगिरि सपक्ष होकर उड़ रहा हो। (९ ७४) हनुमान लंका में पहुंच गये। कनकपुरी लंका में उन्होंने सीता की खोज की किन्तु पता न लगने के कारण हनुमान दुखी हो गए। उन्होंने रावण के भवन का शोधन किया और वहां की सम्पदा देखी। फिर वे अशोक वाटिका गये जहां निशिचरियां रामनाम जपती हुई मौन मलीन सीता को घेर कर बैठी थीं। हनुमान सोच विचार में थे इसी समय आकाशवाणी हुई कि

रहा सोता है इसे प्रणाम करो। निशिचरियाँ रावण का गुणगान करती हैं और सीता को रावण की बात समझाती हैं। इस पर सीता क्रुद्ध हो जाती है। निशिचरियों ने रावण से जाकर कहा कि गगन डोलने लगे पृथ्वी उलट जाय असम्भव सम्भव हो जाय किन्तु सीता का सत्य भाव नहीं टल सकता। ऐसी स्त्री को क्या छू कर के आप उसके श्राप से भस्म हो जाओगे। रावण ने राम से बैर कर उनके हाथ से मृत्यु का मार्ग चुना था। उसने कहा—

जौ सीता सत तें बिचरै तौ श्रीपति काहि सँभारै।
मोसे मुग्ध महापापी कौं कौन क्रोध करि तारै।
ये जननी वे प्रभु रघुनन्दन हौं सेवक प्रतिहारै।
सीता राम सूर सगम बिनु कौन उतारै पारै। (९ ७८)।

रावण पुनः सीता को समझाता है और कहता है कि समस्त चारु मन्त्र त्रियरियों को तुम्हारी दासी बना दूँगा तुम्हें पटरानी बनाऊँगा। जानकी ने तृण की ओट देकर कहा—रावण तेरा आभ गल जायगा। मैं सिंह की पत्नी हूँ सिंह का भक्ष्य कहाँ शृगाल पाता है। रावण सीता को मारने की धमकी देकर चला जाता है। त्रिजटा-सीता-संवाद तीन पदों में वर्णित है। त्रिजटा सीता को आश्वस्त करती है और कहती है कि नलकूबर के शाप के कारण सीता पर रावण का वश न चलेगा। नलकूबर ने रम्भा के साथ बलात्कार करने के लिए रावण को शाप दिया था कि न चाहने वाली पर स्त्री का सेवन करने से रावण के सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे। शाप की यह कथा वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड[1] तथा महाभारत के रामोपाख्यान[2] में मिलती है किन्तु श्रीमद्भागवत में इसका उल्लेख नहीं है।

सीता त्रिजटा से हृदय खोल कर वार्तालाप करती हैं और कहती हैं कि वह दिन कब आयगा जब रघुपति के चरण कमल को मैं हृदय से लगाऊँगी[3]। सीता

१—वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड—प्रक्षिप्त सर्ग २६।
२— ,, २६४।१९ ,, २७।३।
३—सूरसागर—सो दिन त्रिजटा कहु कब ऐहै।
जा दिन चरन कमल रघुपति के हरषि जानकी हृदय लगैहै।
कबहुँक लछिमन पाइ सुमित्रा माइ माइ कहि मोहि सुनैहै।
कबहुँ कृपावन्त कौसिल्या बधू बधू कहि मोहि बुलैहै।
जा दिन राम रावनहिं मारि ईसहि दससीस चढ़ैहै।
ता दिन सूर राम पै सीता सरबस वारि बधाई दैहै। ९ ८१।

कहता है कि मैंने राम चरण में चित्त दिया है सुमेरु कम्पायमान हो जाय गंगा का नीर कंपित हो जाय सागर-पति पश्चिम में उदित हो तो भी मैं मधुर मूर्ति रघुनाथ-गान रति नहीं छोड़ेगा। (८२) त्रिजटा अपना स्वप्न सीता को सुनाती है जिसमें उसने राम की विजय और रावण का वध तथा लंका का विनाश देखा है। सीता के अंग फड़कते हैं—और शुभ शकुन होता है। उसी समय हनुमान प्रकट हुए और रामचरित का वर्णन करने लगते हैं। उन्होंने सीता को बताया कि राम-लक्ष्मण कुशल से हैं। सीता के लिए राम ने कठिन व्रत धारण किया है अन्न जल नहीं ग्रहण करते। सीता को संशय हुआ कि यह रावण तो नहीं है। इस पर हनुमान ने 'कह मातु सन्देह दूरि मुद्रिका दई प्रीति कर नाथ' कहकर मुद्रिका दे दी। सीता ने उसे बारम्बार निकट बसाया और चिर जीवी होने का आशीर्वाद दिया। सीता-हनुमान सम्वाद विस्तार से ग्यारह पदों में वर्णित है। मुद्रिका देने के प्रसंग का वर्णन कई बार किया गया है सीता कहती है—

> हनुमत भली करी तुम आए।
> बारम्बार कहति बैदेहि दुख सताप मिटाय।
> श्री रघुनाथ और लछिमन के समाचार सब पाय।
> अब परतीति भई मन मेरे संग मुद्रिका आय। ९९ ।

सीता ने अपनी दुर्गति हनुमान से कही और राम के प्रति सन्देश कहा। हनुमान ने सीता को परितोष दिया और कहा कि चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं मैं शपथ करके कहता हूँ कि मैं राम को शीघ्र ले आऊँगा। हनुमान ने कहा कि मैं अभी जानकी को लिवा जा सकता हूँ किन्तु इसके लिए राम की आज्ञा नहीं है। ९९५। सीता की आज्ञा पाकर हनुमान ने अशोक वाटिका का विध्वंस किया और पाशबद्ध हो रावण के सामने गये। हनुमान राम के बल पराक्रम का वर्णन करते हैं। राक्षसों ने हनुमान की पूँछ में तेल-तूल पावक

१—सूरसागर—

> यह गति देख जात सन्देसा कैसे जु कहौं।
> सुनु कपि अपने प्रान को पहरो कब लगि देति रहौं।
> ये अति चपल चल्यो चाहत है करत न कछू बिचार।
> कहि धौं प्रान कहा राखौं रोकि मुख द्वार।
> इतनी बात जनावति तुम सौं सकुचनि हौं हनुमत।
> नाहीं सूर सुन्यो दुख कबहूँ प्रभु करुनामय कंत। ९९२।

लगा दिया, उन्होंने लका को भस्म किया। लका-दहन का प्रसग भागवत मे नहीं है। हनुमान के मन मे संशय हुआ कि कहीं इस अग्निकाण्ड मे सीता भी न जल गयी हो। उसी समय आकाशवाणी हुई— जाके हिय अन्तर रघुनन्दन सो क्यों पावक जरई। हनुमान पुन सीता के पास गये सीता ने कहा कि रघुनाथ के चरणों मे पड कर मेरी स्थिति उन्हे बता देना। हनुमान लका से लौटे मधुवन को उजाडा। राम के पास गये तो राम ने उनसे सीता का कुशल क्षेम पूछा। हनुमान ने लका का सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

लका काण्ड— श्रीमद्भागवत मे राम रावण युद्ध ११ श्लोकों मे वर्णित है। लका से अयोध्या लौटना तथा राज्याभिषेक आदि प्रसग का वर्णन २८ श्लोकों मे किया गया है। सूरदास ने युद्ध काण्ड की कथा का विस्तार से वर्णन किया है।

युद्ध काण्ड की कथा का आरम्भ सूरसागर मे राम के सेना लेकर समुद्र तट पर पहुँचने से होता है। हनुमान से सीता का वृत्तान्त सुन कर राम सेना लेकर लका की ओर चल पडे। सूरदास ने अभियान का सजीव वर्णन किया है—

भूमि अति डगमगी जोगिनी सुनि जगी सहस फन सेस को सीस काप्यौ।
कटक अनगिनित जुर्‌यो लक खरभर पर्‌यो सूर को तेज धर धूरि ढाप्यौ।

—सू सा दि ९ १०८।

राम सेना सहित जलनिधि के तट पर आकर खडे हो गये। वहाँ उन्होंने हनुमान की ओर दृष्टि फेरी। हनुमान तुरन्त उनके पास आये। हनुमान ने राम से कहा—स्वामी निशाचरों को नष्ट करना साधारण काम है। आपकी आज्ञा हो तो रावण सरीखे अनेक निशाचरों का नाश कर दूँ। आप कहे तो जानकी को ले आऊँ अथवा लका को विध्वस कर डालूँ। दशानन की बीसो भुजाओं को एक क्षण मे काट डालूँ और उस तृण ग्रहण करा के जीवित आपके चरणों मे गिराऊँ। आपकी आज्ञा पाऊँ तो लका गढ को समुद्र के पार उठा लाऊँ। सूरदास ने हनुमान के इन वचनों का वर्णन चार पदों मे किया है। यह सूरदास की मौलिक उद्भावना है। इस प्रकार का वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता। इसी प्रसग मे सूर दास ने एक अद्भुत कोमल कल्पना की है। हनुमान राम से कहते है—सेतु बाँधने के लिए नाम प्रयत्न करें अपनी आज्ञा दें जिससे सारी सेना मिल कर सिंधु को बाँधे द्रुम-पाषाणों से तब तक इस समुद्र को बाँध लिया जाय जब तक सीता के अश्रुजल का समुद्र आकर इससे मिल नहीं जाता। अतएव है

प्रभु इस अकाल प्रलय को मन्द की कृपा करें। इसके पश्चात विभीषण शरणागति दो पदों में वर्णित है। विभीषण ने पहले रावण से सादर निवेदन किया कि राम समुद्र तट पर आ गए हैं अतएव मेरा वचन मान कर सीता को देकर उनसे मिलिए राम संसार के कर्ता हैं। उनके चरणों को नमस्कार करिए। लंकेश ने चरण प्रहार करके कायरता के लिए विभीषण की भर्त्सना की। इस पर विभीषण अशरण शरण के द्वार तुरन्त पहुंचा (९ १११)। राम ने विभीषण को शरण में ले लिया। सूरदास भक्त-वत्सल प्रभु का यश गाते हैं—

> कह्यो सो बहुरि कह्यो नहिं रघुवर यह विरद चलि आयौ।
> भक्तवछल करुनामय प्रभु को सूरदास जस गायौ।।११२।।

विभीषण को शरण देने के पश्चात राम प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं अयोध्या तभी जाऊंगा जब विभीषण को राज्य दे दूंगा और सेना के साथ समुद्र को बांध दूंगा। रावण का वध करके ही मैं दशरथ सुत राम कहाऊंगा। विभीषण से राम कहते हैं कि मैं लंका को नष्ट करके रावण का वध करके सीता को प्राप्त करूंगा।[2]

राम के समुद्र तट पर पहुंचने का समाचार पाकर मन्दोदरी रावण को समझाती है। रावण-मन्दोदरी संवाद को सूरदास ने विस्तार के साथ ६ पदों

१—सूरसागर—

> रघुपति बेगि जतन अब कीजै।
> बांधि सिंधु सकल सेना मिलि आपुन आयसु दीजै।
> तब लौं तुरत एक तौ बांधौ द्रुम पाषाननि छाइ।
> द्वितिय सिंधु सिय-नैन-नीर ह्वै जब लौं मिलै न आइ।
> यह बिनती मैं करी कृपानिधि बार-बार अकुलाइ।
> सूरदास अकाल प्रलय प्रभु मेटौ दरस दिखाइ। (९ ११०)।

२—सूरसागर—

> हौं तब नगर अयोध्या जैहौं।
> एक बात सुनि निश्चय मेरी, राज विभीषण दैहौं।
> कपि दल जोरि और सब सेना सागर सेतु बंधैहौं।
> काटि दसौ सिर बीस भुजा तब दसरथ सुत जु कहैहौं।
> छिन इक माहिं लंक गढ़ तोरौं कंचन कोट ढहैहौं।
> सूरदास प्रभु कहत विभीषण रिपु हति सीता ल्यैहौं। (९ ११३)।

में वर्णन किया है (९ ११८ ११९)। यह प्रसंग भागवत में नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास ने इसका वर्णन किया है।[1] सूर के वर्णन में मन्दोदरी रावण से कहती है कि राम समुद्र के तट पर आ गये हैं सीता को राम से मिला दो नहीं तो लंका नष्ट हो जायगी (९ ११८)। मन्दोदरी राम का सुयश वर्णन करती है और कहती है—हे कन्त परम पुनीत जानकी को लेकर राम से मिलिए और अपने कुल का कलंक मिटा डालिए। राम के चरणों में अपना माथा गिरा दीजिये और अपने अपराध से मुक्त हो जाइये। राम कृपानिधि हैं वे साथ न करेंगे (९ ११०)। अनन्तर मन्दोदरी राम के वीरतापूर्ण कृत्यों को सुनाकर रावण से राम की शरण में जाने को कहती है। सीता को हर कर लाने को मन्दोदरी निन्दित कार्य बताती है और विनाश से बचने के लिए राम की शरण में जाने के लिए रावण को प्रेरित करती है। (९ ११६ ११७)। रावण अपने बल का वर्णन कर मन्दोदरी को आश्वस्त करने का प्रयत्न करता है (९ ११८)। किन्तु मन्दोदरी पुनः रावण को समझाती है और तुरन्त राम के पास जाने के लिए प्रार्थना करती है (९ ११०)। अगले पद में रावण द्वारा भेजे गये शुक-सारण दूतों का प्रसंग वर्णित है।

सेतुबन्ध और जलनिधि-तरण प्रसंग का वर्णन भागवत में चार श्लोकों में (९ १० १२-१६) वर्णित है। सूरदास ने इस प्रसंग का वर्णन चार पदों में किन्तु विस्तार के साथ किया है। राम कुश सायरा के आसन पर समुद्र तट पर बैठ गये। तीन दिन बीत जाने पर भी समुद्र ने सत्कार कर मार्ग नहीं दिया तब राम ने धनुष बाण हाथ में लिया। इस पर समुद्र भयभीत हो गया और व्याकुल होकर राम के पास आया। नल-नील ने सेतु बांधा जिसके सहारे से पाषाण जल में तैरने लगता था। राम का प्रताप देखने के लिए विमान में उतर कर देवता आये। राम का नाम लेकर बानर अथाह सागर में डूबने नहीं पाये फिर कलियुग में सूरदास ही क्या डूबने पायेंगे। (९ १२१ १२२)। जलनिधि तरण के सम्बन्ध में सूरदास की कल्पना मनोहर है। जानकी के वियोग में राम ने भयंकर क्रोध किया सब पर प्रभु थे सेतु पर जाकर बानर आकाश में छाये हुए मेघों के समान जान पड़ते थे। उनका गर्जना मेघ निर्घोष जान पड़ता था। सेना की पंक्ति ऐसी जान पड़ती थी जैसे समुद्र में गिरने वाली नदियाँ वापस लौट रही हों। मानो राम के भय से समुद्र पलिय सायक भेज हो जाती हैं। समुद्र की पत्नी विषाद को दूर करने के लिए राम ने बाण वर्षा से रक्त की नदी प्रवाहित

१—रामचरित मानस लंका काण्ड ७८।

कर समुद्र का विवाह कराया जिसमें स्वर्ण लंका-कलश था। यद्धभूमि के विखरे मणि-मुक्ता आभूषण थे। सतुरवु स्या मगर तिनका समुद्र को लगाकर राम पार उतरे।[1] सूर की यह कल्पना सर्वथा मौलिक है।

सेना के साथ राम के समुद्र पार उतर जाने पर मन्दोदरी पुनः रावण को समझाती है। इस प्रसंग का वर्णन सूरदास ने तीन पदों में किया है। मन्दोदरी कहती है—रघुवंश मारगधर समुद्र पार आ गये। उनके साथ सागर तट पर वानर सेना का अपार भीड़ है। राम के ऊपर छत्र निशान है। मेरा यह प्रस्ताव है कि जानकी को अब भी दे दीजिए। राम ने सागर बाँधा उनके एक वानर दल ने लंका को जला दिया। उनको बराबरी न करिये। अतएव यह करबद्ध प्रार्थना है कि त्रिभुवन पति राम को जानकी जाकर दीजिए। रावण ने अहंकार में कहा कि तेंतीस कोटि देवता मेरी सेवा करते हैं। मैंने मत्र को बाँधकर कूप में रखा है। राम लक्ष्मण का क्या विसात है तू वृथा डरता है। मन्दोदरी कहती है कि जो होनिहार प्रभु ने रच रखा है उसे कोई मेट नहीं सकता। (९ १२५ १२७)।

राम ने अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजा। यह कथा वाल्मीकि रामायण में युद्धकाण्ड के ४१वें सर्ग में वर्णित है। भागवत में यह प्रसंग नहीं है। अध्यात्म रामायण में भी यह प्रसंग नहीं लिया गया है। सूरदास ने अंगद दूतत्व प्रसंग का सविस्तार वर्णन नौ पदों में किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इस प्रसंग का विस्तृत वर्णन रामचरित मानस में प्रस्तुत किया है। सूरदास के वर्णन में वालि नन्दन-वीर अंगद रावण के द्वार पर जाते हैं। पौरि से दरवान दौड़कर

१—सूरसागर—

सिव-नद उतर राम उदार।
राय विषम कान्हा रघुनन्दन सिय को विपनि विचार।
सागर पर गिरि गिरि पर अवर कपि घन के आकार।
गरज किलक आघात उठत मन दामिनि पावक धार।
परत फिराइ पयोनिधि भीतर सरिता उलटि बहाई।
मन रघुपति भयभीत सिंधु पत्नी प्योसार पठाई।
वारी मिरत दुसह सबही कौं आयौं राजकुमार।
वानरपति सौनित करि सरिता व्याहन लंगा नवार।
सुबरन लंक-कलस आभूषन मनि मुक्ता-गन हार।
सतुवध करि तिलक सूरप्रभु रघुपति उतर पार। ९ १२४।

—रामचरित मानस ६ १७ ४।

गया दशशीश को सिर नवा कर निवेदन किया कि राम का दूत द्वार पर आया है। यह सुन कर अभिमान सदन-दस-बदन ने नन की सन दकर अगद को बुला ान का कहा। कपि क वप का देख कर लकश अटटहास करके हसा और बोला— तुम अच्छे वार हो राम का सेना का थाह लग गया। सुभटो से सवित छत्र की छाया म सिंहासन पर बठा रावण निभय पनीत होता था। उसने आग कहा— दव-दानव महाराज रावण का सभा म एक बदर को मत्र (संधि वाता) करन क लिए भेजा है (इससे तुम्हारी ओर की बुद्धि शक्ति का अनुमान हो जाता है।) इस पर अगद न कहा— रे रावण तेरा कितना क्या आतक है कि मैं तेरा हाथ जोडकर प्राथना करू। मैं तेरे स्वण मुकुट छीन कर तुझे पटक कर तलवार से तेरा सिर काट देता किन्तु तेरा मत्यु तो राम के हाथ होगी अत मत्यु म पड तुझ क्या मारू। यह सुन कर रावण बोला—अग्नि मेरी रसोई बनाते ह सुरपति पानी भरते हैं वायु मेरा द्वार स्वच्छ करते हैं नारद गान गाते है दव गुरु वृहस्पति शुभ तिथि व दिन बताते हैं मेरे द्वार पर ब्रह्मा उच्च स्वर से वेदपाठ करते है। मैंने यक्ष मत्य वासुकि नाग मनि गन्धव तथा सकल वसुधा को जीत कर दास बना लिया है। तपसी राम ने यदि आकर डरा डाल हो दिया है तो इसका क्या भय है। इस पर अगद ने कहा कि तप का बल सच्चा बल है। तप बल के बिना जल पर पाषाण कौन तरा सकता है। कौन ऐसा सुभट है जो एक ही बाण म बालि को मार दे। शरण म जाने से राम बालि दोषों को विस्मत कर देते है। अतएव अभी दशकन्ध जाकर राम से मिल। और मत्यु मुख म अपने को उबार ले। यह सुन कर रावण करवाल हाथ म लेकर काँप करके बोला—अरे मद मैं क्या राम का शीश नवाऊ। मैं शकर की शपथ खाकर कहता हू कि बन्दरों को मैं पकड़ म आकाश म उडा दूगा। सम्मुख युद्ध करूँगा और मन म तनिक शका न लाऊगा। मैं सारी वानर सेना को मार कर समुद्र म बहा दूगा। ततीस कोटि देवता मेरी सेवा रात दिन किया करते हैं तो क्या अब मैं राम स डर जाऊ। मेरे आघात से शत्रु पृथ्वी पर गिरेंगे। रक्त की धार बहा कर मैं भरव को तप्त करूगा। अभी वारों को मर्जित करता हू। रणभेरी बजवाता हू और तब एक एक से भिडकर युद्ध का स्वाद चखाऊगा। (९ १२०)। अगद न कहा—रावण तू तभी तक गरज रहा है जब तक राम हाथ म धनुष नहीं लेते। (९ १२०)। अगद ने रावण को राम का सन्देश सुनाया—राम न कहा है कि रावण म तेरे बल को जानता हू। मुझ युद्ध म जान लो तुम्हारा मुख्य यमलोक भेज दूगा। तेरे दस शीश शकर को चढ़ाऊगा। और राज्य विभीषण को दूगा। (९ १२१)।

अंगद ने कहा—रावण मुझे आदेश नहीं है अन्यथा मैं लंका को नष्ट कर देता। तेरे सिर को छेदन कर देवताओं का भय दूर कर देता। ग्राम नेत्रों वाले रावण तू अंधा है। सूने भवन से तूने सीता का हरण किया है। रेखा नहीं पार कर सका। तू अब भी जनक सुता को लेकर राम की शरण में जा (९ १ २)। रावण तू मत्त है जो राम को नर कहलाता है। सीता को राम को देकर तू रक्षा बना ले। रावण ने कहा—अंगद तू पिता का वैर क्या भूल गया। तूने कुल नाश को न्योता मारा तो तेरे स्थान पर क्या क्या नहीं उत्पन्न हुई। बालि महायोद्धा था तभी देखते राम ने उसका वध किया। अंगद ने कहा—राम ने कृपापूर्ण दृष्टि से मेरे पिता को देखा था उस दृष्टि पर मैं समस्त नरेशों को निछावर कर दूँ। रावण ने फिर कहा—यदि तुम में दर्प और पुरुषार्थ नहीं है तो मैं तुम्हें लंका का आधा राज्य देता हूँ। मेरे सहित ये राक्षस युद्ध करने में शंका नहीं करेंगे। (मेरा सहायता से पिता का बदला लो)। तब अंगद ने रावण को मर्म जान कर कहा—राम सबके ईश हैं कृपा निधान हैं जानकी को लेकर उनकी शरण में जाओ। (९ १)। रावण ने इन्द्रजीत को बुलाया और युद्ध के लिए सेना सज्जित करने का आदेश दिया। अंगद ने क्रोध कर सभा में चरण रोपा और घोषित किया कि यदि कोई मेरा चरण हटा दे तो राम बिना युद्ध किये लौट जायेंगे।

अंगद ने लौट राम के पास लौट कर आये। प्रणाम कर निवेदन किया कि लंकापति रावण को मैंने बहुत समझाया किन्तु काल वश उसे कुछ सूझ नहीं पड़ रहा है। इन्द्रजीत युद्ध के लिए चढ़ कर आया है। अतएव आप भी सेना सज्जित करें। अंगद दूतत्व प्रसंग वाल्मीकि रामायण में संक्षेप में है। परवर्ती साहित्य में इसका विकास हुआ है। महानाटक के आठवें अंक में रावण अंगद-संवाद का विस्तार से वर्णन किया गया है। अभिनन्द कृत रामचरित के १८वें सर्ग में भी विस्तृत वर्णन आया है तथा कुछ साम्प्रदायिक रामायणों में अंगद दूतत्व का वर्णन किया गया है। सूरदास ने इस प्रसंग का सजीव वर्णन किया है। गोस्वामी

१—कापि अंगद कह्यौ धरौं धर चरन मैं ताहि जो सके कोऊ उठाई।
तौ बिना जुद्ध सिय जाहिं रघुबीर फिरि सुनत सब उठे जोधा रिसाई।
रहे पचि हारि नहिं टारि कोऊ सक्यौ उठ्यौ तब आपु रावन खिस्याई।
कह्यौ अंगद कहा मम चरन कौं गहत चरन रघुबीर गहि क्यौं न जाई।
सुनत यह सकुच कियौ गौन निज भवन कौं बालिसुत हू तहाँ तें सिधायौ।
सूर के प्रभु को नाइ सिर यौं कह्यौ अब दसकंध की काल आयौ। (९ १३५)

तुलसीदास और सूरदास के इस प्रसंग के वर्णन में साम्य है।[1] गोस्वामी जी का वर्णन अधिक विस्तृत है। रामचरित मानस में अंगद के दूत प्रस्थान तथा रावण मुकुट राम के पास फेंकने का भी वर्णन किया है।

लक्ष्मण रावण के सम्मुख प्रतिज्ञा करते हैं कि भाई मैं इन्द्रजीत को न मारूँ तो आचरणों का दास न होऊँ। लक्ष्मण रावण समेत समस्त निशाचरों के संहार का साहस करते हैं। सेना सहित लक्ष्मण युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं। और लंका को घेर लेते हैं। (० १ ७१ ८)। इस अवसर पर मन्दोदरी पुनः रावण को समझाती है और कहती है कि उठकर देखो लंका घेर ली गयी है वानर सेना घन की भाँति छायी है चारों ओर अँधेरा हो गया है। लंका में राम की दुहाई फिर गयी है तुम्हें यह कुमति कहाँ से आयी। रावण अहंकार से भर कर कहता है—मेरे दस सिर बीस भुजाएँ हैं लंका के चारों ओर सौ योजन की खाई है मेघनाद सा पुत्र कुम्भकर्ण सा भाई है यह रह कर भयभीत होकर बात न करो। और न राम की कीर्ति का बखान करो मैं उन तपसी [illegible] पकड़ कर मँगाऊँगा। इस पर मन्दोदरी ने रावण को फिर समझाया और राम की महिमा का वर्णन किया। (० १८०)। मेघनाद ने रणभूमि में भयंकर युद्ध किया बाण वृष्टि की तथा वानर सेना को नागपाश में बाँधा। राम ने कृपा करके पाश से सेना को मुक्त किया। (० १८१)। रावण ने कुम्भकर्ण को जगाया और युद्ध के लिए प्रेरित किया। लक्ष्मण ने करवार सँभारा और शत्रु को टूक टूक करने का संकल्प किया। रावण युद्धभूमि में अग्रसर हुआ। [illegible] ने शक्ति हाथ में ली तब देवताओं ने हाहाकार किया। विद्युत राशि की भाँति वह शक्ति छूटी और लक्ष्मण भूतल पर गिर पड़े। राम करुणाभिभूत हो गये उनके नयनों से नीर बहने लगा। (० १८८)।

सूरदास ने लक्ष्मण को शक्ति लगने, राम के शोक तथा हनुमान द्वारा संजीवनी लाने के प्रसंग का विस्तार से वर्णन किया है। भागवत में यह प्रसंग नहीं है।

१—रामचरित मानस—६। १७। ५।

समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा।
जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी।
कपि बल देखि सकल हिय हारे। उठा आपु कपि कें परचारे।
गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहें न तोर उबारा।
गहसि न राम चरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई।

—[illegible]—६ ३।

अध्यात्म रामायण में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। परवर्ती रचनाओं में इस कथानक को अधिक महत्व दिया गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसका सविस्तार वर्णन किया है।[1] सूरदास का वर्णन करुण रस से ओतप्रोत है। मूर्छित लक्ष्मण को देखकर राम अधीर हो जाते हैं।[2] राम कहते हैं कि अब मैं किसका भरोसा करूँ? शत्रु सेना समुद्र की भाँति उमड़ रही है उसका निवारण किस साथ लेकर करूँ। अयोध्या से सघन वन में मेरी नाव चल रही थी, केवट नाव हो में थक गया। शत्रु के मन की बात हो गया। मैं अपने प्राण त्याग दूँगा और जानकी भी यह सुन कर प्राण त्याग देगी। किन्तु शरणागत विभीषण का क्या होगा मेरे मन में यही सोच है। लक्ष्मण का सिर गोद में रखकर राम शोक करते हैं। (९ १४६)। राम पवनसुत हनुमान को बुलाते हैं। हनुमान राम की सेवा के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। राम वैद्य सुषेण को बुलाकर औषधि द्रोणाचल से लाने के लिए हनुमान से कहते हैं। हनुमान द्रोणाचल पर पहुँचकर औषधि न पहचानने के कारण पर्वत को ही उठाकर ले चले। लौटते समय वे अयोध्या के ऊपर से आये। भरत ने उपद्रव का अनुमान कर बाण चलाया। हनुमान पृथ्वी पर उतर भरत के निकट पहुँच और अपना नाम हनुमान बताया। भरत के कुशल पूछने पर हनुमान ने समाचार बताया।

सूरदास ने इस स्थल पर कुछ मौलिक कल्पनाएँ की हैं। हनुमान का समाचार सुन कर कौशल्या और सुमित्रा ने विलाप किया। (९ १५१)। सूरदास ने सुमित्रा का चरित्र उच्च भाव धरातल पर चित्रित किया है। सुमित्रा कौशल्या से कहती है—वह माता धन्य है जो शूरवीर को जन्म दे जो भीर पड़ने पर शत्रु दल का दमन कर कर्तव्य पालन करें। हे स्वामिनि आप दुख न करें। मैं लक्ष्मण को जन्म देकर सपूता हुई। यदि लक्ष्मण राम के काम आ जायँ। यदि लक्ष्मण जियेंगे तो संसार में रह कर सुख भोगेंगे। लोग उनकी कीर्ति गायेंगे। यदि वे मर गये तो सूर्य मण्डल को भेदन कर वे दिव्यलोक में निवास करेंगे। मेरा यही

१—रामचरित मानस—६ ५४ ६२।

२—सूरसागर—

निरखि मुख राघव धरत न धीर।
भए अति अरुन बिसाल कमल दल-लोचन मोचत नीर।
बारह बरष नींद है साधी तातें बिकल सरीर।
दसरथ मरन हरन सीता को रन बैरिनि की भीर।
दूजी सूर सुमित्रा-सुत बिनु कौन धरावै धीर। (९ १४५)

कामना है कि राम विजयी होकर घर लौटें। (९ १५२)। कौशल्या बड़ा मानती है व हनुमान को सन्देश देती हैं—कपिवर, राम से यह कहना कि मेरे पुत्र हो तो बिना छोटे भाई लक्ष्मण के इस नगर में न आवें। यदि लौटें तो लक्ष्मण तथा जानकी के साथ मधुपुर लौटें नहीं तो सुमित्राकुमार पर अपने को न्यौछावर कर दें।[1] सुमित्रा अपना सन्देश पुनः हनुमान को देती है और कहती हैं—सेवक युद्ध में प्राण दे दे तब भी स्वामी घर लौटता है। श्री राम जब से वन गये भरत ने गुणोपभोग छोड़ दिया और दुखी होकर रहते हैं। (९ १५३ १५४)। पवन पूत ने कहा—आधी रात बीत गयी है राम ने सजीवनी के लिए मुझे भेजा था। भरत ने कहा—पर्वत के साथ मेरे बाण पर बैठ जाओ मैं तुम्हें पहुँचा दूँ। मेरे सिर पर राम की पादुका है इसी के बल पर मैं भरत कहाता हूँ। हनुमान सजीवनी लेकर लंका पहुँच गये। और हाथ जोड़कर सिर नवाया। भरत का सन्देश सुनाया और सजीवनी देकर मूर्छित लक्ष्मण को फिर से जगाया। (१५६)।

लक्ष्मण के मूर्छा से जग जाने पर राम ने प्रतिज्ञा की—मैं दूसरी बार हाथ में बाण न लूँगा एक ही बाण में समस्त निशाचरों का नाश कर दूँगा रावण का वध कर लंका का राज्य विभीषण को दूँगा और लक्ष्मण और सीता के साथ सुख से अयोध्या जाऊँगा। (९ १५७)। राम ने रण में कोप किया है। ब्रह्मादि विमानों में बैठ कर संग्राम देख रहे हैं। सुरपुर से सज कर रथ आया राम उस पर बैठे। भूमि काँप उठी दिग्गज क्षुभित हो उठे शेष का सिर कंपित हो गया पवन की गति रुक गयी चन्द्रमा बचन भंग होता जान कर विकल। धरा अम्बर तथा दिशाओं में बाण छा गये मानो प्रलय काल में अनेक सूर्य उदित हो गये हों। ध्वजा पताका छत्र रथ टूटने लगे। सुभट उछलने लगे रक्त की धारा आकाश में उछलकर हाथी घोड़ों के सिर पर गिरने लगी मानो सूर्य के रथ से अग्नि निकल रही हो। कवच रथ से गिर कर फिर उठते हैं जैसे अग्नि की लपटें भभक रही हों। राम की क्रोधाग्नि मानो काल के योग से अति प्रचण्ड हो उठी इस अग्नि में कुल और सेना

१—सूरसागर

सुनौ कपि कौसल्या की बात।
इहिं पुर जनि आवहिं मम बत्सल बिनु लछिमन लघु भ्रात।
छाड्यौ राज-काज माता हित सुत चरननि चित लाइ।
ताहि बिमुख जीवनाधिक रघुपति कहियौ कपि समुझाइ।
लछिमन सहित कुसल वैदेही आनि राज पुर काज।
नातरु सूर सुमित्रासुत पर वारि अपुनपौ लाज। (९ १ ५)।

सहित रावण के भस्म होते देर न लगी। (९ १५८)। युद्ध म रावण का वध कर राम ने अपना प्रण पूरा किया। महाबली रावण को राम ने क्षण भर म विनाश कर दिया। उन्होंने विभीषण को राज्य दिया और स्वलाओं का उद्धार किया (९ १५९)। रावण की मृत्यु हो जाने पर मन्दोदरी तथा अन्य रावण पतियाँ विलाप करती हैं। विभीषण शोक करते हुए रावण के कर्म पर पश्चाताप करते हैं और कहते है कि रावण ने किसी का कहना न माना अपना राज भी खोया और प्राण भी खो दिया। (९ १६०)।

युद्ध समाप्त होने पर लक्ष्मण ने सीता को अशोक वाटिका म जाकर देखा। सीता वस्त्राभूषण पहन कर पुष्पक विमान म बैठ कर राम के पास आयी। राम ने सीता को देख मुख फेर लिया इससे सीता मूर्छित होकर गिर पड़ी। सूरदास कहते हैं कि तीनो लोको के स्वामी राम जग उपहास स डर रहे हैं। (९ १६१)। सीता ने लक्ष्मण से अग्नि प्रज्वलित करने को कहा। सीता अग्नि म स्थिर आसन लगाकर बैठ गयी जैसे अगार म स्वर्ण रखा हो। अग्निदेव ने प्रकट होकर य निष्कलक है साक्ष्य दिया। आकाश से देवताओं तथा महाराज दशरथ ने भी यही कहा। तब राम ने सीता को विमान पर बैठा लिया और अयोध्या को चल पडे। (९ १६२)। इन्द्र ने रणक्षेत्र पर अमृत की वर्षा की और कपि भालु तत्काल जय-जयकार करते हुए उठ खड़े हुए।

राम प्रत्यागमन का प्रसग भागवत म भी है। किन्तु सूर का वर्णन मौलिक एव मार्मिक है। इधर राम लका से अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं उधर अयोध्या म माता कौशल्या राम के लौटने के सम्बन्ध म शकुन निकाल रही है। इतने म काग हरी डाल पर आकर बैठ गया। कौशल्या कहती है कि मैं राम लक्ष्मण को अक भर कर देख लू तो तुझे दोनो भर कर दधिओदन खिलाऊगी और जीवन भर तेरा नाम जपूगी।[1] राम अयोध्या आकर अपनी जन्मभूमि को

१—सूरसागर—बैठी जननी करति सगनौती।

लछिमन राम मिलैं अब मोकौं दोउ अमोलक मोती।
इतनी कहत सुकाग उहाँ तैं हरी डार उड़ि बैठ्यौ।
अचल पांखि रॅग तुव नाचा गुन जे आनि उर पैठौ।
जब लौं हौं जीवौं जीवनभरि सदा नाम तब जपिहौं।
दधि ओदन दोना भरि दै हौं अरु भाइनि म थपिहौं।
अब के जौ परचौ करि पावौं अरु देखौं भरि आँखि।
सूरदास सोने के पानी मढ़ौं चोंच अरु पांखि। (९ १६४)।

दर्शन करते हैं। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' का भाव लेकर सूर के राम कहते हैं कि मैं बैकुंठ में न रहना चाहूँगा, अयोध्या के लोगों को देख मेरा हृदय आनन्द से भर जाता है।[1]

सीता लक्ष्मण सहित राम अयोध्या लौटे। उनके आगमन का समाचार सुनकर अयोध्या में प्रत्येक गृह तोरण ध्वजा वन्दन के स्तम्भ जलपूर्ण कलशों से सजाया गया। दधि-दूब-हल्दी फल-फूल-पान कनक थाल में रखकर स्त्रियाँ मंगल गान करती हैं। नगर में वेद ध्वनि और दुन्दुभि होती है। पुरवासी राम की अपार महिमा देखकर मन-बुद्धि विचार भूल गये। (९।१६६)। दूर से लोग राम को विमान से आते देखते हैं। अपने साथियों को राम विमान पर से इंगित कर अयोध्या के निवासियों को दिखा रहे हैं। भरत को देख राम कहते हैं—कपिराज देखो वे भरत आ गये। उनके सिर पर मेरी पादुका है उन्होंने राजवेश त्याग दिया है। शरीर दुर्बल हो गया है उन्होंने संसार को स्वामी-सेवाधर्म सिखाया है। राम ने विमान दूर छोड़ दिया और पैदल आये। भरत ने भूमि पर पड़ कर अभिवादन किया। भेंटते समय राम के आँसू भरत की पीठ पर गिर रहे थे। मानो विरह में जलते हुए भरत की ज्वाला को बुझा रहे हों। राम पुरवासियों से मिले। इस दृश्य से सूरदास के नेत्र सजल हुए (९।१६८)। राम का आगमन सुन कर माताएँ उठकर दौड़ीं। सुमित्रा आरती सजाकर आईं। माताएँ उसी प्रकार दौड़ीं जैसे गाय अपने वत्स को दूध पिलाने के लिए दौड़ती है। नगर में आनन्द-सूचक कोलाहल होने लगा। देवताओं ने दुन्दुभी बजाई नाना वर्ण के पवित्र वस्त्र लगे, वीथियाँ सुगन्धित जल से सींची गयीं, युवतियों ने मंगलगान गाया। स्त्रियाँ गृह के ऊँचे स्थानों पर चढ़कर राम को देखने लगीं लोक-लाज त्याग कर उन्हें देखा, प्राण वारे और आलाप किया। राम को देखने के लिए अयोध्या उमड़ पड़ी—

---

[1]—हमारी जन्मभूमि यह गाउँ।
सुनहु सखा सुग्रीव विभीषण अवनि अयोध्या नाउँ।
देखत बन उपवन-सरिता-सर परम मनोहर ठाउँ।
अपनी प्रकृति लिए बोलत हौं सुरपुर में न रहाउँ।
ह्याँ के बासी अवलोकत हौं आनन्द उर न समाउँ।
सूरदास जौ बिधि न सकोचै तौ बैकुण्ठ न जाउँ।
—सूरसागर (९।१६५)

दसन कौं मन्दिर आनि चढ़ी।

रघपति पूरन चन्द सिंहासन मनु सुर जन्नि तरग ज्या। (९ १७१)

भरत ने मणिमय सिंहासन लाकर रखा। अपन हाथ म स्वण पात्रा म मध दूध तथा जल भरा। राम का आसन पर बठाया और चरण धोया चरणामृत लेकर मस्तक पर धारण किया।[1] राम क प्रति भरत की भक्ति का यह उत्तम ममस्पर्शी वणन है।

सूरदास न राजराय ल्खन हुए राम का कल्पना का है। व कहत हैं कि मैं प्रभ का अपनी विनती किस प्रकार सुनाऊ । राम का जीवन व्यस्त है उन प्राथना सुनान क लिए मुझ समुचित समय नहीं मिलता। रात्रि बीतन लगती ह और एक याम रह जाती है तभी मैं उठकर दौड़ता हू किन्तु सकोच होता है कि सुकुमार स्वामी को नींद स कस जगाऊ। सूय का किरण निकलत ही उनक पास ब्रह्मा इत्यादि अगणित सुरमुनि की भीड़ हो जाती है और मुझ अवसर नहीं मिल पाता कि प्रभु तक पहुँच सकू। तत्पश्चात् राम राजसभा में उपस्थित हैं वहा भीड़ रहती है फिर स्नान भोजन शयन आदि करते हैं। सन्ध्या होते ही नारद गुण गान करन पहुच जाते है । अत कृपानिधि आप ही कहिए कि मैं किस प्रकार अपनी विनती आपको सुनाऊ । कमलापति एक उपाय मैं कर सकता हू यदि आप वह ठीक समझ । आपका नाम पतित उधारन है अतएव आपक पास प्रार्थनापत्र लिखकर भेज दू । (९ १७२) । भक्ति निवेदन करन की महात्माओं की यह अपनी शैली है । गोस्वामी तुलसीदास ने भी श्रीराम क पास विनय पत्रिका भजकर स्वय वाचन का उनस निवेदन किया है ।

—१ सूरसागर—

मनिमय आसन आनि धर।

दधि मधु नीर कनक क कोपर आपुन भरत भर।

× × ×

परसत पाद चरन-पावन दुख अग अग सकल हर।

सूर मन्दिर आमोद चरन जल ज करि माथ धर। (९ १७१)

२—सूरसागर—

तुम्हे कसौ कृपानिधि रघपति किहि गिनती म आऊ।

एक उपाउ करौ कमलापति कहौ तो कहि समझाऊ।

पतित उधारन नाम सूर प्रभु यह रुक्का पहुचाऊ। (९ १७२)।

३—विनय पत्रिका—पद स २७७

सूरसागर में वर्णित रामकथा यहीं समाप्त हो गयी है। भागवत में नवम स्कन्ध के एकादश अध्याय में राम का उत्तर चरित दिया गया है। इसके अन्तर्गत सीता निर्वासन, लवकुश जन्म, सीता का पृथ्वी में प्रवेश, राम परमधामगमन आदि प्रसंगों का वर्णन किया गया है। सूरदास ने इस कथा का वर्णन नहीं किया है। सीता निर्वासन आदि प्रसंग भक्त सूरदास का हृदय कदाचित् आकर्षित न कर सके। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इन प्रसंगों का वर्णन रामचरित मानस में नहीं किया है।

भागवत में वर्णित रामकथा इतिवृत्तात्मक है। सूरदास ने रामकथा के मार्मिक प्रसंगों को लेकर गेय पदों की रचना की है। जहाँ भागवत का अनुसरण उन्होंने किया है वहाँ उन्होंने भागवत का निर्देश भी किया है— सूर कह्यौ भागवत अनुसार, सुक जैसे नृप कौं समुझायौ सूरदास त्यौं कहि गायौ, कहौं कछु गुरु कृपा तैं श्री भागवत अनुसार आदि। रामचरित वर्णन में आरम्भ के पद में इस प्रकार का निर्देश है। शेष वर्णन में सूर का भावुक हृदय मार्मिक प्रसंगों के भाव प्रवाह में बह गया है और उसमें भावों का ही प्रकाशन हुआ है। नवम स्कन्ध में सूर ने १५८ पदों में रामचरित का वर्णन किया है जिसका विवेचन ऊपर किया गया है। इसके अतिरिक्त सूरसागर में ९८ अन्य पद हैं जिनमें राम की चर्चा आ गयी है। दशम स्कन्ध में दो पद ८१६ और ८१७ रामकथा विषयक हैं जिनका सम्बन्ध सूर की अष्टयामसेवा से है। पद ७९ में उन्होंने अवतार वर्णन के सम्बन्ध में रामावतार की चर्चा की है।

१—सूरसागर—पद संख्या— ११ १३ १८ २१ २६ २८ २९ से ३६ तक [illegible] ५४ ५७ [illegible] ६१ ६६ ७१ ७९ [illegible] १०५ ११० १२ [illegible] १४५ १५२ १५८ १७६ १७८ से १८० तक १८२ १८८ १९० २०१ २१९ २२० २३३ २५ २५५ २६१ २६८ २९६ ३०७ ३०६ [illegible] ३१० ३१ ३१८ ३५० ३४० ३४६ [illegible] ७० [illegible] ४२१ ८१६ ८१७ [illegible] ९२० ११८६ १५९ १६०१ १८ १ ३४१ [illegible] ३८३८ [illegible] १६०० ३७४० ३७११ ३७१३ १७१३ [illegible] ३७८६ [illegible] ३८८१, २९०१ ७९ [illegible] ४११२ [illegible], [illegible] ४६२७ [illegible] ४०३४।

परिशिष्ट १—पद सं० २ १२६ १ ३

परिशिष्ट २—पद सं० २ ५ २८०

रामचरित सम्बन्धी पदों का एक संकलन इधर सूरराम चरितावली नाम से प्रकाशित किया गया है।¹ इसमें कुछ अतिरिक्त पद सग्रहीत हैं। किन्तु इन अतिरिक्त पदों की प्रामाणिकता असन्दिग्ध नहीं है। इसमें सूरसारावली रामकथा भी दी गयी है जिसमें रामजन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा संक्षेप में वर्णित है। सूरदास ने वाल्मीकि अवतार तथा रामचरित वर्णन के लिए सतकोटि रामायण की चर्चा की है और कहा है कि रामचरित का वर्णन मैं भवजंजाल को मेटने के लिए करता हूँ—

कछ गछप सूर अब बरनत लघुमति दुरबल बाल।
यह रसना पावन के कारन मेटन भव-जंजाल।

सूरसारावली की कथा में विश्वामित्र यज्ञ रक्षा, सीता स्वयंवर, परशुराम समाधान, वनवास, सीताहरण, लंकाविजय तथा रामराज्य प्रसंगों का वर्णन किया गया है। वर्णन संक्षिप्त है तथा राम महिमा का प्रकाशन इसका मुख्य उद्देश्य है। इधर कतिपय विद्वानों ने सूरसारावली को अष्टछापी सूर-कृत न मान कर उसे अप्रमाणिक रचना बताया है।²

सूरदास के रामचरित वर्णन का आधार अभेदोपासना है। दशम स्कन्ध में यशोदा कृष्ण को पलिका पर सुला रही है। यशोदा कहती हैं—आज मैं लाला तुम्हें एक सरस कथा सुनाऊँगी। यह सुनकर कृष्ण सोकर कथा सुनने लगे। कथा सुनने लगे वसुदेव-नन्दन के हृदय में आनन्द उत्पन्न हुआ। यशोदा ने कथा आरम्भ किया—रघुवंश में एक राजा दशरथ हुए उनके चार पुत्र थे। उनमें मुख्य राम थे जिनकी स्त्री जनकसुता थी। पिता का वचन मान कर उन्होंने राज्य छोड़ दिया तथा भाई स्त्री के साथ वन चले गये। कनक मृग के पीछे परम उदार राजिव लोचन राम दौड़े। रावण सीता को हर ले गया। यह सुनकर नन्द नन्दन कृष्ण की नींद उचट गई। लक्ष्मण धनुष दो लक्ष्मण धनुष दो कहते हुए वे उठ बैठे। यह देख कर जननी यशोदा को बड़ा भ्रम हुआ। (१० १९८)। अगले पद में भी यही वर्णन है। यशोदा कहती हैं—नन्द नन्दन एक कहानी सुनो दशरथ सुत राम थे उनकी सीता रानी थी। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर राम वन जाकर पंचवटी में रहते थे। वहाँ रहते अभिमानी निशाचर रावण ने सीता का हरण किया। इस कथा के कहते हीं—लक्ष्मण धनुष दो कहकर कृष्ण उठ गये और यशोदा का हृदय भयभीत हो गया। (१० १९९)। इस वर्णन में कृष्ण स्वयं राम हो गये हैं

१—सूर राम चरितावली—गीताप्रेस
२—डा० ब्रजेश्वर वर्मा—सूरदास—पृ० ९०
—डा० प्रेमनारायण टण्डन—सूरसारावली—एक अप्रमाणिक रचना।

सूर की अभेद दृष्टि का यह सर्वोत्तम दृष्टान्त है। सूर के लिए राम कृष्ण के ही रूप थे। भागवत में पंचम स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय में किम्पुरुष वर्ष के वर्णन के सन्दर्भ में हनुमान की रामभक्ति की चर्चा के रूप में रामकथा का निर्देश किया गया है। इस अवसर पर भागवतकार ने मनुष्यरूपधारी राम और हरि की अभिन्नता प्रतिपादित की है।[1] यह अभेदोपासना सूर के रामचरित वर्णन का वास्तविक आधार है। ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि सूरसागर की रचना में सूरदास ने भागवत की योजना का अनुसरण किया किन्तु उनका रामचरित वर्णन सर्वथा मौलिक है। उन्होंने समग्र रामचरित को अभेदोपासना के आधार पर स्वतन्त्र दृष्टि से देखा है और इसी रूप में उसका वर्णन किया है। सूरदास ने [illegible] में प्रतिष्ठित रामकथा के स्वरूप को ग्रहण किया। उन्होंने राम के ब्रह्मत्व का प्रतिपादन किया तथा रामकथा के मार्मिक स्थलों को महत्व देकर रामभक्ति की भावना की प्रतिष्ठा की। तुलसी-पूर्व हिन्दी राम-साहित्य के रचयिताओं में सूरदास का स्थान अग्रगण्य है। राम साहित्य में इन महात्मा का योग स्पष्टतया उल्लेखनीय है।

१—सुरोऽसुरो वाऽप्यथ वानरो नरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं
य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति॥ भागवत ५, १९, ८।

अध्याय ८

रसिक सम्प्रदाय में रचित राम साहित्य

रामभक्तों का एक सम्प्रदाय सीता राम की रसिक भावना से उपासना करता आ रहा है। इन भक्तों के सम्प्रदाय को रसिक सम्प्रदाय के नाम से अभिहित किया जाता है। इस सम्प्रदाय के भक्त राम की मधुर लीलाओं का ध्यान करते हैं। उनकी भावना माता राम की आंतरिक सेवा है। पिछले दशक में हुए शोधकार्य से इस सम्प्रदाय की भक्ति पद्धति तथा साहित्य पर विशेष प्रकाश पड़ा है। इसके अनुसार रसिक साधना प्राचीन काल से चली आ रही है। वाल्मीकि रामायण के कतिपय प्रसंगों में रसिक भावना निहित बतायी गयी है। अवान्तर काल में इस भावना का क्रमशः विकास होता रहा है। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में इसका व्यवस्थित रूप दिखाई देता है। रसिक साधना का आरम्भ गुह्य साधना के रूप में हुआ। रामानन्द सम्प्रदाय के अंतर्गत यह साधना विकसित हुई। तथा अद्यतन काल तक चला आ रहा है। रसिक सम्प्रदाय के अन्तर्गत विपुल राम साहित्य की रचना हुई है। हिंदी राम साहित्य में रसिक भावना की साहित्यिक अभिव्यक्ति सर्वप्रथम स्वामी अग्रदास की रचनाओं में उपलब्ध होती है। इनके पूर्व के रसिक महात्माओं की रचनाएँ इस समय उपलब्ध नहीं हैं।

वाल्मीकि रामायण में राम का मर्यादा-स्वरूप चित्रित किया गया है। राम का यही मर्यादा-स्वरूप सर्वाधिक महान हुआ। जनमानस में प्रतिष्ठित इस स्वरूप की एक परम्परा बन गयी जो परवर्ती काल में अक्षुण्ण रहा। गोस्वामी तुलसीदास ने राम के मर्यादा स्वरूप का सर्वोत्कृष्ट अंकन किया इसके आगे किसी अन्य रूप की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। किन्तु उस समय भी राम की रसिक भावना की उपासना प्रचलित थी। डा० भगवती प्रसाद सिंह ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है— गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित के जिस स्वरूप की अभिव्यक्ति अपनी कृतियों में की वह लोकधर्म प्रधान है। उनके राम लोक मर्यादा के रक्षक वेद विरोधी तत्वों के उन्मूलक और लोकधर्म के संस्थापक हैं। किन्तु तुलसी की समकालीन *रामकाव्य-धारा में रामोपासना के एक दूसरे पक्ष के अस्तित्व के भी चिह्न मिलते हैं जिसकी छाप स्वयं तुलसी में भी यत्र-तत्र हो जाती है* —वह है रामावत सम्प्रदाय

में माधुर्य भक्ति का उल्लेख। रामोपासना की इस पद्धति का प्रचार भक्तों के एक सम्प्रदाय विशेष तक सीमित था। सिद्धान्तों की गोपनीयता के कारण उनका उपदेश केवल अन्तरंग और दीक्षित साधकों को ही दिया जाता था। अतएव उनका सारा साहित्य आचार्य पीठों के बस्तों में बंधा अप्रकाशित और अविवेचित ही पड़ा रहा। उधर तुलसी साहित्य के प्रचार से रामचरित के ऐश्वर्य प्रधान अथवा शुक्ल जी के शब्दों में शील शक्ति सौन्दर्य समन्वित रूप की प्रतिष्ठा लोक व्यापक हो गया। उसके आधार पर जनसाधारण क्या साहित्य की गतिविधि से परिचित विद्वानों तक की यह धारणा बन गयी कि रामकाव्य का परम्परागत स्रोत एकमात्र मर्यादाबद्ध अथवा ऐश्वर्यपरक भक्ति को ही लेकर चला है। माधुर्य विषयक जो रचनाएं उसमें यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं वे अत्यन्त अर्वाचीन अश्लील और साहित्य के लिए अशोभन हैं। परन्तु अनुसंधान स्थिति का एक दूसरा ही रूप प्रस्तुत करता है। इधर इस माधुर्य धारा का जो साहित्य उपलब्ध हुआ उससे विदित होता है कि गोस्वामी तुलसीदास की पूर्ववर्ती समकालीन और परवर्ती रामोपासना इसी स्रोत से प्रवाहित थी। वास्तव में इस पद्धति के साधक कवियों की संख्या इतनी अधिक है कि तुलसी समकालीन भक्तिक्षेत्र में प्रमत्त शृंगारी रामभक्ति के एक अपवाद से प्रतीत होते हैं। यह दूसरी बात है कि इस सम्प्रदाय में इस प्रखर प्रतिभा का कोई कवि अवतरित नहीं हुआ जो सूर और मीरा की भांति जन-सामान्य को भी इस दिव्य रस का आस्वादन करा सकता। परिमाण की दृष्टि से सम्पूर्ण रामभक्ति साहित्य का दो तिहाई से अधिक भाग रसिक भक्तों द्वारा ही विरचित मिलता है और प्राचीनता के विचार से साम्प्रदायिक विश्वासों के अनुसार यह क्रम से कम उतनी पुरानी है जितनी दूसरी की ऐश्वर्य प्रधान भक्ति-पद्धति। इसके विकास ग्रन्थों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी काल विशेष में किन्हीं कारणों से इसका प्रवाह क्षीण भले ही हो गया हो किन्तु स्रोत कभी सर्वथा नहीं सूख गया।[1]

रसिक साहित्य के विद्वानों के अनुसार रामभक्ति में मधुर भावना का प्रवाह वाल्मीकि रामायण सहित संस्कृत साहित्य के काव्य आनन्द रामायण रामलिंगामृत भुशुण्डि रामायण, हनुमत्संहिता, बृहत् कोशल खण्ड आदि ग्रन्थों में देखा जा सकता है। रसिक साधना के सिद्धान्त पक्ष में रामतापनी-उपनिषद् मैथिलीउपनिषद् मैथिलीमहोपनिषद् राम रहस्योपनिषद् आदि उपनिषदों का उल्लेख किया जाता है। संहिताओं के रूप में हनुमत्संहिता शिवसंहिता लोमश संहिता अगस्त्य संहिता वाल्मीकि संहिता ब्रह्म

1—रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—पृ ६६।

महिता वसिष्ठ संहिता सदाशिव संहिता सनत्कुमार संहिता हिरण्यगर्भ संहिता ब्रह्म संहिता आदि ग्रन्थों का निर्देश किया गया है। आचार्य भक्त स्वामी रामानन्द अनन्तानन्द कृष्णदास पयहारी आदि को रसिक भावना का पोषक बताया गया है। रसिक साधना के सम्बन्ध में निर्दिष्ट ग्रन्थों की प्रामाणिकता असन्दिग्ध नहीं है। इन ग्रन्थों का रचना-काल तथा उनकी प्रमाणिकता के सम्बन्ध में निर्णय एक कठिन समस्या है। इन ग्रन्थों का सम्यक विवेचन अभी तक नहीं हो पाया है। किन्तु गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व रामभक्ति में मधुर भावना का अस्तित्व सिद्ध अवश्य होता है। स्वामी रामानन्द ने सीता का पुरुषकारत्व तथा ईश्वर जीव सम्बन्ध के अन्तर्गत भार्या भर्तृत्व और भोग्य भोक्तृत्व सम्बन्ध को स्वीकार कर मधुर भावना के महत्व को स्वीकार किया है किन्तु उन्होंने इसका विवेचन प्रस्तुत नहीं किया।[1] आगे चलकर रामानन्द सम्प्रदाय में रसिक भावना का प्रवेश दिखाई देता है।

रसिक भावना का विकास कृष्णभक्ति के अन्तर्गत परम्परा से माना गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि रामभक्ति में मधुर उपासना कृष्ण भक्ति के प्रभाव से उत्पन्न एव विकसित हुई। डा० माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी-पूर्व राम साहित्य की चर्चा करते हुए लिखा है—ठीक इसी समय (सूरदास-काल) रामभक्ति धारा में एक नवीन विकास दिखायी पड़ता है जिसके आदि प्रवर्तक के रूप में अग्रदास जाने हैं जिन्होंने अग्रअली के नाम से रचनाएं की है। अग्रदास ने जानकी की एक सखी की भावना से रामभक्ति की है। अग्रअली की यह मधुर उपासना धारा तुलसी के मर्यादावाद के सामने बन्द दिनों तक दबी रही किन्तु प्राय सौ वर्ष बाद जैसा हम आगे देखेंगे चल थी। मेरे यह निकली और लदनन्तर हिन्दी का सारा रामभक्ति साहित्य इससे सराबोर हो गया। इस मधुर धारा का सूत्रपात निस्सन्देह कृष्णभक्ति के प्रभाव और उसी के अनुकरण से हुआ था।[2] रसिक-साहित्य के विद्वान रामभक्ति में रसिक भावना का स्वतन्त्र विकास सिद्ध करते हैं। डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र ने अपना मत

१—वैष्णवमताब्ज भास्कर—

पुरुषकारपरा विनिगद्यते
सकमला कमला कमलप्रिया
द्रुमससी कुशला तदुपायता
नमितपाय सुपूय पर पर।
—मवादिनाश्वरप्राप्तिर्हेतुस्तत्रातियायन
लक्ष्मीपुरुषकाराया आयतनं पन्नत।

२—हिन्दी साहित्य—द्वितीय खण्ड पृ० ०५।

इस प्रकार व्यक्त किया है— यहाँ अवश्य ही उल्लेख करने की बात यह है कि रामावत सम्प्रदाय के साहित्य मे मधुर भाव का सन्निवेश या विकास केवल कृष्णभक्ति के अनुकरण पर नहीं हुआ है जैसा अधिकांश सधी समालोचक एवं मान्य विद्वानो का मत है। वहाँ स्वयं दास्य प्रस्फुटित होकर माधुर्य में पर्यवसित हुआ है और सम्भव है उस पर उस समय की अन्य साधना पद्धतियों—कृष्णायत सखी सम्प्रदाय वैष्णव सहजिया एवं बौद्ध सहजिया तथा काश्मीर शैव और रसेश्वर दर्शन का प्रकारान्तर से कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। सच तो यह है कि मध्यकालीन समस्त साधनाओं में क्या वैष्णव क्या शाक्त क्या शैव, क्या बौद्ध भाव की उपासना की ही स्वर मुख्य है और शेष समस्त भाव गौण हैं। प्रभाव जो कुछ और जैसा कुछ भी रामावत मधुर उपासना अपने आप में स्वप्रस्फुटित विकसित पल्लवित पुष्पित स्वतन्त्र साधना धारा के रूप में थी इस उत्तराखण्ड में छा गयी थी और फिर भी मर्यादा की मुख्यता के कारण इस तत्त्व का स्वरूप का अवकाश नहीं मिल सका। इसीलिए यह दबी हुई गुप्त परम गुह्य ही बनी रही और आज भी परम गुह्य ही है।[1] हमारी भावना का आरम्भ में ही कृष्णभक्ति में प्रधानता रही है। कालान्तर में इस भावना का रंग कृष्णभक्ति में अधिक गहरा होता गया। मध्य युग में इस भावना के आश्रय से महत्त्व कृष्णभक्त कवियों ने अपूर्व सरस साहित्य की रचना की। इन महात्माओं की वाणी से माधुर्य मध्य युग का सर्वप्रधान भाव बन गया। इसका प्रभाव रामभक्त कवियों पर भी अवश्य पड़ा। गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में भी मधुर भाव की अभिव्यक्ति हुई है किन्तु उसका अंकन मर्यादा के अन्तर्गत ही हुआ है। रसिक साहित्य के परवर्ती रचयिता शृंगार भावना से अधिक प्रभावित हुए हैं।

रामानन्द-सम्प्रदाय में स्वामी अग्रदास के पूर्व रसिक साधना के सम्बन्ध में स्पष्ट सूचना नहीं मिलती। भक्तमाल में नाभादास जी ने स्वामी रामानन्द के शिष्यो प्रशिष्यों को दशधा भक्ति का भण्डार बताया है। नवधा भक्ति के पर दशधा भक्ति का विधान ने प्रेम लक्षणा भक्ति माना है। किन्तु नाभादास जी ने स्वयं इसका विवेचन नहीं किया है। उन्होंने केवल मानदास को रघुनाथ की गोप्य केलि प्रगट करने वाला बताया है। नाभादास स्वामी अग्रदास के शिष्य थे और उनकी साधना रसिक साधना थी। नाभादास ने इसका स्पष्ट करते हुए कहा है कि स्वामी अग्रदास की कृपा से उन्हें भक्ति प्राप्त हुई थी।[2] प्रियादास ने नाभादास को

१—रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना—पृ० ११८।

२—अग्रदास चरित—

श्री अग्रदास करुना करी सिय पद नेह बढ़ाय।

भक्ति पद्धति का संकेत करते हुए उन्होंने नाभा जी को भी राम से अभिन्न किया है। मध्यकाल में रसिक मान्यता के प्रसार के प्रमाण इस प्रकार मिल जाते हैं।

इधर गत शताब्दी में रसिक परम्परा को और प्राचीन सिद्ध किया गया है। अयोध्या के प्रसिद्ध सन्त और मानस के प्रथम टीकाकार महात्मा रामचरण दास के शिष्य महन्त जीवराम जी युगल प्रिया ने 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' की रचना की। इस ग्रन्थ में रसिक सम्प्रदाय के महात्माओं का वृत्त प्रस्तुत किया गया है। युगल प्रिया जी का स्वर्गवास सन् १८५७ में चिरान (छपरा) में हुआ था। इस प्रकार 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' अर्वाचीन किन्तु सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। रसिक सम्प्रदाय में इस ग्रन्थ को मान्यता प्राप्त है। रसिक प्रकाश भक्तमाल में शठकोप को राम का आदि पार्षद कहा गया है। रसिक साहित्य के निर्माता के अनुसार कुल-शेखर आळवार की भक्ति रसिक भाव की थी। कुलशेखर रामभक्ति में निमग्न रहते थे। उनका राम के प्रति प्रेम उन्माद था जो भक्ति के आवेश के रूप में प्रकट होता था। प्रपन्नामृत के अनुसार कुलशेखर ने इष्ट की प्रेरणा से अपनी पुत्री का विवाह श्रीरंग के साथ कर दिया था। गोदा आलवार की प्रेमभक्ति प्रसिद्ध है। गोदा की साधना

नाभा मन आनन्द भयो महल टहल निज पाय।
अग्र बाल्मीकादि ज्यों चन्द्रकलादिक थाय।
जगत नाम सिय सहचरी रसिक दिये हैं नाम।
तिनकी कृपा कटाक्ष ते अग्र समनि गुर पाय।
नाभा उर आनन्द रहे रसिक जनन गुण गाय।

१—भक्तमाल (रूपकला) पृ० ४

पचरंग माल पचरंग फूल थाके नीके
पीके पहिराइबे को रचिके बनाई है।
वैजयन्ती धाम भावक्ता अभिरामा नाम
लाइ अभिराम स्याम मति ललचाई है।
धारी उर प्यारी कहू करत न न्यारी
अहो देखि न्यारी ढरि पावन लो आयी है।
छवि अति भारी नाम नाभिन सुधारी नाल
जाल बस रूप जाई थान जाति पाई है।

२—रसिक प्रकाश भक्तमाल पृ० १२

प्रथम जो शठकोप आदि पारषद आय।

का अवतार भी कहा जाता है। इस प्रकार वैष्णव आचार्य राम के साथ सख्य, दास्य, वात्सल्य आदि भाव से सम्बन्ध जोड़ते थे। सीता का पुरुषकारत्व वरवरमुनि और लोकाचार्य स्वीकार करते थे। स्वामी रामानन्द ने भी सीता का पुरुषकारत्व स्वीकार किया है। युगल प्रिया जी ने रामानन्द को रहस्य उपासना का उद्धारक कहा है। स्वामी रामानन्द के शिष्य अनन्तानन्द को भी युगलप्रिया जी ने रसिकोपासक बताया है किन्तु इनके सम्बन्ध में और कोई सूचना नहीं मिलती। रसिक प्रकाश भक्तमाल के अनुसार कृष्णदास पयहारी माता जी के उपासक थे और उनकी भक्ति मधुर भाव की थी।[1] डा० भगवती प्रसाद सिंह ने इस बात की सूचना दी है कि उन्हें कृष्णदास पयहारी की एक लघु रचना प्राप्त हुई है। इसका विषय राजयोग है। यह रचना अभी प्रकाशित नहीं हुई है। इसके अतिरिक्त कृष्णदास पयहारी की रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं। रामानन्द सम्प्रदाय की तपसी शाखा में कृष्णदास पयहारी की योग सिद्धियों की प्रसिद्धि अवश्य है।

स्वामी अग्रदास के पूर्व के रामानन्द सम्प्रदाय के महात्माओं की रामचरित संबंधी रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं जो मिलती भी हैं वे पूर्ण प्रामाणिक नहीं कही जा सकतीं। इन महात्माओं को रसिकोपासक स्वीकार करने के लिए पर्याप्त सामग्री की आवश्यकता है। रसिक सम्प्रदाय की मान्यता जो भी हो जब तक महात्माओं की प्रामाणिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं हो जाती तब तक इस सम्बन्ध में कोई मत निश्चित नहीं किया जा सकता। कृष्णदास पयहारी के शिष्य स्वामी अग्रदास हुए जो रसिक सम्प्रदाय के आद्याचार्य कहे गये हैं। अपनी रचनाओं में ये अग्रअली अग्रसखी आदि छाप रखते थे। इससे इनकी रसिक भाव की साधना की पुष्टि होती है। ये सखीभाव से दिव्य दम्पति की रसमयी लीला का ध्यान करते थे। उनकी बाह्य सेवा दास्यनिष्ठापरक थी।

१—रसिक प्रकाश भक्तमाल पृ० १२

> आदि शिष्य प्रधान एकादश चतुर प्रधानी।
> बड़ अनन्तानन्द कन्द शृंगार बखानी।
> रसिक समाधि प्रबन्ध कृपा उर लाह लहें है।
> जनक सुता में कृपा राम रस पूरि रहे हैं। इत्यादि।

२—वही पृ० १ कृपा अनन्तानन्द रसिक पूरन पयहारी।

> कृष्णदास रसरीति उपासक सिय व्रतधारी।
> पुष्कर गया भजन भूमि प्रगटी सिय प्यारी।
> पूर्व सूचिका धरी प्रिय लहु सुधारी।

अग्रदास जी ने मधुर भाव की उपासना करने वालों को 'रसिक' नाम से सम्बोधित किया है। इस कारण उनके सम्प्रदाय का नाम 'रसिक सम्प्रदाय' प्रसिद्ध हो गया है। इस सम्प्रदाय को जानकी सम्प्रदाय, जानकी वल्लभी सम्प्रदाय, रहस्य सम्प्रदाय और सिया सम्प्रदाय भी कहा जाता है। किन्तु इसका सर्व प्रचलित नाम रसिक सम्प्रदाय है।

नाभादास जी ने रसिक भाव को ऐक्य और शृंगार के बीच माना है। रसिक उपासक सीता राम से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं, सखी अथवा सखा भाव से दिव्य दम्पति की सेवा करते हैं। ये भक्त हनुमान का आचार्यत्व स्वीकार करते हैं और रामचरित की परम्परागत मर्यादा को अक्षुण्ण रखते हैं। सीता राम सेवा का सुख प्राप्त करना तथा दिव्य दम्पति की मधुर लीलाओं का आनन्द प्राप्त करना इन भक्तों का लक्ष्य होता है। रसिक साधकों की साधना पद्धति की चर्चा करते हुए डा॰ भगवती प्रसाद सिंह ने लिखा है—रामभक्त रसिकों की एक निश्चित साधना पद्धति है जिसका अपना अलग साहित्य है। सम्प्रदाय के प्रवर्तक अग्रदास जी से लेकर रसिकाचार्य रामचरण दास जी तक शृंगारी शाखा में और रामसखे जी से लेकर शीलमणि जी तक सख्य शाखा में जिन शास्त्रों एवं साम्प्रदायिक ग्रन्थों के आधार पर रसिक भक्ति के सिद्धान्त विकसित हुए हैं उनमें वेद, उपनिषद्, पुराण, संहिताएं, वाल्मीकि रामायण, सब धर्म एवं शाक्त तन्त्र, भागवत, आलवार भक्त, शंकराचार्य की रचनाएं, हनुमन्नाटक, भुशुंडि रामायण, महा रामायण तथा सत्योपाख्यान विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ एक बात यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि रसिक सम्प्रदाय के अन्तर्गत यों तो पाँचों रसों की साधना अन्तर्निहित मानी गयी है किन्तु उसका क्रमबद्ध इतिहास शृंगारी और सख्य शाखाओं में ही मिलता है। शान्त को ये लोग रसिकों की साधना मानते हैं। अतएव इस ओर ध्यान कम गया है। इस भाव के उपासक भी बहुत थोड़े हैं। वात्सल्य और दास्य शुद्ध रसिक भाव वाले माने जाते हैं किन्तु इन भावों के साधकों की भी संख्या अपेक्षाकृत न्यून है। निदान इनकी उपासना पद्धतियों का विवेचन व्यवस्थित रूप से नहीं हुआ है। भक्ति रसों में शृंगार और सख्य को ही विशेष महत्त्व दिया गया है क्योंकि अन्य रूप से इसी में आ जाते हैं। शेष प्रायः अंग के रूप में हैं। अतः उनमें से बहुतों की साधना मिश्रित रूप में पायी जाती है। इस शाखा में अनेक संत ऐसे मिलते हैं जिनकी साधना पद्धति पूर्वोक्त धारणा की पुष्टि करती है। महात्मा रामराघवदास दास्य भाव के उपासक होते हुए शृंगारी साधना में श्रद्धा रखते थे और पण्डित उमापति जी उपास्य पर वात्सल्य भाव रखते हुए भी उनकी शृंगारी और सख्य लीलाओं का गान करते थे। इसी प्रकार श्री रामरस रंगमणि दास्यमिश्रित भाव के उपासक थे।

विकास क्रम से पचरसा में शृंगारी साधना का सूत्रपात पहले हुआ। अतएव सव्यवस्थित एवं शृंखलाबद्ध साधनात्मक साहित्य उसी का मिलता है। सख्याचार्यों ने थोड़ा हेरफेर करके जो अपनी उपासना पद्धति चलाई वह सभी भाव की ही पुरुषाकार कल्पना पर आधारित है। इन दोनों की साधना प्रणाली में कोई अंतर नहीं। उदाहरणार्थ जैसे मंजरी दिव्य दम्पति की केलि में सहायक उसी रूप में मानी जाती हैं जैसे मंजरी सखियाँ। प्रिय सखा उपास्य से उसी प्रकार व्यंग्य विनोद करते जिस प्रकार जानकी जी की समवयस्क सखियाँ। सुहृद सखाओं की वात्सल्य भाव रखते हुए भी राम की शृंगारी लीलाओं के चिंतन की स्वतंत्रता है। दोनों में भेद केवल इतना है कि सखियों को जिस प्रकार उपास्य की अंतरंग सेवा का एकाधिकार प्राप्त है उसी प्रकार सखा राम की बहिरंग सेवा—बालक्रीड़ा आखेट सवारी युद्ध यात्रा देश रक्षा तथा राज्य प्रबन्ध आदि में मुख्य सहायक माने जाते हैं। अतएव उनकी सेवा में केवल सेवा के स्वरूप में अंतर है।

रसिक संतों के अनुसार साधना का परम लक्ष्य दिव्य दम्पति की सेवा सुख और युगल मूर्ति के लोकोत्तर रस का आस्वादन है। इन दोनों की प्राप्ति उपास्य के सान्निध्य से ही हो सकती है अतएव अपने दिव्य शरीर की सखी सखा दासादि किसी एक रूप में ध्यान कर प्रभु की सेवा में स्वयं को अर्पित करना ही उनका मुख्य साधन माना गया है। इस साम्प्रदायिक साहित्य में निकुंज सेवा रस महल माधुर्य आदि नामों से अभिहित किया गया है। युगल स्वरूप की उपासना में ये सभी रस प्राप्त हो जाते हैं। अतएव रसिकोपासना का यह एक अनिवार्य अंग बना गया है। रामलीला में उपास्य के आनन्दमय स्वरूप की चरम अभिव्यक्ति होती है। वह अवतारी राम की चिन्मय लीला है अतः उसमें प्रवेश जीव का परम पुरुषार्थ माना जाता है। रसिकाचार्यों ने साधनावस्था में भी राम एवं प्रभु की शृंगारिक चेष्टाओं का चिन्तन कर उस दिव्य-आनन्द का आस्वादन करने की व्यवस्था की है। रसिक साधना की चार अवस्थाएं बताई गई हैं। प्रथम अवस्था में साधक आचार्य की शरण में जाता है और सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करता है। साम्प्रदायिक मान्यताओं को हृदयंगम कर लेने के पश्चात साधक दूसरी अवस्था में भावदेह से उपास्य की सेवा करने में समर्थ होता है। तत्पश्चात साधक उपास्य की सेवा में प्रविष्ट होता है। चौथी अवस्था में वह इष्ट की सेवा करता हुआ सुख का अनुभव करता है।

१—रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—पृ० १७३।

रसिक साधना के अधिकारी शुद्ध आचार विचार वाले संत जन माने गये*। किन्तु मधुर भाव की प्रधानता के कारण रसिक साधना में विकृतियों के लिए अवकाश रहता है। आदि कवि ने रामचरित का चित्रण बड़े चरित्र के रूप में किया था। वह मर्यादापुरुषोत्तम राम का चरित था। रसिक साहित्य में रमण करने वाले जानकी गृह सम्राट आत्मविस्मृत और शृंगारमय रसोन्मत्त विलासी स्वर्गिनाम राम की कल्पना की गयी। राम के मर्यादा स्वरूप और रसिक स्वरूप में महान विपर्यय दिखायी देता है। अतिशय शृंगार भावना के कारण रसिक साधना में विकृतियाँ परिलक्षित हुई जिनका निर्देश करते हुए आचार्य शुक्ल ने क्षोभ प्रकट किया है—अत्यंत खेद की बात है कि इधर कुछ दिनों से एक दल इस रामभक्ति को भी शृंगारी भावनाओं में लपेट कर विकृत करने में जुट गया है। तुलसीदास जी के प्रसंग में हम दिखा आये हैं कि कृष्णभक्त सूरदास जी की शृंगारी रचना का कुछ अनुकरण गोस्वामी जी की गीतावली के उत्तरकाण्ड में दिखायी पड़ता है पर वह बड़े आनन्दोत्सव तक रह गया है। इधर आकर कृष्णभक्ति शाखा का प्रभाव बहुत बढ़ा। विषय वासना की ओर मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण कुछ दिनों से रामभक्ति मार्ग के भीतर शृंगारी भावना का अनर्गल प्रवेश हो रहा है। भगवान राम के दिव्य पुनीत चरित्र के कितने घोर पतन की कल्पना इन लोगों के द्वारा हुई है यह दिखाने के लिए रचना (उद्धरण) बहुत है। लोक पावन आदर्श का ऐसा बीभत्स विपर्यय देख कर चित्त क्षुब्ध हो जाता है। रामभक्ति शाखा की अनुसन्धान करने वालों को सावधान करने के लिए ही इस रसिक शाखा का यह थोड़ा सा विवरण दे दिया गया है। गुह्य रहस्य, माधुर्य भाव और यौगिक समावेश से किसी भक्तिमार्ग की यही दशा होती है। गोस्वामी जी ने शुद्ध सात्विक और पुष्ट रूप में जिस राम भक्ति का प्रकाश फैलाया था वह इस प्रकार विकृत की जा रही है।[1] आचार्य शुक्ल ने अपना मत लगभग पचास वर्ष पूर्व व्यक्त किया था जब रसिक साहित्य बहुत उपलब्ध नहीं था। गत वर्षों में इस साहित्य के सम्बन्ध में तत्परता के साथ खोज की गयी है और बड़े परिमाण में रचनाओं का पता भी लगा है। रसिक सम्प्रदाय के आधुनिक साधकों ने वाल्मीकि रामायण में रसिक भावना खोजने का प्रयास किया है और कतिपय विद्वानों ने मत व्यक्त किया है कि गोस्वामी तुलसीदास की उपासना रसिक भाव की थी। महर्षि वाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदास में रसिक

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १५–६।

२—चन्द्रबली पाण्डेय—तुलसी की गुह्य साधना—नया समाज दिसम्बर १९५३ —रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—पृ० १० ११।

भावना का आरोपण विरुष्ट कल्पना मात्र है। यह प्रस्तुत लेखक का निश्चित मत है। कामल मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति और रसिक गुह्य साधना में अन्तर है जिसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। वाल्मीकि सूर तुलसी आदि वीतराग महात्माओं ने भक्ति क्षेत्र में अपने इष्ट के चरित्र शृंगार पक्ष का उच्च धरातल पर चित्रण किया जो उनकी मर्यादा का पोषक है। अग्रदास नाभादास तथा उनके बाद के रसिक राम साहित्य में शृंगार भाव की अधिकता के कारण विकृति आ गयी। इस प्रकार के अश्लील एवं विकृत साहित्य के अस्तित्व को रसिक साहित्य के विद्वानों ने भी स्वीकार किया है किन्तु उनका कहना है कि यह अनाधिकारियों द्वारा रचित है उसे पृथक कर दिये जाने के बाद भी प्रचुर साहित्य उपलब्ध है जिसे रसिक परम्परा के अन्तर्गत लिया जा सकता है और जिसका अध्ययन अनुशीलन वांछनीय है। प्रस्तुत लेखक को इस साहित्य का जितना अंश देखने को मिल सका वह साहित्यिक दृष्टि से सामान्य कोटि का जान पड़ता है। रसिक महात्माओं में स्वामी अग्रदास और नाभादास की रचनाएँ महत्वपूर्ण है। यहाँ केवल स्वामी अग्रदास के सम्बन्ध में विचार किया जायगा।

स्वामी अग्रदास के जीवन के सम्बन्ध में विशेष सूचना उपलब्ध नहीं है। उनके स्थिति-काल के सम्बन्ध में कोई प्राचीन निश्चयात्मक उल्लेख नहीं मिलता। साम्प्रदायिक मान्यता है कि उनका जन्म जयपुर के किसी गाँव में सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था। नाभादास जी ने रामानन्द सम्प्रदाय की जो परम्परा प्रस्तुत की है उसके अनुसार स्वामी अग्रदास स्वामी रामानन्द की चौथी पीढ़ी में आविर्भूत हुए थे। स्वामी रामानन्द के शिष्य अनन्तानन्द के शिष्य कृष्णदास पयहारी उनके गुरु थे। कृष्णदास पयहारी ने गलता में वैष्णवों की पहली गद्दी स्थापित की थी। स्वामी रामानन्द की मृत्यु संवत् १४६७ विक्रमी में अगस्त्य संहिता के साक्ष्य पर सम्प्रदाय में मानी जाती है। स्वामी रामानन्द के स्वर्गवास की यही तिथि विद्वानों ने स्वीकार की है।[1] स्वामी रामानन्द के पश्चात् उनके शिष्य अनन्तानन्द हुए और अनन्तानन्द के शिष्य कृष्णदास पयहारी हुए जिन्होंने गलता गद्दी की स्थापना की। यदि इन दो महात्माओं के लिए सौ वर्ष का समय माना जाय तो स्वामी अग्रदास का आविर्भाव काल विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध ठहरता है। इस प्रकार स्वामी अग्रदास महात्मा सूरदास के समकालीन ठहरते हैं स्वामी अग्रदास का संवत् १६ २ में वर्तमान होना माना जाता

1—डा० बद्रीनारायण श्रीवास्तव—रामानन्द सम्प्रदाय—पृ० ९४

है।[1] स्वामी अग्रदास का यह स्थितिकाल राम साहित्य के विद्वानों ने स्वीकार किया है।

सम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार जीवन के आरम्भ काल में ही स्वामी अग्रदास पयहारी जी के शिष्य हो गये थे। पयहारी जी की मृत्यु के उपरान्त अग्रदास के वहीं गलताजी का आवास गलता गद्दी के उत्तराधिकारी का। कुछ काल तक अग्रदास जी गलता में ही रहे बाद अनन्तर वे अपने शिष्य नाभादास के साथ जयपुर के निकट रेवासा नामक स्थान में चले गये और वहां गद्दी स्थापित की। वहीं पर इनके आदेश से नाभादास ने भक्तमाल की रचना (संवत १६४२) की थी। नाभादास गोस्वामी तुलसीदास के उत्तरसमसामयिक थे। नाभादास ने अपने गुरु स्वामी अग्रदास के भक्त जीवन के अतिरिक्त और कोई सूचना नहीं दी है। भक्तमाल से ज्ञात होता है कि अग्रदास जी आचारनिष्ठ महात्मा थे। वे प्रत्येक क्षण सीताराम की उपासना में लगे रहते थे। वाटिका से उन्हें विशेष प्रेम था। सीताराम के विहार स्थल अयोध्या के अशोक वन और प्रमोद वन की कल्पना के आधार पर उन्होंने अपने आश्रम में एक वाटिका लगाई थी जिसका सारा काम वे स्वयं अपने हाथों से करते थे। सीताराम का अखंड नाम जप वे करते रहते थे। उपासना के बिना उन्होंने अपने जीवन का एक क्षण नहीं बीतने दिया। रूपकला ने नाभादास के छप्पय की टीका इस प्रकार की है—आपके स्थान के समीप पुष्प फलादि युक्त वाटिका थी उसको श्री सीताराम विहारस्थल अशोकवन और प्रमोद वन की भावना से मानकर उसमें प्रीति करते थे सो प्रीति आपकी लोक प्रसिद्ध हो गया क्योंकि आप निज कर कमलों से ही उसका सब कृत्य अर्थात जल तुलसी आदि देना की कल्पना

१—आचार्य शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १४६
२—डा० भगवती प्रसाद सिंह नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका वर्ष ६६ अंक २ ३ ४ पृ० ३८३
डा० माताप्रसाद गुप्त—हिन्दी साहित्य निर्माय खण्ड पृ० ३०७
—भक्तमाल—छप्पय ४१
सदाचार ज्यों सन्त प्राप्त जैसे करि आये।
सेवा सुमिरन सावधान चरण राघव चित्त लाये।
प्रसिद्ध बाग सो प्रीति सुहथ कृत करत निरन्तर।
रसना निर्मल नाम मनहुं बर्षत धाराधर।
(श्री) कृष्णदास कृपा करि भक्ति दत्त मन बच क्रम करि अटल ल्यो।
(श्री) अग्रदास हरिभजन बिन काल वृथा नहिं बित्तयो।

साधना रूप पताकिका को फहराते इत्यादि निरन्तर किया करते थे और रसना (जिह्वा) से श्री सीताराम युगल नाम इस प्रकार से सप्रेम उच्चारण किया करते थे कि जैसे कोई अलौकिक आनन्द का मेघ मधुर मधुर शब्द करके बरसता है—(भक्तमाल सटीक रूपकला पृ० ३१८ १९)। भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास ने आमेर के राजा मानसिंह के स्वामी अग्रदास के दर्शनार्थ रैवासा जाने का उल्लेख किया है।[1] यह सूचना रीवा नरेश रघुराजसिंह ने भी राम रसिकावली में दी है।[2] राम रसिकावली के अनुसार मानसिंह स्वामी अग्रदास के शिष्य थे।

रसिक सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार शठकोप (आठवीं शताब्दी) से लेकर कृष्णदास पयहारी तक रसिक साधना परिपुष्ट हो चुकी थी और उसका प्रसार भी हो चुका था। यह साधना आचारनिष्ठ महात्माओं में रहस्य साधना के रूप में प्रचलित थी। स्वामी अग्रदास के समय तक इस साधना को संगठित रूप देने की आवश्यकता का अनुभव होने लगा था। स्वामी अग्रदास ने रसिक सम्प्रदाय का संगठन किया और अपनी रचनाओं में रसिक रहस्य साधना की व्याख्या की।

१—भक्तमाल (रूपकला) पृ० ३२

दरसन काज महाराज मानसिंह आयो
छायो बाग माझ बैठे द्वार द्वारपाल हैं।
भारि के पतौवा गये बाहिर ले डारिबे को
देख्यो भारभार, रहे बैठि ये रसाल है।
आय देखि नाभा जू ने साष्टांग करी
ठाढ़े भये जन आगे चले अनुवनि जाल है।
राजा मग चाहि हारि आनि के निहारि तन
जानी आप जानी भये दासनि दयाल हैं।

२—रघुराजसिंह—राम रसिकावली—

मानसिंह जयपुर को राजा सो अपनो ले सकल समाजा।
अग्रदास गुरु आज्ञाकारी रहै समीप चरन रज धारी।
एक समय सो सहज सवारी मानसिंह नृप रह पगुधारी।
अग्रदास दरसन के हेतू गये दरसन किये मोद निकेतू।
दस कल्प पितु गुरु तहि राहो सादर परम बन्दन करि गाहो।
नाभा को पुनि अग्र के यहि विधि भगति उपार।
मान महीपति के तथा भा कहि पाव पार।

वे प्रतिभाशाली संगठनकर्त्ता सिद्ध हुए। स्वामी अग्रदास द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय का व्यापक प्रसार हुआ। उत्तर भारत में अनेक गद्दियाँ उनके शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा स्थापित की गयीं। इस सम्प्रदाय में अनेक महात्मा हुए जिन्होंने राम साहित्य की रचना की। रसिक साधना में शृंगार की प्रधानता है किन्तु अग्रदास ने आचार पर विशेष बल दिया। वे स्वयं पवित्र एवं निर्मल चरित्र वाले महात्मा थे। उन्होंने अधिकारी व्यक्तियों को ही रसिक साधना का रहस्य बताने का उपदेश दिया। अग्रदास ने सीताराम की दिव्य एवं रसमयी लीलाओं के ध्यान तथा मानसी सेवा को प्रश्रय दिया। उन्होंने बताया कि रसिक साधना अनुपम है। इसके अधिकारी सात्विक साधक ही है।[1] इस प्रकार रसिक साधना में सदाचार निष्ठा को अग्रदास ने प्रमुख तत्व माना और रसिक साधना को अधिकारी व्यक्तियों तक ही सीमित रख भक्ति के दृढ़ आधार पर सम्प्रदाय का संगठन किया। स्वामी अग्रदास की कृपा से रसिक साधना के पल्लवन का साक्ष्य नाभादास जी ने भी दिया है।[2]

रचनाएँ—अग्रदास की रचनाओं के सम्बन्ध में सन् १९ की सभा खोज रिपोर्ट में पहले ध्यान मंजरी की सूचना दी गयी। हस्तलेख में २७ पत्र तथा १ ६ श्लोक बताये गये। सन् १९ ३ की खोज रिपोर्ट में हितोपदेश उपखाणा बावनी की सूचना दी गयी तथा हनुमान महाराज बनारस के पुस्तकालय में सुरक्षित बताया गया। हस्तलेख का लिपिकाल संवत् १७५३ तथा इसमें ५४ कुण्डलियाँ

१—अग्रदास कुंडलियाँ—

रस शृंगार अनूप है तत्वें को कोउ नाहिं।
तुल्य को कोउ नाहिं साधु अधिकारी जग में।
कंचन कामिनि देखि हृदय लागत तन में।
जावन जग के भोग राग सम त्यागउ हाला।
पिय प्यारो रस सिन्धु मगन नित रहत अनन्ता।
नहि अग्र' अस मन क सरि लायक जग माहिं।
रस सिंगार अनूप है तत्व को कोउ नाहिं।

२—श्री अग्र के गुरु कृपा ते याते नवरस कर।
सरस रचना रति छवि परा नवर सुरति।

—खोज रिपोर्ट १ ०१-११

—सभा खोज रिपोर्ट १ ० पृ० ६७ संख्या ७७

४—सभा खोज रिपोर्ट १ ३ पृ ६४ सं ६

ने की सूचना दी गयी।[1] सन १९०६-८की खोज रिपोर्ट में ध्यान मजरी और कुण्डलिया की पुनः सूचना दी गयी।[1] ध्यान मजरी में ८ पन्ने २०५ श्लोक तथा प्राप्ति स्थान हरिपुरा बताया गया। सन १९०० ११ के खोज विवरण[3] में ग्रन्थ रामभक्ति के पद की सूचना नाभा नारायण दास के नाम से दी गयी। विवरण के निरीक्षक ने मत व्यक्त किया कि इस ग्रंथ के पदों में अग्रदास की छाप है अतएव इसके कर्ता स्वामी अग्रदास हैं। हस्तलेख में ८७ पत्र २ श्लोक तथा इसका लिपिकाल संवत १८८० बताया गया। प्राप्ति स्थान मन्दिर लक्ष्मण शरण लक्ष्मण किला अयोध्या बताया गया। खोज करने पर प्रस्तुत लेखक को उक्त हस्तलेख लक्ष्मण किले में नहीं मिला। सन १९२२ २४ की खोज रिपोर्ट[1] में राम ध्यानमजरी की सूचना फिर दी गयी। सन १९३१ की खोज रिपोर्ट में ध्यानमजरी की पुनः सूचना देते हुए उपदेश बावनी कुण्डलिया की भी उल्लेख किया गया। आचार्य शुक्ल ने अग्रदास की चार रचनाओं की सूचना दी था—हितोपदेश उपखाण बावनी ध्यानमजरी रामध्यान मजरी और कुण्डलिया[5] वास्तव में दो ही रचनाएँ हैं—ध्यानमजरी और कुण्डलिया। अग्रदास की एक रचना राम ज्योनार मिली है। इनकी संस्कृत में एक रचना अष्टयाम मिलती है। अग्रदास की पदावली डा० भगवतीप्रसाद सिंह ने प्रकाशित कराया है। इसके सम्बन्ध में उन्होंने बताया है— तुलसी के पूर्ववर्ती रामभक्ति साहित्य में अग्रदास की पदावली का विशेष महत्व है। इसमें इक्यावन पद संकलित हैं जिनमें एक पद (संख्या १०) नाभादास का है। इससे विदित होता है कि अग्रदास की परम्परा में किसी संत ने पदावली का वर्तमान रूप रचयिता के दिवंगत होने के बाद दिया और आचार्यशिष्य से ही परमशिष्य नाभादास की रचना को उसमें स्थान दे दिया।[6] संगीत रागकल्पद्रुम निर्वासिंह मराज तथा अन्यत्र भी अग्रदास के कुछ फुटकर पद मिलते हैं जिन्हें सम्प्रदाय में मान्यता प्राप्त है। अष्टयाम पदावली स्वामी जानकी शरण (मधुकर) द्वारा संकलित की गयी है जिसमें अन्य संतों के साथ अग्रदास के पद संकलित हैं। अग्रदास की एक अन्य रचना अग्रसागर'

१—खोज रिपोर्ट—१९ ६-८ पृ० ५८ सं० १२१
२—खोज रिपोर्ट—१९ -११ पृ० १ सं० २०२
—खोज रिपोर्ट—१९२२–२४ प २ स १
४—खोज रिपोर्ट—१९ ,१ प १३ सं० ,
५—आचार्य शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० १६६
६—नागरी प्रचारिणी पत्रिका—१९६६ अंक २ ४—पृ ३३४–,४६

की सूचना मिलती है। रसिक प्रकाश भक्तमाल में युगल प्रिया ने इसका उल्लेख किया है।[1] लिखा है कि महात्मा रामचरण दास ने इस ग्रंथ का अध्ययन रेवासा में अपना निजी परिवर्तित करके किया था। ध्यानसागर अथवा शृंगार सागर उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार अवतक की खोज में मिली स्वामी अग्रदास की हिन्दी रचनाएं ये हैं—

१—ध्यान मंजरी अथवा रामध्यान मंजरी
२—कुंडलिया अथवा हितोपदेश उपखाण बावनी
—राम ध्यान और
४—पदावली

ध्यानमंजरी—ध्यानमंजरी स्वामी अग्रदास की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। रसिक भक्तों के ध्यान के लिए इसकी रचना की गयी है। रसिक सम्प्रदाय में इसकी प्रतिष्ठा गीता की भांति है। इस ग्रंथ में अवधपुरी तथा सीताराम का जिनका ध्यान रसिक भक्त निरन्तर करते हैं उन्हीं का वर्णन किया गया है।

ध्यानमंजरी के सात हस्तलेख आर्यभाषा पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। इन हस्तलेखों को प्रस्तुत लेखक ने देखा है। हस्तलेख संख्या ८१ । ७२ का लिपिकाल संवत १९१४ है। एक अन्य हस्तलेख संख्या ८१ ।७६९ का लिपि काल संवत १८९८ है। हस्तलेखों में पदों की संख्या ७० है। कुछ अन्य प्रतियों में पदों की संख्या ८ है। हस्तलेखों में पाठभेद कम है किन्तु इस रचना का सम्पादन होना अभी शेष है। इसकी एक प्रति रस रत्नमणि का मकरन्दमाधुरी टीका के साथ प्राप्त है। ध्यान मंजरी अन्य स्थानों में भी उपलब्ध हुई है।

ध्यानमंजरी में पहले अवधपुरी का भव्य वर्णन है।[2] अयोध्या के भवन स्वर्ण

१—रसिक प्रकाश भक्तमाल—
अग्रस्वामि श्री अग्रमहल्ल जनक लली को।
पुष्पवाटिका मिलन बन्धु प्रिय भांति भली को।
चन्द्रकला प्रिय नाम स्वाद सिय बस करि राख्यो।
प्रगट स्वामि पद ध्यान रस मन मन चाख्यो।
ग्रंथकार— शृंगार रस-सागर मंजरी ध्यान को।
भव आभय पद रसिक गन पद जान को।।१ ।

२—ध्यानमंजरी—
अवधपुरी निज धाम परम अति सुन्दर राजै।
हाटक मणिमय सदन भवन की कांति विराजै।

और मणियों से खचित हैं और नयनाभिराम चित्रों से सज्जित हैं। नगर तोरण पताकाओं से विभूषित है और रत्नों के प्रकाश से प्रकाशित है। अवधपुरी की अपूर्व शोभा देखकर सूर्य का रथ ठहर जाता है देवता हर्षित हो पुष्प वर्षा करते हैं। तदनन्तर धर्मशील पुरवासियों का संक्षेप में चित्रण है जो राम की सुयश वर्णन करते रहते हैं। अवधपुरी का ध्यान सुखप्रद और नामोच्चारण अघनाशक है। नगर की वापियाँ कूपों एवं तड़ागों में निर्मल जल भरा रहता है। उनके सोपान रत्न जटित हैं और उनमें प्रफुल्ल कल्हार लगाए गए हैं। सघन वृक्षों की छाया में पक्षिगण कूजते हैं। चारों ओर उपवन हैं जिनमें कोकिल कीर कपोत की ध्वनि सुनाई देती है मानो वे प्रभु का सुयश वर्णन कर रहे हों। वृक्ष फल से लदे हुए हैं मानो पथिकों को देने के लिए भुजाएँ फैलाए हुए हों। निकट ही सरयू की पुनीत उज्वल धारा है जो मुक्ति देने के लिए बैकुण्ठ की निसेनी सी जान पड़ती है। नदी के तट पर नर नारियों की भीड़ रहती है मानो आकाश से देवगण उतर आये हों। नदी में प्रभूत जल है और धारा के प्रवाह का शब्द सुनाई देता है। तट पर

पौरि द्वार अति चारु सुहावन चित्रित सो हैं।
चपला चमकत देखत मन मोहै।
भवन भवन चित्राम चित्र की रचना सोहै।
वनज भुवन की पाँति काँति मोहन मन जो है।
तोरण केतु पताक ध्वजा तहँ विमल सुहाई।
मानो रघुवर हित करत आय त्रिभुवन छवि छाई।
बीथी डगर बजार रतन रचि जाति उजासा।
रहन न पावै तिमिर सरस हो हीन प्रकासा।
लखि पुरी छवि भरी भव्य के अटकत रथ रवि।
हरषहिं बरषहिं सुमन विवुध जन निरखि पुरी छवि।
१—वही—निकटहि सरजू सरित धरे अति उज्वल धारा।
भवसागर की तरत निरखि यह पोत उतारा।
हरत पाप त्रय ताप जनन निश्चित फल देना।
मानो जन आरोह सुख बैकुंठ निसेनी।
तीर तरन की भीर लगत अति परम सोहाए।
मनहु धाम को त्यागि अमरगन सकल आये।
करें जो मज्जन पान ध्यान बड़भाग जनन के।
विविध भाँति के घाट तहाँ मन मोहित मुनिन के। इत्यादि।

भाँति भाँति के पाट बने हुए हैं जिन्हें देखकर मुनियों का मन मोहित होता है। तट के निकट अशोक वन है जिसमें विविध प्रकार के वृन्दारक वन सुशोभित हैं। अशोकवन में एक कल्पतरु है जिसके निकट मणियुक्त रत्नमय भूमि पर निर्मित एक धाम है। इसके मध्य में एक स्वर्णवेदिका है जिस पर एक स्वर्ण सिंहासन स्थित है। सिंहासन के नीचे में कमल का सुआसन है जिसके मध्य में कर्णिका है। कर्णिका पर सीता राम विराजमान हैं। अनन्तर राम के साकार स्वरूप का वर्णन किया गया है। राम दिव्य किरीट धारण किये हुए हैं जिसकी रुचिरता के आगे दिनकर की ज्योति लज्जित होती है। कानों में कुण्डल शोभित हैं। मन्द हास और मधुवचन से राम लोगों को आनन्दित करते हैं। वे मणियों की माला धारण किये हैं और उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स और कौस्तुभ मणि की शोभा हो रही है। श्री राम पीतपटवसन धारण किये हुए हैं और उनके शरीर पर विविध प्रकार के दिव्य आभूषणों की शोभा हो रही है। उनके दाहिने हाथ में बाण तथा बाएँ में दिव्यायुध धनुष है। श्रीराम सोलह वर्ष की किशोरावस्था में नित्य विराजमान हैं। उनके वामभाग में जनककुमारी सीताजी हैं जो विविध दिव्य आभूषणों से सुशोभित हैं। उनकी पीठ पर सुन्दर वेणी है जो अलि श्रेणी की भाँति जान

१—वही—

तामधि शोभित राम नील इंदीवर आभा।
अखिल हृदय अगाधि सजल घन तन की शोभा।
सिर पर दिव्य किरीट जटित मजल मनि मानी।
निरखि रुचिरता लजित निकर दिनकर की जोती।
कुण्डल ललित कपोल जगत अति परम सुखमा।
तिनकी निरखि प्रकाश लजित राकेश दिनमा।
मेचक कुटिल सुचार सरोरुह नयन सुहाय।
मुख पंकज के निकट मनहु अलि छौना आय।
×　　　　×　　　　×
दक्षिण भुज शर सुभग सुशोभन सुन्दर राज।
दिव्यायुध सुविशाल वाम कर धनुष विराज।
षोडस बरस किशोर राम नित सुन्दर राज।
राम रूप को निरखि विभाकर कान्ति लाज।

—वही—

जन रंजन रघुवीर धीर आसन सुखकारी।

पन्ता है। व उज्जल मोती का माला मणि जटित बेंदा कठपानि आदि अनेक आभूषण धारण किये कणिका पर विराजमान हैं। इस प्रकार सीता राम दिव्य धाम म विराजमान है। अग्रदास ने सीता के स्वरूप का मनोहर वर्णन किया है। दिव्य दम्पति की सेवा के लिए शत्रुघ्न लक्ष्मण और भरत प्रस्तुत हैं। पवनपुत्र हनुमान प्रभु की कीर्ति का गान करते हैं। आठों सखा परिचारिकाएँ अपने अपने स्थान पर स्थित हैं और जिसका जो अधिकार है उसके अनुसार सेवा कार्य में मग्न हैं।

ग्रंथ के अन्त में स्वामी अग्रदास ने स्पष्ट कहा है कि दिव्य दम्पति का यह ध्यान केवल रसिक जन ही कर सकते हैं। एक बार इस अमृत रस का निरन्तर पान कर लिया फिर उस ज्ञान योग तप निस्सार प्रतीत होते हैं। रसिक जनों के अतिरिक्त यह रहस्य अन्य लोगों के लिए गुप्त रखना चाहिए। अग्रदास ने रसिक जनों के निमित्त इस रहस्य को प्रकाशित किया है।[1]

सा सच्चिदानन्द धाम निधि जनक कुमारी।
नगन जरे छवि भर विविध भूषण अस सारे।
सुन्दर अंग उदार विविध सामाकर का है।
× × ×
अनुदित युगल स्वरूप वचन अस उपमा जिनकी।
जनित उपमा शान्ति शक्ति करि भागिन तिनकी।
यहि विधि राजत राम अवधपुर अवधविहारी।
दम्पति परम उदार सुजस सेवक सुखकारी।

१—दोहा—यह दम्पति वर ध्यान रसिक जन नित प्रति ध्यावे।
रसिक बिना यह ध्यान और सपनहु नहिं पावे।
अमर अमृत रस धार रसिक जन यहि रस पागे।
नहि का नारग ज्ञान याग तप छाडि भागे।
× × ×
निज भूलि जनि कहौ कुटिलता पर मलिन मन।
यह उचार मणिमार परिरिटै परम रसिक जन।
× × ×
श्री गुरु गल्ल अनग्र त अग मधुर दामा।
रसिक जान निज मन्न स्वमि यह तानि प्रकाशा।
ध्याना मञ्जरी नाम गुना मन माहि बढ़ाव।
श्री रघुवर की दाह मनिन जन अग्र सु गाव।

कुंडलिया—कुण्डलिया में स्वामी अग्रदास द्वारा रचित छप्पय-कुण्डलिया सम्मिलित है। इसका नाम उपपाण बावनी भी है। कुण्डलिया की एक हस्तलिख सभा संग्रहालय में (हस्तलेख संख्या २७८७।१६८७) प्रस्तुत लेखक ने देखा है। हस्तलेख अपूर्ण है। इसमें कुण्डलिया संख्या ६८ तक उपलब्ध है। इसके बाद हस्तलेख के पत्र नहीं है। कुण्डलिया का एक संस्करण अयोध्या के स्वामी राज किशोरीवर शरण ने प्रकाशित किया है जिसमें ७२ कुण्डलिया हैं। यह संस्करण दो खण्डों में प्रकाशित हुआ है। इसके छन्द सभा वाले हस्तलेख में मिलते हैं। कुण्डलिया छन्दों में स्वामी अग्रदास के उपदेश संग्रहीत है। इनका उद्देश्य विषय वासना से मन को हटा कर भक्ति में लगाना है। कतिपय छन्दों में सगुण भक्ति का निर्देश मिलता है। उदाहरण के रूप में कुछ छन्द यहाँ दिए जाते हैं—

मनुष्य जीवन में श्रीराम की भक्ति ही मूल्यवान है। सांसारिक धन सम्पत्ति व्यर्थ है। संसार में जन्म लेकर भक्ति न करने वाला मनुष्य उस अतिथि के समान है जो सूने घर में जाता है और अकृत कार्य लौटकर चला जाता है। अतएव मनुष्य को सत्संग और राम की भक्ति करनी चाहिए। वही स्त्री सम्पन्न है सती एवं सद्गुण सम्पन्न है जो पतिव्रता है। इसी प्रकार नारी रूप वही जीव धन्य है जिसकी हरि चरणों में रति है। अग्रदास ऐसे जीव पर तन मन वार देते हैं। सांसारिक

१—कुण्डलिया—

सूना घर कौ पाहुना ज्यों आवै त्यों जाय।
ज्यों आवै त्यों जाय धर्म बिन धिक नर देहा।
झूठ कुटुम्ब संग्रह तज मन श्याम सनेहा।
परमारथ को पाठ दाठ स्वारथ मां लागी।
जन्म लाभ नहिं लयो राम की भक्ति न जागी।
अग्र कह सत्संग बिन कछू लाभ न जाय।
सूना घर कौ पाहुना ज्यों आवै त्यों जाय।

२—कहा—सोई नारि सतवरा जाको करो जारि।
जारा सोई नारि नारि सो तापनि भाव।
नवरा सुन हरि कथा रसना गाविन्द गुण गाव।
आरज बिटप उखार सुमति सुकुमारी साईं।
हृदय बस हरि चरण जगत शार वार छाई।
अग्र कहै ता दास पर तन मन डारो वारि।
सोई नारि सतवरा जाको करो ज्वारि।

सुखों का परित्याग कर जो हरि लीला के रस में मग्न रहते हैं और निर्भय हो प्रसन्न मन से हरिगुण गान करते हैं जिनका मन राम के चरण कमल में बसता है वे काल के भय से मुक्त हो जाते हैं।[1] भगवान की शरण में जाने से सुख प्राप्त होता है हरि से विमुख होने से दुख होता है। दशग्रीव विभीषण आदि इसके उदाहरण हैं। अतएव मनुष्य को हरि के चरणों में प्रीति करना चाहिए।[2] जो राम के चरण कमल का आश्रय छोड़कर अन्य का आश्रय लेता है वह हाथी को छोड़ कर गधे पर बैठता है वह आत्महन्ता एवं पापी है।[3] एक अन्य छन्द में अग्रदास जी ने राम

१—कहा—

सुख सो सोव कुम्हार चोर न मटिया ल्य।
चोर न मटिया ल्य भजन कर होय होय मन।
आठो रंग न तासु रहे सत्संग मनमान।
इन्द्रिय राम न होय सकल मिथ्या करि जान।
हरि लीला रस मत्त मुदित निर्भय गुण गान।
अग्र बसन ज राम पद काल चिनौता न्य।
सुख सो सोव कुम्हार नित चोर न मटिया ल्य।

२—कहा—

हरि सम्मुख सुख पाइय विमुख भये दुख होय।
विमुख भये दुख होय दस दशग्रीव विभीषण।
देखो सुरुचि सुनीति क्रम प्रह्लाद पिता मन।
देख दशा या यज्ञ दक्ष पथ वेणु विलीना।
यश जनक सुत अथ दक्ष पाइव जग जाना।
अग्र मुकुर प्रतिबिम्ब में अपना आनन जोय।
हरि सम्मुख सुख पाइये विमुख भये दुख होय।

३—वही—

राम चरण तजि आन रति सो गज तजि गर्दभ चढ़ा।
सो गज तजि गर्दभ चढ़ा भयो आतम हन पापी।
यहै अविद्या मूल यहै सब द्रोह सुगापी।
यहै कृतघ्नता कुटिल यह यह नाम अगामा।
यहै मानानि होत यहै नारकन में नामा।
अग्र कहै गाढ़ गनि गया तान ताप नाइ गढ़ो।
रामचरण तजि आन रति सो गजतजि गर्दभ चढ़ा।

कुडलिया—कुडलिया म स्वामी अग्रदास द्वारा रचित छप्पय-कुडलिया सकलित है। इसका नाम उपपाण बावना भी है। कुडलिया की एक हस्तलेख सभा सग्रहालय म (हस्तलेख सख्या २३८७।१६८७) प्रस्तुत लेखक ने देखा है। हस्तलेख अपूर्ण है। इसम कुडलिया सख्या ६८ तक उपलब्ध है। इसके बाद हस्तलेख के पत्र नहीं है। कुडलिया का एक सकलन अयोध्या के स्वामी राज किशोरीवर शरण ने प्रकाशित किया है जिसम ७२ कुडलिया हैं। यह सकलन दो खण्डों म प्रकाशित हुआ है। इसके छद सभा वाले हस्तलेख से मिलते हैं। कुडलिया छन्दों म स्वामी अग्रदास के उपदेश सग्रहीत है। इनका उद्देश्य विषय वासना म मन को हटा कर भक्ति म लगाना है। कतिपय छन्दों म सगुण भक्ति का निर्देश हुआ है। उदाहरण के रूप म कुछ छद यहा दिये जाते हैं—

मनुष्य जीवन म श्रीराम की भक्ति ही मूल्यवान है। सासारिक धन सम्पत्ति व्यर्थ है। ससार म जन्म लेकर भक्ति न करने वाला मनुष्य उस अतिथि के समान है जो सूने घर मे जाता है और बहुत काय होकर लौट जाता है। अतएव मनुष्य को सत्सग और राम की भक्ति करनी चाहिए। वही स्त्री सम्पन्न है सती एव सवगुण सम्पन्न है जो पतिव्रता है। इसी प्रकार नाग रूप वही जीव धन्य है जिसकी हरि चरणो म रति है। अग्रदास एसे जीव पर तन मन वार देते हैं। सासारिक

१—कुडलिया—
सूना घर को पाहुनो ज्यो आव त्यो जाय।
ज्यो आव त्यो जाय घम बिन बिक नर देहा।
झूठ कुटम सग्रह तज मन स्याम सनेहा।
परमारथ को पाठ लाग स्वारथ मा मारो।
जन्म लाभ नहिं लयो राम की भक्ति न कारो।
अग्र कहे सतसग बिन कछ लाभ न ताय।
सूना घर को पाहुना ज्यो आव त्यो जाय।
२—वहा—सोई नारि सतवरा ताका कागा वारि।
जाका कागा ज्वारि ताहि सातापति भाव।
चरण सुत हरि कथा रसना गोविन्द गुण गाव।
आरत विदुर उदार सुमति सुकुमारा सोई।
हृदय बस हरि चरण जगत डार कर डोई।
अग्र कहै ता दास पर तन मन वारा वारि।

सुखों का परित्याग कर जो हरि लीला के रस में मग्न रहते हैं और निर्भय हो प्रसन्न मन से हरिगुण गान करते हैं जिनका मन राम के चरण कमल में बसता है वे काल के भय से मुक्त हो जाते हैं।[1] भगवान की शरण में जाने से सुख प्राप्त होता है हरि से विमुख होने से दुख होता है। दशग्रीव विभीषण आदि इसके उदाहरण हैं। अतएव मनुष्य को हरि के चरणों में प्रीति करनी चाहिए।[2] जो राम के चरण कमल का आश्रय छोड़कर अन्य का आश्रय लेता है वह हाथी को छोड़ कर गधे पर चढ़ता है वह आत्महन्ता एवं पापी है।[3] एक अन्य छन्द में अग्रदास जी ने राम

१—वही—

गुप्त सो सोच कुम्हार चार न मटिया ल्याय।
चार न मटिया ल्याय भजन बिन होय हाथ मन।
आठो रस न तासु रह सतसंग मनोजन।
इन्द्रिय राम न होय सकल मिथ्या करि जान।
हरि लीला रस मत्त मुक्ति निर्भय गुण गान।
अग्र बसत जे राम पद काल चिनौना ल्याय।
सुख सो सोच कुम्हार नित चार न मटिया ल्याय।

२—वही—

हरि सम्मुख सुख पाव विमुख भये दुख होय।
विमुख भये दुख होय दस दसग्रीव विभीषण।
दसो सुरुचि सुनीति दस प्रहलाद पिता मन।
दस दस को दस दस पद वसु विनौना।
मन जनक सुत अंध सुत पान्डु जग जाना।
अग्र मुकुर प्रतिबिम्ब में अपनो आनन जोय।
हरि सम्मुख सुख पाव विमुख भये दुख होय।

३—वही—

राम चरण तजि आन रति सो गज तजि गदहा चढ़ा।
सो गज तजि गदहा चढ़ा भया आतम हन पापा।
बड़े अविद्या मूढ़ बड़े गर शाह गुनपा।
बड़े कृतघ्ना कुमति बड़े बद नाम हरामा।
बड़े मीनानि जान बड़े नारकन में नामा।
अग्र बड़ गाढ़ गति नहीं तान ताप गाढ़ ब्यो।
रामचरण तजि आन रति सो गजतजि गदहा चढ़ा।

कथा का निर्देश बनी सुरुरना म किया है। अग्रदास ना कहने हैं कि राम का महिमा अपार है। मन सब म बन्द है मना का राम का ही हृदय म धारण करना चाहिए और उन्हा क सुयश का गान करना चाहिए।

पदावली—पदावली अग्रदास का महत्त्वपूर्ण रचना है। पाठ बनाया जा सकता है कि स्वामी अग्रदास क पद विखर रूप म संग्रह ग्रन्था म मिलत हैं। पदावली का कोई प्राचीन हस्तलेख प्रस्तुत लेखक को नहीं मिल सका। नागरी प्रचारिणी पत्रिका म पदावली प्रकाशित का गयी है (संवत २ १८ विक्रमी)। इसका ग्रन्थारम्भ इस प्रकार किया गया है— अथ श्री अग्रस्वामी कृत पदावली प्रारम्भ। ग्रन्थ क अन्त की पुष्पिका नहीं दी गयी है। इसस इसक लिपिकाल अथवा लिपिकर्ता का पता नहीं चलता। यह पदावली अग्रदास क पदों का संकलन जान पड़ता है। अग्रदास जी क पद प्रस्तुत लेखक का संग्रह ग्रन्था म मिले हैं। इन पदों म स्वामी अग्रदास ने सीताराम की विहारावस्था की लीलाओं का मार्मिक वर्णन किया है। दिव्य दम्पति की लीलाओं से सम्बन्धित पद भी मिलते हैं। इष्ट की सेवा लीलाओं तथा शृंगारी लीलाओं का मनोहर वर्णन इन पदों म उपलब्ध होता है। साहित्यिक दृष्टि से य पद सरस एव अत्यन्त सुंदर बन पड़े हैं।

स्वामी अग्रदास न सीता की रूपमाधुरी का विशद वर्णन पदावली म किया है। उनक सौन्दर्य शील एव सौभाग्य की महिमा अग्रदास न अनेक बार बखानी है। अग्रदास माता बदन पर बलिहारी जाते हैं और त्रिभुवन की शोभा न्योछावर करते हैं। सीता क सौन्दर्य का वर्णन रूपब्रह्माडि भी नहीं कर सकते—रूपब्रह्माडि

१—दोहा—कविजन करत विचार बडो कोउ ताहि मनोज।
 कोउ कहै अवनी बडी जगत अधार फनोज।
 सो धारी गिरिराज नाथ शिव भूषण कीन्हो।
 शिव आसन कैलास भुजा भरि रावण लीन्हो।
 रावण जीतो बालि बालि प्रभु एक सर दहे।
 अग्र कहै त्रयलोक म हरि उर धारे ते बडे।
२—पदावली—बलिहारी माता बदन की।
 —उत्तम परस्पर लसति अधर उदधि रदन की।
 बरसि मदना चपल लसत अति शोभा वारी मदन की।
 त्रिभुवन चारि बिन मदन वश्मन लसत काम हृत कदन की।
 सदा सदन शोभा त्रिभुवन की वारौं मानता मदन की।
 अग्र स्वामिनी विराजत चन्द्रमा सौभग हृद्द सुख सदन की।

कवि और बैन वहो स्वामिनी अग्र लिं पाए पाव। सीता का सान्य शाल अद्भुत है उसकी उपमा अयत्र नहीं मिलती।[1] सीता का सौभाग्य अविचल है उनमें राम का प्रेम दिन दिन बढ़ता है—

मरी रानी का अविचल सुहाग।
जाने परसि और नहिं परसो रघुपति दिन दिन बाढ्यो राग।
सीता सा सिरजी न सुनतना कहि अवनि लख्यो न दाग।
अग्रस्वामि स्वामिनी अहर्निस सुख विलसत दोउ भूरि भाग।

सीता का सौन्दर्य देखकर ससार के अन्य सुन्दर पदार्थों की सुन्दरता तिरोहित हो गया— मम का साभा सिमिट रूप बन्हो का बरन विलोकर अन्तर्भूत भई। सीता की शोभा के सामने सुन्दर पदार्थ श्रीहीन हो गये और सकुचकर पवत— अरण्य आकाश-पाताल आदि स्थानों में चले गये। राम का सुख देनेवाली सीता की शोभा पर अग्रदास बलिहारी जाते हैं।[2] राम और सीता अपने हो सदृश हैं इनकी उपमा अयत्र खोजना व्यर्थ है—

राम सा राम सीता सी सीता।
सिव विरंचि सारदा सम सुख पन्तर साजत बरनि विनीता।
सुन्दर साज सुहाग अमित गुन अखिल लोक नर नारी जीता।
श्री अग्रस्वामि स्वामिनी उजागर नित नित श्रुति गावत गीता।

राम का एक पत्नीव्रत सीता का सौभाग्य तथा अलौकिक रूप माधुर्य का प्रकार अनेक पदों में वर्णित है। अग्रदास जी इष्टदेव अद्भुत रूप माधुर्य युक्त शील आदि गुणों से विभूषित राम को सुख देनेवाली तथा राम को अपने वश में रखनेवाली सीताजी का ध्यान करते हैं और उनकी कृपा की याचना करते हैं। अग्रदास कहते हैं कि सीता जिस पर कृपा कर देती हैं राम उस पर दयालु हो जाते हैं और उसका उद्धार कर देते हैं—

१—राम रवनि गजगवनि अवनिजा चपक बरनि मान मृगनयनी।
बदन इन्दु अरविन्दु कुन्द द्विज अधर गिर विद्रुम पिक बनी।
सीता के सौन्दर्य सात घन उपमा सकल सकुचि भई गनी।
वनिता वर सिंगार उजागर अग्रस्वामि आनन्द देनी।

२—सर्वोपरि मेरी स्वामिनी सीया की प्यारी।
जाकी परसि और नहिं परस्यो दूसरी नारी एक नारी।
स्वयम्‌ त्रिय दशरथ नद नन्दन नाहिन कोऊ सारी।
यही के बदन कमल पर श्री अग्र अग बलिहारी।

चहियत कृपा ऱ्या सीता की।
नवधा भक्ति ज्ञान की करनी मिटि गई मद बप गाता की।
परमार्थ वद पुरान पुकारत करत बोऽ नर वपु बाता की।
नगरी कर अग्नि मुख ना मिटा न एर द्रत माता की।
जाको ओर तनक हमि हरत बरी सहाय राम ज ताका।
श्री अग्रजी भज जनक नन्दिनी पाप भन्नार ताप रीता की।

धनुभंग के पूर्व सीता की राम के प्रति आकर्षण तथा उनकी आकुलता की सजीव वर्णन अग्रदास ने किया है। सीता कहती है कि हमारे पिता ने कठिन प्रण किया है। सावरे के करतल कोमल है मूरति मधुर है और वय किशोर है। वे राजसभा में ऐसे लगते है जैसे तारागण के बीच चन्द्रमा। मन को मोहने के लिए विधि ने यह फन्दा रचा है। लोक वेद की लाज दुस्तर है किन्तु रूपनिधान रघुनन्दन को देख कर धैर्य नहीं रह गया है—

> एसी मो जिय ऊजी चाप बगरी काई।
> अग्र स्वामि के हाथ बिकानी होनी होइ सो होइ।

सीता सखी से कहती है कि राम मन प्रिय लगते हैं। भरपति निठुर निरस है। मुझे पिता का प्रन नहीं अच्छा लगता सारंगपानि प्रिय लगते हैं उन्होंने अपनी चितवन से मेरे चित्त को चुरा लिया है। पिता ने ऐसा प्रण हो क्या लिया। कठिन पिनाक और कोमल राम को देख कर मेरे हृदय में धैर्य नहीं रहा।[1]

दिव्य दम्पति की रसमयी लीला का वर्णन स्वामी अग्रदास ने कई पदों में किया है। रसिक साधना के अन्तर्गत शृंगार पक्ष की स्थिति हृदयंगम करने के लिए ये पद महत्वपूर्ण है। एक पद में अग्रदास दिव्य दम्पति की ओर की छवि का वर्णन करते हैं। प्रातः वेला में राम जाग जाते हैं और सीता सो जाती हैं। राम सीता के विधुवदन को देखते हैं पश्चात सीता भी जाग जाती हैं। उनके नेत्र आलस्य से पगे हुए हैं। अग्रदास इसी छवि का ध्यान करते हैं—

१—तात प्रन काहे को किया।
कठिन पिनाक रामकर कोमल धार न धरत हिया।
मन्द मूरति आनन्द कन्द मम नाहिन और बिया।
वक्र चितवनी सावर सखी चित बित चोरि लिया।
रघुपति तजि जे रति कर धृग धृग जिवनहिं जिया।
अग्रस्वामि रस बस भई मैं मन मोह लिया।

रजनी अल्प राम उठि अब सोय गया सोना आया भोर।
बार बार विधु बदन बिलोकत मानो पावत सुधा चकोर।
हेरे हेर चुम्बन चमकन उर दर सो विधुर चाप टकटोर।
जागि परो जानकी तहँ छन आलस पगे नयन की कोर।
बहुरि अंक आगमि पिया को गौर स्याम दामिन एक जोर।
अग्र अली एसी छवि छाड़ि किन जावें आव उर और।

रात्रि में जागने के कारण सीता का शरीर आलस्य से पगा हुआ है उनके पग डगमगा कर धरती पर पड़ते हैं राम ने अधररस का पान किया है। राम का मुख देख कर उन्हें अपने वश में कर जानकी मुदित हैं।[1] एक पद में सीता द्वारा मंजारी को संतुष्ट करने का वर्णन किया गया है। उद्देश्य यह है कि मंजारी कुक्कुट का निवर्तण में रख सके जिससे भोर होने की सूचना वह न दे सके।[2] एक अन्य पद में कीर पक्षी रात्रि के रस वृत्तान्त का वर्णन आरम्भ कर देता है। गुरु जनों के सुनने के कारण सीता को संकोच होता है। सीता कौशल से पक्षी को भ्रम में डाल कर इस प्रसंग का वर्णन रोकती हैं।[3]

१—रजनी जागे भामिनी आवत संग मधुर उचरत जयगान।
डगमगात पग धरत धरनि पर राम अधर रस कीनो पान।
आलस परे अडान जानकी मुदित मगन राखो पिय मान।
अंग-अंग ऊपाहि दन मनं सवसु अपि लिये रतिमान।
सुरस विय सुदर वर रघुपति त्रिभुवन जुवती नहिन समान।
सहचरि सब विलोकि विवस भई अग्र अली वरि वारति प्रान।

२—राजकुवरि पूजति मंजारी।
करो न कीज अपन काज गृह भावए बात विचारी।
निशा घरन मुख हानि होत है याते वर कीनो तमचारी।
याको लाय बिसारी पारो पय प्यावन राघव के प्यारी।
जो चुप किय रहे वह कुक्कुट तो वन होय भोर हिय हारी।
निश भरि समर रस भामिन अग्र अलिरी जाके बलिहारी।

३—कीर निशा की बहुरि कहि।
गुरजन सुनत सकुचित सीता भूषन चापि चूनि दई महि।
हारयो व्याज बाज बहुयो भूल्यो तो कहि जानो ज्यों स्वारे।
सुक संभ्रम मैं परयो बिसापति भूलि गयो पूरब अनुवारे।
सार्गरि उक्ति यह उपजी संगो रात रहो वन निहारि।
अग्रअली कर अचरज नाही बेटी राजा कुमारि।

जनकपुर और अयोध्या में हिंडोले लीला का वर्णन अनेक पदों में मिलता है। जनकपुर अत्यन्त सुन्दर लग रहा है। सावन का मनमोहक महीना है। पावन कुंज में अद्भुत हिंडोला बनाया गया है। मन्द मुसकान के साथ हिंडोले में झोंका देते हैं परस्पर अनंग का रंग उमगता है—

जनकपुर लागता ज सुन्दाइ।
रग रगीली अतिहि छबीली सब मिलि झूलन आई।
सावन मन भावन पिय प्यारी अवनी महज सुहाई।
पावन कुज पज सुख बरसत क्रम्पत मन बरखाइ।
कचन खभ जटित डाडी नग विविध विचित्र बनाइ।
रेसम डारि वारि बनि आई पह निमि जन्ज जराइ।
लाली वाल लाल रग झीमा लाल्न लाल लगाइ।
झोका दत ऊन सुख पिय को मन्द मन्द मुसकयाई।
उमगउ रग अनग परस्पर मन मल्हार जमाई।
गावहि ममर रग भरि भामिनि कोकिल कठ लगाइ। इत्यादि।

× × ×

अयोध्या में सीता राम युगल झूलते हैं। रत्नजटित हिंडोला बनाया गया है। उस पर बैठे सीताराम की शोभा के आगे विद्युत लज्जित होती है। सखियाँ सीता से पति का नाम लेने को कहती हैं किन्तु सीता नेत्रों से संकेत करती हैं। अवधपुर में निवास दम्पति नित्यदर्शन करते हैं।[1]

होली खेलने के सरस प्रसंग का वर्णन अग्रदास ने किया है। अयोध्या राम होली खेलते हैं। पिचकारी से रंग बरसता है जैसे मेघ बरसते हों। चारों ओर केसर कुंकुम की कीच मच गया है। देवता विमान में चढ़े लीला का सुख लेते हैं और पुष्पवर्षा करते हैं। इस लीला का दर्शन करने वाले पुरवासी बड़े भाग्यवान

१—झूलत सिया राजिव नैन।
रत्न जटित हिंडोरना अभिराम सुख के ऐन।
स्याम अंग पर गोर झलकत दामिनी घन गैन।
मथिला रघुबीर शोभा निरखि लज्जित मैन।
नाम पिय को लेहु नागरि जो सखिन मन चैन।
जानकी नहिं कहत मुख सो सैन लोचन मैन।
परस्पर झूलत झुलावत कहत मधुर बैन।
अवधपुर नित बसि दंपति अग्र आनन्द लैन।

हैं।[1] अवधपुर में चारों ओर रागों की धूम मची है। नायक नायिका में मन में जब राग गान गाता है तो मंजरिया चंग मृदंग उपंग मंजरी मधुर स्वर महनाद बजा उठता है। कोई सखी राम का गुण गाती है तो कोई सीता के गुणों की सराहना करती है। दशरथ और जनक दोनों की पत्नियों का स्मरण कर दासियाँ मगन गारी गाती हैं। यह छवि देख कर देवता पुष्पवृष्टि करते हैं और राम का जयगान करते हैं। अग्रदास सीताराम फाग की छवि पर बलिहारी जाते हैं। अयोध्या नगरी सुरुचि पूर्वक सजायी गयी है। होली खेलने वालों में एक टोली सीता की है तथा दूसरी आली सहित राम की है। अरगजा के पनारे बहते हैं—जैसे बादियों में नदी उमड़ पड़ी हो। धूप की सुगन्धित धूम्र आकाश में छा गया है। नारी नर पुरजन प्रेम में निमग्न हैं। मानो जालरंध्र में होली नारी देख कर सुखी होते हैं—

> रंग रंग मंदिर भरे अगनित जनक सुता रघुराई हो।
> राजे सुमन बरसत सुर मधुर ध्वनि दुंदुभी बजाई हो।
> आनंद निरखत सुर ललना आनंद सिंधु बढ़ाई हो।।इत्यादि।

होली गीतों की भाँति अग्रदास ने सीताराम की जलविहार वर्णन किया है। सरयू के पुलिन तट में सखी के साथ राम विहार करते हैं। सखियाँ नाव अलग अलग सजाती हैं। नावों में गुलाल भाजन भरे रखे हुए हैं। अंजलियों में जल भर कर प्यार उछालते हैं। आगे में परिचारिकाएँ तथा भाट भी गाते रहते हैं। जल भर जाने के कारण नेत्र लाल हो जाते हैं। अग्रदास कहते हैं कि तट नारी रूप सौन्दर्य को निहार सुखी होते हैं—

> जल विहार विहरत सीता संग सुन्दर वर रघुराई हो।
> अग्रदास बलि जाय निरखि सुख गंजू सुमन सुहाई हो।।

१—रघुकुल वधू सखी सब गावें मंगल गारी।
भरत परस्पर सुधि नहिं पावत को प्रीतम को नारी।
जहँ तहँ राम जानकी गनसुर लखत कछु नहिं जानेगा।
कनक कुम कुम कीच मची है बरसत घन पिचकारी गा।
नभ विमान गन थकित रहे हैं सुरललिता गुन गावें हो।
पुष्पवृष्टि करि जय जय ध्वनि प्रतिपल मचावें हो।
करि मुन्नल आतुर ह्वै पुरबासी अभिलाषा हो।
सीताराम स्वरूप हृदय धरि अग्रदास अनुरागी हो।

लोचन लाल भये पय पूरित बसन अंग [illegible]।
निरखत नारिकेलि नरनारी अग्रअली मन भाई हो।

दिव्य दम्पत्ति के प्रमोद वन विहार की झांकी अग्रदास ने प्रस्तुत की है। सरयू के तीर पर दिव्यस्थली है जहां वल्लि और लताएं झूम रही हैं फलों पर भ्रमर गुंजार करते हैं सुन्दर कुंज बने हुए हैं। इन पर जनक लली रघुनन्दन अद्भुत मधुरस्य में विराजमान हैं। चन्द्रकला विमला आदिक सहचरियां कलगान करती हैं। सीताराम संगीत का आनन्द लेते हैं। इस रस का आनन्द विरले ही रसिक जन पाते हैं—

सो अग्रअली विपिन राज यहि सुख तहं नित समाज।
जानत कोउ रसिक भेद जिन यह रस पायो।

इस प्रकार स्वामी अग्रदास ने सीताराम की मधुर लीलाओं का वर्णन पदों में किया है। पदों में मर्यादा के अन्तर्गत ही शृंगार का अंकन हुआ है। इन वर्णनों में भोजनादिक की दैनिक क्रिया भी सम्मिलित की गयी है। इन पदों का अध्यायमय वर्गीकरण भी मिलता है। अधिकांश पद शृंगार लीलाओं तथा अन्य रसमयी लीलाओं के सम्बन्ध में हैं। कुछ पदों में रामचरित के अन्य प्रसंगों का भी उल्लेख हुआ है। ऐसा जान पड़ता है कि स्वामी अग्रदास ने [illegible] की मधुर लीलाओं का विस्तार से वर्णन किया है साथ ही उन्होंने अन्य लीलाओं के प्रसंगों को लेकर भी पदों की रचना की थी। अग्रदास के रचे हुए पदों का संग्रह मिल जाने पर इस सम्बन्ध में विचार सम्भव हो सकेगा।

एक पद में रावण मन्दोदरी संवाद वर्णित है। मन्दोदरी रावण से कहती है कि देखो राम की ध्वजा फहराने लगी। तुमने त्रिभुवन पति से बैर ठाना है जिस सागर पर गर्व करते थे उस पर शिला तरने लगी है—

अब देखो राम की ध्वजा फहरानी।
सन्मुख ठाढ़ फरक्कत भुजा गगन उड़ी अगमानी।
लछमण वीर बालिसुत अंगद हनुमान अगवानी।
कहति मंदोदरि सुन पिया रावण त्रिभुवन पति से ठानी।
जा सागर पर गर्व करत है तापर शिला तरानी।

रावण कहता है— स्त्री जाति की बुद्धि ओछी होती है तू उनकी बड़ाई करती है। मैं इन तपसी भाइयों को भवन मन्दिर से पकड़ मंगाऊंगा—

तिरिया जाति बुद्धि की ओछी उनकी कहत बड़ाई।
अब मन्दिर में पकरि मंगाऊं जो तपसी दोउ भाई।

मन्दोदरी पुनः राम के दल की चर्चा करती है और रावण से कुम्भकरण और मेघनाद के वध का स्मरण कराती है—

हनुमान से पायो उनके लक्ष्मण से बलि भाई।
जरत अग्नि में कूद परत हैं काटि गये नहिं खाई।
मेघनाद से पुत्र हमारे कुंभकर्ण से भाई।
एक बार सनमुख ह्वै लरिहैं जुग जुग होत बड़ाई।

रावण को समझाते हुए मन्दोदरी पुनः कहती है—मेरी कही बात तुम्हें प्रिय नहीं लगती। मैंने रात्रि में स्वप्न देखा है कि सोने की लंका लुट गयी। एक बन्दर ने नगर में आकर धूम मचा दी लंका को जला दिया। गर्व करने से रावण गर्व छोड़ दो गर्व से लंका लुट जायगी। रघुनाथ से जाकर मिलो जिससे लंका अचल हो जाय—

कहति मन्दोदरि सुनु पिय रावण ताहि मम एक न भाइ।
राति को सपनो एसो भयो है सोन की लंक लुटाइ।
बन्दर एक लंक बिच आयो घर घर धूम मचाइ।
बाग उजारि सबन्ह मे टारे लंका आगि लगाइ।
गरवो रावण गरव न कीजै गर्व ते लंक लुटाइ।
जाय मिलो रघुनाथ कुवर सो लंक अचल ह्वै जाइ।
इक लख पुत्र सवा लख नाती सौंज आपनो ठानो।
अग्रस्वामि गर्व किये घर उजरे न बरज्यो मानो।

स्वामी अग्रदास की साधना दास्य निष्ठा परक थी। उन्होंने भावना की है कि वे राममक्तों के दासानुदास हों, रामकथा का श्रवण करें तथा मुख से राम नाम का उच्चारण करें। अग्रदास कहते हैं कि मोक्षादि से मुझे कुछ काम नहीं है मेरे सिर पर संतों का पगरज हो, संतों में मेरा अनुराग हो और हरि कथा करते व्याख्यान हो।[1] एक अन्य पद में उन्होंने संतों की कृपा की भावना विशेष रूप से की है। स्वामी अग्रदास कहते हैं कि रामचन्द्र राजपाट पाकर राजा हो गये हैं उनमें ठकुराई आ गयी है और दीन दासों के लिए उन्हें समय नहीं है। किन्तु यदि मिथिलेश लली से यह दान दिला जाय तो

१—यह मांगों दीजै राघव राम।
दासनिदास दास के अनुराग कथा श्रवण मुख नाम।
मोक्ष आदि जे चारि पदारथ भगत करे नहिं काम।
पगरज संतन की सिर पर कृपा करो गुणग्राम।
संतन सों अनुराग निरंतर यहि विधि बीते याम।
श्री अग्रदास पावैं हरि चरचा व्याख्यानि विश्राम

वहियत कृपा ऐ्री साला वा।
नवधा भक्ति नान का करना मिटि गई म
पश्मत बंद पुरान पुकारत करत वा न
थगरौ कर अस्य सुरय ना मिरा न एक
जाका आर तनक ़मि हरन करत सहा
ी अग्रअला भजु जनक नदिनी पाप भडा

धनुभग से पूव सीता का राम क प्रति आकषण
मजाव वणन अग्रदास ने किया है। माता कहता है कि
किया है। सावरे के करतल कोमल हैं मूरति मधुर
व राजसभा म एस लगत हैं जसे तारायण क बीच च
त्रिग विधि ने यह फन रचा ह। लाक वद की लाज छ
रघनन्दन को देख कर धय नही रह गया है—

एसा मा जिय ऊरजो चाप चना
अग्र स्वामि क हाय विकाना हानी ह।

माता सखा स कहता है कि राम मुझ प्रिय लगने हैं।
मय पिता का प्रन नहा अच्छा लगता सारगपानि प्रि
चितवन स मेरे चित्त का चरा लिया है। पिता न एसा
पिनाक और कोमल राम का दख कर मर हृदय म धद

ल्यि दम्पति का रसमयी लीला का वणन स्वाम
किया है। रसिक साधना क अन्तगत श्रृगार पक्ष का
लिए य पद महत्वपूण है। एक पद म अग्रदास ल्यि दम
वणन करत हैं। प्रात काल म राम जाग जाते हैं और
सीता क विधुवदन का दखत हैं पश्चात सीता भी
आलस्य स पग हुए हैं। अग्रदास इसी छवि का ध्यान

१—नान प्रन काह का किया।
कठिन पिनाक रामकर कामल धार न धरत
मन मुरनि आनद कर मम नाहिन और
वक्र चितवनी सावर मया चित बिन चारि
रघपति तजि न रति कर धम धम जिवनहि
अग्रस्वामि रम वम भा मैं मन माह

अध्याय ९

राम-साहित्य के अन्य प्रणेता

राम-साहित्य के अन्य रचयिताओं के सम्बन्ध में खोज रिपोर्टें तथा अन्य सूत्रों से सूचनाएँ मिलती हैं। इन सूचनाओं में निर्दिष्ट रचनाओं का परिमाण अधिक है किन्तु उनका अभी परीक्षण नहीं हो पाया है। इन कृतियों के रचनाकार तथा रचयिताओं के नाम प्राय अज्ञात हैं अथवा उनके बारे में प्रामाणिक सूचना का अभाव है। काल क्रमानुसार इन रचनाओं का वर्गीकरण होना अभी शेष है। अतएव सूचनाओं में निर्दिष्ट रामभक्त कवियों तथा उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कतिपय कवियों के सम्बन्ध में कुछ अधिक सूचना मिलती है। इनमें जैन-परम्परा के कवि हैं तथा कुछ अन्य।

राम-साहित्य की रचना में जैन कवियों के योगदान की चर्चा अपभ्रंश में रचना करने वाले जैन कवियों के प्रसंग में पहले की जा चुकी है। जैन राम-साहित्य की यह परम्परा आगे भी चलती रही। हिन्दी में जैन कवियों ने विस्तृत राम-साहित्य की रचना की है। राजस्थानी में राम-चरित का प्रणयन करने वाले जैन कवियों की संख्या अधिक है।[1] गत वर्षों में हुए शोध-कार्य के फलस्वरूप जैन कवियों की अनेक रचनाएँ प्रकाश में आई हैं।

जैन कवियों की रचनाओं की सुरक्षा का श्रेय जैन ग्रन्थागारों को है। ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ भण्डारों में रखना व पाठ के लिए रखना जैनियों में धर्म-कार्य माना जाता है। जैन मन्दिरों में शास्त्र भण्डारों के निर्माण तथा उनकी सुरक्षा की व्यवस्था प्राचीन काल से चली आ रही है। यही कारण है कि जैन ग्रन्थागारों में प्राचीन हस्तलेख आज भी सुरक्षित हैं और समय-समय प्रकाश में आते जा रहे हैं। जैन कवियों की राम-चरित सम्बन्धी रचनाओं के सम्बन्ध में उपलब्ध सूचनाएँ यहाँ दी जा रही हैं।

ब्रह्म जिनदास—ब्रह्म जिनदास की रचना राम-चरित है। यह राजस्थानी का प्रथम रामकाव्य है। इस ग्रन्थ की रचना संवत् १५०८ में हुई थी। इसकी

१—श्री अगरचन्द नाहटा का लेखक को पत्र।

हस्तलिखित प्रति डूंगरपुर के जैन मन्दिर के भण्डार में सुरक्षित है। ब्रह्मजिनदास दिगम्बर जती थे।

रामचरित¹ के संबंध में सूचना देते हुए श्री नाहटा ने लिखा है—राजस्थानी भाषा में भी रामचरित संबंधी जैन साहित्य काफी परिमाण में प्राप्त हैं। लगभग इन सभी रचनाओं की खोज मैंने की है। अभी कुछ छोटी बड़ी और रचनाओं के मिलने की सम्भावना है। तीन वर्ष पहले तक राजस्थानी राम चरितों में श्वेताम्बर कवि विनय समुद्र के 'पद्म चरित' का ही सबसे प्राचीन होना ज्ञात था। जिसकी रचना संवत् १६०४ में बीकानेर में हुई थी। इसके बाद मेरा डूंगरपुर जाना हुआ तो वहाँ के दिगम्बर मंदिर के शास्त्र भण्डार में इससे ९६ वर्ष पूर्व राजस्थानी राम काव्य मिला जिसके रचयिता सुप्रसिद्ध दिगम्बर कवि ब्रह्म जिनदास हैं और अब तक के ज्ञात राजस्थानी काव्यों में यह सबसे प्राचीन है। ब्रह्मजिनदास का रामकाव्य काफी बड़ा है। इसके कुछ पद्य डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल जब डूंगरपुर गये थे तब नोट करके लाये थे। उन्हीं से व आदि और अंत के पद्य प्राप्त कर दिये जा रहे हैं—

राम रास या राम ब्रह्मजिनदास कृत।

आदि—

वीर जिनवर वीर जिनवर पाय प्रणमेसु।
सरसता स्वामिणी वली तव हुं बुद्धिसार वेगामानउ।
गणधर स्वामि नमसकरूं श्री सकल कीरत गुरुपाय वान्दउ।
मुनि भवनकीरति पाय प्रणमिने कीरसु हुं रास रवि चंग।
ब्रह्मजिनदास भव निरमलो रामायाण भवि रंग।

× × ×

अन्त—

श्रामूलसंघ अति निरमलो सरस्वती गच्छ गणवन्त।
श्री सकल कीरति गुरु जाणीय जिण सासणि जयवंत॥
तास पाट अति रवगे श्री भवन कीरति भवतार।
गणवंत मना गुण आगला तप तेज तणा भण्डार॥
तास मनिवर पाय प्रणमीने कीधो मय रास सार।
ब्रह्म जिनदास भणे रूवडा पढ़ता पुण्य अपार॥

१—राजस्थानी भाषा का सबसे पहला रामकाव्य राष्ट्रभारती दिसम्बर १९६०।

सारद मनोहर करम ब्रह्म मल्लिदास गुणदास।
पढ़ी पढ़ावी मन भावसु जिन होउ मात्र निवास॥
भवियण जीव मनरलिया कियो म रास य सार।
अनंत गुण करी आगला ल्यो तणा बहु भंडार॥
संवत पन्नर अठानवा मागसार मास विशाल।
शकल पख (च) उदमि लिखो रास कियो गुणमाल।

ब्रह्मजिनदास की एक अन्य रचना हनुमतरास की भी सूचना दी गयी है। जैन पंचायती मन्दिर दिल्ली के शास्त्र भण्डार में हनुमतरास की प्रति सुरक्षित बतायी गयी है।[1]

गुणकीर्ति—गुणकीर्ति की रचना रास सीताराम है। गुणकीर्ति ब्रह्मजिनदास के शिष्य थे। इस ग्रन्थ की सूचना भी श्री नाहटा ने दी है।[2] इसका परिचय देते हुए श्री नाहटा ने लिखा है—यह रास जिनदास के रामकाव्य से काफी छोटा है। तेरापंथी के दिगम्बर भण्डार (जयपुर) के गुटके में यह अभी देखने में आया। गुटके में और भी बहुत सी रचनाएँ हैं जिनके बीच पत्रांक ६५ से ९१ तक में यह रास लिखा हुआ है। प्रत्येक पत्र में ९ पंक्तियाँ हैं और प्रति पंक्ति में १८-२० अक्षर हैं। करीब ४०० श्लोक परिमित यह लघु रास है। रचनाकाल नहीं दिया गया है। अन्तिम पद्य में कवि ने केवल इतना ही उल्लेख किया है कि रामायण की कथा का कोई पार नहीं। मैं अति हीन हूँ इसलिए संक्षेप में ही यह रास बनाया है। जो विद्वान व्यक्ति होगा वही विस्तार से रचना कर सकेगा। मुझ पर दया करके इस रास भास को सुना जाय और गलती क्षमा की जाय। ब्रह्मचारी जिनदास के प्रसाद से गुणकीर्ति ने रास बनाया। भाई धनसी और नाथूदास की निर्मल बुद्धि का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इस रास को मन से गाने पर मनोवांछित ऋद्धि व नवनिधि प्राप्त होगी।

इस रास में १२ भास हैं जिनके नाम और पद्य संख्या इस प्रकार है—१ भास १०। २ भास मिथ्यात्व भासनी गाथा १५। ३ भास साहस गति की गाथा १८। ४ भास कथा सारनी गाथा १६। ५ दशरथ गुणनी गाथा ११। ६ भास सीता की गाथा १८। ७ भास रावणनी गाथा ६। ८ भास श्री हनुमंतनी भास की गाथा १२। ९ हनुमंतनी गाथा ८। १० रावण की गाथा १०। ११ संसारनी गाथा १९। १२ सीतानी गाथा ८।

१—जैन पंचायती मन्दिर दिल्ली (अनेकान्त वर्ष ४ किरण १० पृ० ५६९)।
२—राष्ट्रभारती फरवरी १९६६।

अभी तक उपलब्ध रामकाव्यों में ब्रह्मजिनदास के काव्य के बाद इसी का स्थान (द्वितीय) है। आदि अंत के पद्य इस प्रकार हैं—

आदि— प्रथमय प्रणमाहु श्राय जिन गणहर
सारदा सुहरि निय गुरुए।
तस पाय मनि धरी ब्रणवु विविधि
परि समय सिद्धान्त वरी एक चित्त॥

मध्य—

एक चित्त करी वदु सवीयण आदि जिणवर वंदय।
अजित संभव स्वामि धमहु ध्यय तणा जिन कहूग॥
अभयनदन सुमति पदमहु पुत्र निति सुनामुए।
चंद्र पुनहु पुष्पदंतहु सीतल श्री राग थामुए॥१॥
मुनिहि सुव्रत स्वामि वारि अठम हरि उपन।
तस तणुय उपन हरि हरपम सूरत वसिनापन॥
मारना नरदीर राय दसरथ अपराजिता तस मामिनी।
लक्ष्मीय साहम रूप निरुपम चद वदना कामिनी॥२॥

अंत—

विद्यास जे नर होइ तु विस्तार त करिए।
ए राम रास सुगवि तु मुझ पर दया धरए।३४।
अक्षर मात्र हू विनु पद छन्द राग चूकुए।
मरमिति मामिणि कवि तु अपराध मझ मूकुए।३५।
श्री ब्रह्मचार जिणदास तु परमादि तेहु तणा ए।
मनवांछित फल होइ तु वाचइ विस्य घण ए।३६।
गुण कीरति कृत रासन विस्तारि मनि रली ए।
वार धन श्री नानदास तु पुण्यमना निरमलीए।३७।
गावउ रंग रगि रासतु पावउ रिद्धि वद्धिए।
मनवांछित फल होइ तु मपजि नवनिधि ए॥३८॥
इति श्री राम सीतारास समाप्त॥

मुनि लावण्य—जैन कवि मुनि लावण्य की प्राचीन रचना रावण मन्दोदरी संवाद है। इसकी सूचना अनेकान्त में प्रकाशित की गयी है।[1] रचना की तिथि

१—ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन बम्बई (अनेकान्त वर्ष ५ किरण १२ पृ० १)।

अज्ञात है किन्तु भाषा के आधार पर डा० माता प्रसाद गुप्त ने इसका समय संवत् १५०० के आसपास माना है।[1] ग्रंथ का विषय सीता हरण की कथा है जिसका वर्णन रावण मन्दोदरी संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

रावण मन्दोदरी संवाद की सूचना सन् १९०० की सभा खोज रिपोर्ट में दी गयी है जिसमें ग्रंथ का प्राप्तिस्थान विद्या प्रचारिणी जैन सभा जयपुर बताया गया है।[2] विवरण में रचना के आदि और अंत के अंश भी उद्धृत किये गये हैं।[3]

रावण मन्दोदरी संवाद नामक एक रचना की सूचना डा० बुल्के ने दी है। उन्होंने इसे १६वीं शताब्दी की गुजराती रचना बताया है और रचयिता का नाम लावण्य समय दिया है।

सीता हरण की कथा पर आधारित रावण मन्दोदरी संवाद नाम की एक अन्य रचना भी मिलती है। इसके रचयिता जिन राजि सूरि हैं। इस ग्रंथ का रचना काल अज्ञात है। राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि जिनराज सूरि की राम चरित सम्बन्धी रचना जैन रामायण है जिसकी प्रति कोटा के खरतरगच्छीय ज्ञान भण्डार में सुरक्षित है। जैन रामायण के रचयिता ने आचार्य पद प्राप्ति (संवत १६७४ विक्रमी) के पूर्व अपनी राम चरित संबंधी कृति की रचना की थी। यह

१—डा० माताप्रसाद गुप्त हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड—पृ० २०६।

२—सभा खोज रिपोर्ट सन् १९०० पृ० ७३ संख्या ८५।

३—वही—रावण मन्दोदरी संवाद—

आदि—श्रीराम चन्द्रायनम।

सूता सूता साहीं जागाया। तें प्रात प्रात मिग नागर।
सीत हरी कहि स्म करया। रंग रुठा रामना पागर।
सामन्त रावण राजाया।१।
जामा जामा मैं पिउ भावर। सीता सुता नइ वाय हरी।
वइरा वइरी वारन्य राम रे। साभ।२।

^ × ×

अन्त—
साहइ जन पायर तारइ। मारे विन्मन मायर।
मारे अग्नि ते सायन्य। मारे सारे नात ना भाग रे।
जय २।५०
राम नयाध्या आयामा। साहइ मान अवगर।
मति मानुष्य मन भार। वरत नर नव रगर। जय ।६०।
इतिश्री रावण मंदोदरी संवाद सम्पूर्ण लिखित रामा कृष्ण मध्य

रचना तुलसीदास के परवर्ती काल की है। यदि गयण मंदास्वा सवाई भी इसी कवि की रचना है तो उसे भी इसी काल के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए।

विनय समुद्र—उपकेशगच्छ के उपाध्याय विनय समुद्र की रचना पद्म चरित है। इसकी सूचना जैन गुर्जर कवियो भाग १ के पृ. १६९ में दी गया है। इस ग्रन्थ की रचना संवत् १६ ४ विक्रमी में बीकानेर में हुई थी। विनय समुद्र की कृति पद्मचरित की हस्तलेख गौड़ी जी के भण्डार उदयपुर में सुरक्षित है।

कुशललाभ—कुशललाभ ने मारवाड़ी के सर्व प्रथम छन्द ग्रन्थ पिंगल शिरोमणि की रचना की थी। कवि ने इसकी रचना जैसलमेर के महाराजकुमार हरराज के नाम से की है। इस ग्रन्थ में उदाहरणों के रूप में रामकथा का वर्णन मिलता है। ग्रन्थ राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर से प्रकाशित है।

सीता के चरित्र का वर्णन जैन कवियों ने स्वतन्त्र ग्रन्थों में किया है। सीता चरित्र का चित्रण करने वाले कई काव्य ग्रन्थ तुलसी पूर्व काल के राजस्थानी भाषा में पाये गये हैं। यह परम्परा तुलसी के परवर्ती काल में भी मिलती है। श्री नाहटा ने तुलसीपूर्व के सीता चरित सम्बन्धी राजस्थानी के तीन ग्रन्थों की सूचना दी है—सीता चउपई, सीता प्रबन्ध और सीता चरित्र।[1]

समयध्वज—सीता चरित्र का वर्णन करने वाली समयध्वज की रचना सीता चउपई है। यह ३२७ पद्यों की छोटी रचना है। इस ग्रन्थ में सीता के चरित्र की प्रधानता है। समयध्वज सागर तिलक के शिष्य थे और खरतरगच्छ के जिनप्रभ सूरि शाखा के आचार्य जिनभद्र सूरि के समय में थे। ग्रन्थ की रचना संवत् १६११ में आमाड़ मरुदुर्ग और गुर्जर वंशीय गन्धमल के पुत्र भावण और दरगह मल्ल के लिए की गयी। इसकी एक प्रति हम विनय लाइब्रेरी बनारस में है। हस्तलेख में १६ पत्र हैं और लिपिकाल संवत् १७ २ है।

सीता प्रबन्ध—इस ग्रन्थ की रचना संवत् १६२८ में रणथम्भौर में शाह चाचा के आग्रह पर की गयी। इसकी सूचना जैन गुर्जर कवियो भाग पृ. ७ में दी गयी है। ग्रन्थ में ४ पद्य हैं। इसकी एक प्रति नाहटा जी के संग्रह (बीकानेर) में बताया गया है।

हेमरत्न सूरी—हेमरत्न सूरि की रचना सीता चरित है। इस ग्रन्थ में सात सर्ग हैं। इसकी प्रतियां मनरदास जैन विद्या भवन तथा खरतराचार्य भण्डार बीकानेर एवं उज्जैन में हैं। ग्रन्थ में रचनाकाल का उल्लेख नहीं है। हेमरत्न

---

[1]—सीताराम चौपाई—समय सुन्दर कृत भूमिका—पृ. २।

मूरि व अन्य ग्रन्थ सवत १६३६ ४५ म मारवाड म रचित मिलते हैं। इसलिए लगभग माता चरित्र का रचना भी हुई होगी।

श्री नाहटा न एक गद्य ग्रन्थ माता चरित्र भाषा का भी सूचना दी । इस ग्रन्थ की १८ पत्रों की एक अपूर्ण प्रति उनके संग्रहालय म सुरक्षित है। प्रति का लिपिकाल १६ १७वीं शताब्दी है। श्री नाहटा का अनुमान है कि इसकी रचना सम्भवत १६वी शताब्दी म हुई थी। इसी प्रकार का एक अन्य ग्रन्थ सीता चरित्र मुनि जिन विजय संग्रह (भारतीय विद्याभवन बम्बई) म बताया गया है। इन ग्रन्थों का रचनाकाल अभी अनिश्चित है।

ब्रह्मरायमल्ल—जनरात म ब्रह्मरायमल्ल का रचना हनुमनगामी कथा के जन पचायती मन्दिर दिल्ली म सुरक्षित होने की सूचना दी गयी है।[1] प्रस्तुत लेखक को उक्त मन्दिर म हनुमच्चरित नाम की एक रचना मिली जिसमे लेखक अथवा हस्तलेख का लिपिकाल नहीं दिया गया है। इसमे हनुमान का चरित्र वर्णित है—

मना सिरोमणि जानकी नारि विभूषित अङ्ग।
नाम जपत प्रभु म जाय सिद्ध अभङ्ग। इत्यादि।

इस मन्दिर के शास्त्र भण्डार म एक रचना हनुमान चौपाई के नाम से प्रस्तुत लेखक को मिली जिसे ब्रह्मराय मल्ल कृत बताया गया है। इसका आरम्भ इस प्रकार है—

अथ भी हणवन्त चौपाई लिख्यते।
स्वामी मुनिसुव्रत जिणन्द समन्त लहि सिद्धि आनंद।
नाम पाप भगत मनि होइ नमोनाथ करि जोडी दोइ।

आगे कवि आत्म विनय निवेदन करता है—

सरसति मात्रि करौ उपगार उपजै बुद्धि हो विस्तार।
शुभ प्रसाद कर त्यागि सही ज्यों कथा विधि ताना कहौ।
गणिराज न रि पानी भर जौं न अन्य हाथ तुरत भरै।
लघु शास्त्र जाणा नार बणा ज्ञानि क । स्वी आगाय।

हस्तलेख म ७१ पृष्ठ हैं। इसमे हस्तलेख प्राचीन ज्ञात पड़ता है।

सन् १ ० की सभा खोज रिपोर्ट म लक्ष्मण नाम्याकामा कथा नामक रचना की सूचना दी गई है।[2] जिसका प्राप्ति स्थान जिया प्रतापगढ़ जर मना जनपुर

1—जन पचायती मन्दिर दिल्ली (अनेकान्त वर्ष ८ किरण १० पृ० ६१)।
2—सभा खोज रिपोर्ट सन् १९ ० पृ० • सख्या १ ।

बनाया गया है। सूचना में यह भी निर्देश है कि जन मत के अनुसार ब्रह्मराय मल्ल ने संवत १६१६ में हनुमान चरित्र की रचना की थी। विवरण में ग्रंथ के आदि और अंत के अंश भी दिये गये हैं। जैन पंचायती मन्दिर दिल्ली की हनुमान चौपाई तथा खोज रिपोर्ट में निर्दिष्ट हणवंत भाष्यगामी कथा अभिन्न रचनाएं प्रतीत होती हैं किन्तु इनके हस्तलेखों के परीक्षण की आवश्यकता है।

१—दूहा—आदि—ओं नमः सिद्धेभ्य ।

स्वामी सुव्रत नाथ जिणंद । सुमिरत होय वृद्धि आनन्द।
नास पाप भजो मति होय । नमो साम जादिकर दोय॥१॥
आदिनाथ जिनसेवा करो । मन वचन काम चित्त में धरो॥
अजितनाथ वंदों जगिसार। जाकी नाम पावौ सिवद्धार॥२॥
संभवनाथ जपौ मन लाइ । पंज जम असुभ क्षौ जाइ॥
नमो साम अभिनन्दन देव । सुरनर फणि मिले आवे सव॥३॥

× × ×

अंत—अनतकीर्ति मुनि प्रगटो नाम । कीर्ति अनंत विस्तारी जम
मघवंद न गाइ जगध्या । तासु मतो गुण जाइ न भण्या॥७५॥
तासुसिष्य चरणा लीन । ब्रह्मराइमल्ल मनि कर लीण।
हणुकथा कीयो परगाम । नियावन मनोसुर राम॥७६॥
भणी कथा मनि में धरि हरष । साठन से साठन सभ वष।
रति बसंत मास बसाष । नवमी सनि अंधारी पाष॥७७॥
हमी काइ मन पण्डित लोगा । होय जाहि विनयु तुम लोग।
अक्षरमात्र जु भूलो होइ । तारौ लाय कर मत कोइ॥७८॥
वार वार नवि भजो प्रमार । जग म जाव त्या ब्रतमार।
जो नर नारी त्या व्रतधार । राग सोग नवि व्यापे कार॥७९॥
जिणवर बचन एक दम देह । दुर्गति दुःखादि निवारी देह।
होउ मनो मायामो मरण । अंत भव धम जिनमर मरण॥८०॥
स्वामी सुव्रत नाथ जिणिंद । मनह लाइ सिद्धि आनंद।
नाम पाप भजो मनि लाइ । नमोस माम जोरी कर लाइ॥८१॥
निहि धार हणवंत चरित्र । सुणे कान दे लाइ मन्न।
अजर अमर जे निमल भया । जो जिणन्द ममारो जया॥८२॥ इति
श्री हणवंत भाष्य गामी कथा समाप्त। संवत १७ . वरष। चंद्र मुनि लख्यं लियौ। लाभ।

सुन्दरदास—जैन कवि सुन्दरदास की रचना का नाम हनुमान चरित है। इसका रचना काल संवत् १६१६ बताया गया है। कवि के सम्बन्ध में सूचना उपलब्ध नहीं है। सन् १९३२-३४ की सभा खोज रिपोर्ट में सुन्दरदास नाम के दो कवियों का विवरण दिया गया है किन्तु ये जैन कवि सुन्दरदास से भिन्न जान पड़ते हैं।[2]

रायमल—रायमल दिगम्बर जैन कवि थे।[1] इन्होंने राजस्थानी हिन्दी मिश्रित रचनाएं की हैं। इन रचनाओं का काल संवत् १६१६ से संवत् १६३३ तक माना गया है। इनकी एक रचना हनुमत कथा है जिसका रचना काल संवत् १६१६ बताया गया है। इनकी रचनाएं जयपुर के जैन शास्त्र भण्डारों में सुरक्षित मिलती हैं। ये राजस्थान के निवासी और मुनि अनन्त कीर्ति के शिष्य थे। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—प्रद्युम्न रासो, श्रीपाल रासो, भविसयत कथा, नमीश्वर रास, सुदर्शन रास, निर्दोष सप्तमी कथा आदि।

मालदेव—मालदेव की लगभग बीस रचनाओं की सूचना मिली है जो विभिन्न विषयों पर लिखी गयी हैं। श्री नाहटा ने इनका परिचय देते हुए लिखा है—श्वेताम्बर हिन्दी रचनाओं का प्रारम्भ तो कवि मालदेव से माना जा सकता है। ये कवि भटनेर के बृहद्गच्छीय शाखा के आचार्य भावदेव सूरि के शिष्य थे। संवत् १६१२ विक्रमी (१५५५ ई०) के आसपास इन्होंने प्राकृत, संस्कृत और राजस्थानी में करीब बारह रचनाएं लिखीं। ये बहुत अच्छे कवि थे। अपनी रचनाओं में इन्होंने सुभाषित भी बहुत से दिये हैं जिनमें कुछ इनके स्वरचित भी हैं। इनकी एक रचना अञ्जना सुन्दरी चौपाई है। इसके अतिरिक्त इनकी हिन्दी की अन्य विषयों पर सरस रचनाओं की सूचना दी गयी है।

जैन कवियों के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के राममक्त कवियों के सम्बन्ध में सूचनाएं मिलती हैं। मध्य युग में स्वामी रामानन्द तथा उनके शिष्यों प्रशिष्यों द्वारा राममक्ति का व्यापक प्रचार किया गया था। किन्तु इन महात्माओं की रचनाओं के सम्बन्ध में सूचना नहीं मिलती। स्वामी रामानन्द के नाम से मिलने वाली रचनाओं की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में पीछे विचार किया जा चुका है। गोस्वामी तुलसीदास के पूर्ववर्ती रामानन्दी महात्माओं की रचनाएं प्राय: उप

१—जैन पद्मावती मन्दिर, हिन्दी अनुवाद, वर्ष ४।
२—सभा खोज रिपोर्ट १९३२-३४ पृ० ६, संख्या २१०, ११।
३—राजस्थानी वर्ष ३, पृ० ८-११।
४—हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास—भाग ७, ३६।

उपलब्ध नहीं हैं। इन महात्माओं ने रामभक्ति तथा रामचरित के प्रचार करने के लिए हिन्दी में रचनाएँ अवश्य की होंगी। किन्तु रचनाओं के हस्तलेख कदाचित सुरक्षित नहीं रह सके। जैन ग्रन्थागारों की भाँति इनकी सुरक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी। तुलसी पूर्व की शताब्दियों में देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ अत्यन्त विषम थीं। वर्तमान सहस्राब्दी के आरम्भ में ही उत्तरापथ के मुसलमान विजेताओं के आक्रमणों से उत्तर भारत आक्रान्त हो चुका था। लगभग पाँच शताब्दियों तक देश की राजनीतिक स्थिति अस्थिर बनी रही। यह युग विनाश, ध्वंस और बर्बर हिंसा का युग था। जब हिंदू समाज और हिन्दू धर्म को तीव्रतम आघात सहन करने पड़े थे। इस काल के संघर्षों में विनाश हुआ और हिंदू संस्कृति के केन्द्रों को ध्वस्त किया गया। ऐसी स्थिति में प्राचीन ग्रंथों की सुरक्षा प्रायः असंभव थी। आचार्य पीठों में यदि कुछ हस्तलेख सुरक्षित रहे भी तो अभी तक वे प्रकाश में नहीं लाये जा सके हैं। इस प्रकार वर्तमान सहस्राब्दी के पूर्वार्ध की रचनाओं के सम्बन्ध में हमारी जानकारी स्वल्प है और प्रायः उनकी प्रामाणिकता और उनके रूप के विषय में विवाद है। नाभादास जी ने भक्तमाल में कुछ महात्माओं के सम्बन्ध में सूचना दी है। उनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है। नाभादास के कथन को प्रमाण कोटि में लिया जाना चाहिये।

मानदास—नाभादास ने भक्तमाल में सूचना दी है कि मध्य युग में भक्त मानदास ने रघुनाथ की गाथा कविता प्रकट की थी। इनकी रचना शृंगारी भाव की थी। मानदास के सम्बन्ध में नाभादास ने निम्नलिखित छप्पय दिया है—

> गाथा कवित रघुनाथ की मानदास परगट करी।
> करुना बीर सिंगार आदि उज्ज्वल रस गायो।
> पर उपकारक धीर कवित कविजन मन भायो।
> कौशलेश पद कमल अनन्नि दासन व्रत लीनो।
> जानकि जीवन सुजस रहत निसिदिन रंग भीनो।
> रामायन नाटक की रहसि उक्ति भाषा धरी।
> गाथा कवित रघुनाथ की मानदास परगट करी।

नाभादास के विवरण से ज्ञात होता है कि रामायण और हनुमन्नाटक के आधार पर मानदास ने अपनी रचना की थी जिसमें राम की रहस्य लीलाओं का वर्णन था। मानदास रचित उपलब्ध ग्रंथ नहीं मिलते हैं। इनकी रचनाओं के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं मिलती। मानदास के सम्बन्ध में और कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। उनकी स्थिति काल के सम्बन्ध में नाभादास मौन हैं। नाभादास ने रामानन्द की शिष्य-परम्परा में मानदास का नाम प्रमुख रूप से नहीं

मिला। अतएव उनके स्थितिकाल के सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। मशी तुलसीराम ने भक्तमाल प्रदीपन में नाभादास के विवरण का स्पष्ट किया है। किन्तु उन्होंने कोई नई सूचना नहीं दी है। उन्होंने लिखा है— जानकी जीवन महाराज के जो चरित्र रामायन और हनुमान नाटक और दीगर रामायनो में प्राचीन लिखे हैं उनको मानदास जी ने भाषा में इस तरह व शायरी से बयान किया है कि हर को मरगूब व फायदः बख्श हर जा जहां के हैं। अगरचे जुमला नौ रस अपने ग्रन्थ में मुफस्सल बयान किये लेकिन भगवत का शृंगार और माधुर्य रस ऐसा बयान किया कि जिसके पढ़ने सुनने में फिलजमल्द भगवत स्वरूप में तबीयत लग जाती है। और जो कवायद शृंगार के श्रीकृष्ण चरित्र में उपासकों ने बयान किये हैं उसी तरह राम चरित्र में मानदास ने बयान किया।[1]

नाभादास के विवरण के अतिरिक्त मानदास के सम्बन्ध में और कोई सूचना नहीं मिलती। खोज में प्रस्तुत लेख या कतिपय संग्रह ग्रन्थों में मानदास के नाम से भक्ति सम्बन्धी कवित्त्य पद मिले हैं। किन्तु उनकी प्रमाणिकता असन्दिग्ध नहीं है।[2]

मुरारिदास—नाभादास ने एक अन्य महात्मा मुरारिदास का उल्लेख किया है। विवरण से ज्ञात होता कि ये रसिक परम्परा के रामभक्त थे और मारवाड़ के रहने वाले थे। इनकी रचनाओं के सम्बन्ध में सूचना नहीं मिलती। नाभादास ने निम्नलिखित विवरण दिया है—

> कृष्ण विरह कुन्ती सरीर त्यों मुरारि तन त्यागियो।
> विदित बिलौंदा गांव देस मन्धर सर जाने।

१—तुलसीराम—भक्तमाल प्रदीपन—पृ० [illegible]।
२—राग रत्नाकर पृ० १ [illegible]।
भजन रत्नावली—पृ० २ [illegible]—

> मानस [illegible] आरती सवा। (टेर)।
> नार राज रं चारि सिंहासन [illegible] चारि [illegible]।
> रघुवर [illegible] [illegible] नर [illegible] के छवा।
> [illegible] [illegible] [illegible] उतर [illegible]।
> मातु कौशल्या [illegible] [illegible] कुन्त [illegible]।
> [illegible] मुकुट [illegible] [illegible] [illegible] चारु [illegible]।
> मानदास [illegible] [illegible] गुरु [illegible] राम [illegible]॥

महा महोच्छो मध्य संत परमानंद परवान।
पगन घूंघरू बांधि राम को चरित दिखायो।
दसा सारंग पानि हम ता संग पठायो।
उपमा और न जात मैं पथा पिता ना दिन धिये।
कृष्ण विरह कुंती सरीर त्यों मुरारि तन त्यागिया।

खेमाल रतन—इसी प्रकार रामभक्त खेमाल रतन राठौर की सूचना नाभा दास ने भक्तमाल में दी है। ये निष्ठावान राम भक्त थे। इनकी भक्ति पद्धति मधुर भाव की थी। किन्तु इनकी स्थितिकाल और इनकी रचनाओं के सम्बन्ध में नाभादास ने कोई जानकारी नहीं दी है। नाभादास का विवरण इस प्रकार है—

समाळरतन राठौर के अचर भक्ति आई सदन।
रना पर गुन राम भजन भागौत उजागर।
प्रमा परम किसार उदर राजा रतनाकर।
हरि दासन के दास दसा ऊंची ध्वज धारी।
निर्भै जननि उदार रसिक जस रसना धारी।
दसधा सपनि मन वच सदा रतन प्रफुल्लित वदन।
समाळ रतन राठौर के अचर भक्ति आई सदन।

मुक्तामणिदास—मध्यकाल के एक अन्य प्रसिद्ध रामभक्त मुक्तामणिदास थे। इनका उल्लेख भवानीदास ने गोसाईं चरित में किया है। डा॰ भगवती प्रसाद सिंह जिन्हें रसिक भक्त मानते हैं। मुक्तामणिदास गोस्वामी तुलसीदास के जीवनकाल में वर्तमान थे। इनकी रचनाओं के सम्बन्ध में सूचना नहीं मिलती। इनके स्थिति-काल के सम्बन्ध में और कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अयोध्या में गोस्वामी तुलसीदास जी से इनकी भेंट हुई बताया जाता है। गोस्वामी जी को उस समय मुक्तामणिदास जी ने निम्नलिखित पद सुनाया था—

सयन करहु रघुवीर पियारे।
हौं परदै आई कौसिल्या वन्दे भूप उठि सदन सिधारे।
पगले याम यामिनी बीती है नयनन भार भरे रतनारे।
प्रफुल्लित सरद कानन माना मन्द समीर मन्द वर धार।
रतनजटित मणिमय मन्दिर मह रचि सुचि साभित जनक सुता र।
सो जावन सहचरी सिया की सयन उचित सब साज सवार।
अति आलस वस भरे मग्न मन दरसन लाल रिपुघ्न उजियार।
सुनत मधुर धुनि पान किये करि उर ध्यान मुक्तामनि वार।

यह शयन के समय की आरती का पद है। शयनकालीन सेवा रसिक भक्तों की अष्टयामीय सेवा का अंग है। स्वामी रामानन्द ने दास्य भक्ति पर ही विशेष बल दिया था किन्तु कालान्तर में रामानन्द सम्प्रदाय अन्य वैष्णव सम्प्रदायों के सम्पर्क में आया। कृष्ण भक्ति में प्रचलित अष्टयाम पूजा पद्धति की भाँति भक्तों में भी अष्टयामीय पूजा का प्रचार हुआ। अष्टयाम पूजा पद्धति का प्रचार स्वामी अग्रदास ने किया था। उनका अष्टयाम नामक ग्रन्थ भी मिलता है। उनके उपरान्त नाभादास ने इसी परंपरा में रामाष्टयाम की रचना की। परवर्ती काल में श्री रामचरणदास महाराज जानकीराम कृपा निवास युगलानन्द शरण आदि महात्माओं ने इस पद्धति का प्रचार किया। आजकल इस पूजा पद्धति का पर्याप्त प्रचार है। स्वामी अग्रदास के अनुसार आठ याम इस प्रकार हैं—निशान्त प्रात पूर्वाह्न मध्याह्न उपरान्ह सायं प्रदोष और रात्रि। इन विभिन्न यामों में आराध्य की अनुकूल सेवा की व्यवस्था इस अष्टयामीय पूजा पद्धति में होती है।

परशुराम देवाचार्य—परशुराम देवाचार्य निम्बार्क सम्प्रदाय के सन्त थे। इनकी रामचरित सम्बन्धी रचनाओं रघुनाथ चरित सवयात्स अवतार की सूचना दी गयी है। ये ग्रंथ प्रस्तुत लेखक को देखने को न मिल सके। सगुण भक्ति सम्बन्धी पदों में भी रामचरित के पद मिलते हैं। इनकी स्थिति काल अनिश्चित है।

निम्बार्क सम्प्रदाय वैष्णव सम्प्रदायों में दार्शनिक सिद्धान्तों और प्राचीनता की दृष्टि से प्रतिष्ठित एवं महत्वपूर्ण माना जाता है। निम्बार्क मत के सर्व प्रथम उपदेष्टा हंस भगवान माने जाते हैं। सम्प्रदाय के प्रवर्तक निम्बार्काचार्य के संबंध में कोई निश्चित सूचना नहीं मिलती। किंवदन्ती है कि निम्बार्क का जन्म आन्ध्र प्रदेश में ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आन्ध्र प्रदेश में निम्बार्क मत का प्रचार नहीं मिलता और न वहाँ इस मत का कोई प्रसिद्ध पीठ है। इस मत का सम्बन्ध व्रज मण्डल से है और गोवर्धन के निकट निम्ब ग्राम निम्बार्क सम्प्रदाय का मुख्य स्थान है। निम्बार्क का जन्म गोदावरी के तट पर वैदूर्यपत्तन के निकट अरुणाश्रम में अरुण मुनि की पत्नी जयन्ती देवी के गर्भ से हुआ था। यह भी कहा जाता है कि इनका आरम्भ का नाम नियमानन्द था। निम्बार्काचार्य के नाम से प्रसिद्धि के संबद्ध में किंवदन्ती है। निम्बार्क मथुरा के पास यमुना के तीर पर ध्रुव क्षेत्र में निवास कर रहे थे। उस समय एक संन्यासी उनके पास आया। संन्यासी के साथ अध्यात्म चर्चा में वे तल्लीन हो गये और सन्ध्या हो जाने का उन्हें पता न चला। जब उन्होंने अतिथि को भोजन कराना चाहा तो पता चला कि संन्यासी रात्रि में भोजन न करेंगे। इससे निम्बार्क को मानसिक व्यथा हुई। इसी समय एक विचित्र घटना

घटा। अतिथि और निम्बार्क दोनों ने देखा कि आश्रम में नीम के वृक्ष के ऊपर सूर्य चमक रहे हैं। इस पर अतिथि ने भोजन किया। भोजन के उपरान्त सूर्यास्त हो गया और रात्रि का अंधकार छा गया। इस घटना के बाद आचार्य का नाम निम्बादित्य अथवा निम्बार्काचार्य पड़ गया और उस स्थान का निम्ब ग्राम के नाम से ख्याति मिली। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार निम्बार्क का आविर्भाव काल पांच हजार वर्ष पूर्व है। डा० भण्डारकर ने निम्बार्क सम्प्रदाय की गुरु परम्परा की परीक्षा कर निम्बार्क का समय सन् ११६२ के आस-पास निश्चित किया है। इसी समय को आधुनिक विद्वान प्राय स्वीकार करते हैं। निम्बार्क के चार शिष्य बताये गये हैं—श्री निवासाचार्य औदुम्बराचार्य गौरमुखाचार्य और लक्ष्मण भट्ट। निम्बार्क मत के आचार्यों में पुरुषोत्तमाचार्य देवाचार्य सुन्दर भट्टाचार्य और केशव कश्मीरी थे। केशव कश्मीरी दिग्विजयी पण्डित थे और कश्मीर में अधिक काल तक निवास करने के कारण कश्मीरी कहलाते थे। इनका स्थिति काल निश्चित नहीं है किन्तु कुछ विद्वान इन्हें अलाउद्दीन खिलजी (शासन काल १२९६–१३२० ई०) का समसामयिक मानते हैं। केशव कश्मीरी के पश्चात् सम्प्रदाय के तीन आचार्य गुरु शिष्य परम्परा में क्रमिक रूप से उत्तराधिकारी हुए। ये हैं श्री भट्ट हरिव्यास देवाचार्य और परशुराम देवाचार्य। इन महात्माओं ने भक्ति साहित्य का निर्माण किया। इनके स्थितिकाल के सम्बन्ध में विवाद है।

श्री भट्ट के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल ने लिखा है—ये निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान केशव काश्मीरी के प्रधान शिष्य थे। इनका जन्म संवत् १५९५ में अनुमान किया जाता है अतः इनका कविता काल संवत् १६२५ या उससे कुछ आगे तक माना जा सकता है। इनकी कविता सीधी सादी और चलती भाषा में है। पद भी प्राय छोटे-छोटे हैं। उनकी कृति भी अधिक विस्तृत नहीं है पर यह 'युगल शतक' नाम की सौ पदों की इनकी ग्रन्थ कृष्ण भक्तों में बहुत आदर की दृष्टि से देखा जाता है। आचार्य शुक्ल ने हरिव्यास देवाचार्य और परशुराम देवाचार्य के विषय में कुछ नहीं लिखा है। डा० दीनदयालु गुप्त ने इन महात्माओं के स्थितिकाल के सम्बन्ध में विचार किया है। उन्होंने ब्रह्मचारी बिहारी शरण की निम्बार्क माधुरी में दिये गये वर्ष को अप्रामाणिक माना है। बिहारी शरणजी के अनुसार श्री भट्ट का समय संवत् १[illegible]५२ और हरिव्यास का समय संवत् १[illegible]७०

१—भण्डारकर—वैष्णविज्म शैविज्म—पृ० ८७

२—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० १८८

है। डा गुप्त ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है—वास्तव में ब्रह्मचारी जी ने इन दोनों भक्तों की विद्यमानता का संकेत मात्र दिया है। निम्बार्क सम्प्रदाय तथा युगल शतक के रचयिता श्री भट्ट,केशव कश्मीरी के शिष्य माने जाते हैं। इनका (श्री भट्ट) रचनाकाल संवत् १६१० विक्रमी है। श्री हरिव्यास देव का रचनाकाल भी सूरदास के समय का ही है। वस निम्बार्क सम्प्रदायी हरिव्यास देव जी आयु में सूर से बड़े थे।[1] केशव कश्मीरी का समय निश्चित नहीं है। अतएव गुरु शिष्य परम्परा में हुए भट्ट हरिव्यास देवाचार्य और परशुराम देवाचार्य का समय निर्धारित करने में पुष्ट प्रमाण की अपेक्षा है। इनकी रचनाओं में कोई सम्बन्धी अन्तर्साक्ष्य नहीं मिलता। सम्प्रदाय के महात्माओं में श्री भट्ट ने सर्वप्रथम ब्रजभाषा में रचना की। इनकी रचना युगल शतक में जो आदिवाणी के नाम से सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है रचना काल सम्बन्धी एक दोहा है—

नयन बाण पुनि राम शशि गनो अंक गति वाम।
प्रगट भयो श्री युगल शत यह संवत अभिराम।।

इस दोहे में पाठभेद भी मिलता है। दोहे को उद्धृत करते हुए सभा खोज रिपोर्ट के निरीक्षक ने टिप्पणी में कहा है—लिपि की मामूली गलती से यह उलझन उत्पन्न हो गया। पहले पंक्ति में राग के स्थान पर राम लिखा गया राग की संख्या छ होती है। इस तरह १६५२ संवत् बदल कर १३५२ हो गया। यह तिथि १९०६–८ की रीपोर्ट में दी हुई है।[2] राग का राम कैसे हो गया इस पर रिपोर्ट में कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। यह उल्लेखनीय है कि सम्प्रदाय में श्री भट्ट का समय संवत् १३५२ ही माना है हरिव्यास और परशुराम का समय संवत् १३२० और संवत् १४५० माना जाता है। इस प्रकार इन महात्माओं का समय विवाद ग्रस्त है।

नाभादास ने परशुराम देव के सम्बन्ध में निम्नलिखित उल्लेख किया है—

ज्यों चन्दन को पवन निम्ब पुनि चन्दन करई।
बहुत काल तम निबिड़ उदै दीपक ज्यों हरई।
श्री भट्ट मुनि हरिव्यास सन्त मारग अनुसरई।
कथा कीरतन नेम रसन हरि गुन उच्चरई।
गोविन्द भक्ति गद रोग गति तिलक दाम सद बैद हद।
जंगली देश के लोग सब परशुराम किये पारषद।

1—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ८
2—सभा खोज रिपोर्ट, १९०६–०८ पृ० १८२

नाभादास के वर्णन से ज्ञात होता है कि परशुराम देव ने जगत्‌ देश के लोगों के बीच भक्ति का प्रचार कर उन्हें पारपन्थ अथवा वैष्णव बनाया। जगत्‌ देश से तात्पर्य जागड़ प्रदेश अथवा राजस्थान के भूभाग से है। किंवदन्ती है कि अजमेर के निकट उन्होंने सलीमशाह नामक फकीर को परास्त किया था और फकीर इनकी सिद्धियों के सामने नतमस्तक हो गया था। जिस स्थान पर यह घटना हुई थी उसी को परशुराम ने अपना प्रचार केन्द्र बनाया। यह आगे चलकर परशुराम पुरी किशनगढ़ आचार्य पीठ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। यहीं परशुराम की मृत्यु भी हुई थी। इस प्रकार नाभादास ने परशुराम के कार्यक्षेत्र के सम्बन्ध में ठीक सूचना दी है। परशुराम नाभादास के (संवत्‌ १ ४२ विक्रमी) से पूर्व हो चुके थे और नाभादास के समय तक प्रसिद्ध महात्मा हो चुके थे यह भक्तमाल के वर्णन से स्पष्ट है। राजस्थान में वैष्णव भक्ति के प्रचार में तथा ख्याति प्राप्त महात्मा होने में समय अवश्य लगा होगा। अतएव परशुराम देव को १६०० विक्रमी के आस-पास अथवा उसके पूर्व वर्तमान होना माना जा सकता है।

परशुराम की रचनाएं परशुराम सागर में संग्रहीत मिलती हैं। श्री भट्ट की रचना युगल शतक आदि वाणी के नाम से प्रसिद्ध है। आदि वाणी पर श्री भट्ट के शिष्य हरिव्यास देव का भाष्य महावाणी के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार परशुराम की रचनाएं आरम्भ में कदाचित परशुराम वाणी के नाम से जानी जाती होंगी। अनन्तर सूरसागर के अनुकरण पर उसका नाम परशुराम सागर हुआ होगा। संवत्‌ १६७७ में लिपिबद्ध परशुराम वाणी सुरक्षित है। परशुराम सागर में निम्नलिखित रचनाएं संग्रहीत हैं[1]।—

१—तिथि लीला २—वार लीला ३—बावनी लीला ४—विप्रमतीसी ५—नाथ लीला ६—पदावली ७—रागरत्न नाम लीला विधि ८—साच निषेध लीला ९—हरि लीला १०—लीला समझनी ११—नक्षत्र लीला १२—निजरूप लीला १ —निर्वाण लीला।

डा० मोतीलाल मेनारिया ने[2] परशुराम के बाईस ग्रन्थों की सूचना दी है—

१—साखी का जोड़ २—छन्द का जोड़ ३—सवैया दस अवतार ४—रघुनाथ चरित ५—श्री कृष्ण चरित ६—सिंगार सुदामा चरित ७—द्रौपदी का जोड़ ८—छप्पय गजग्राह को ९—प्रह्लाद चरित १०—

१—सभा खोज रिपोर्ट १९ २— ८

नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६१ अंक (४) संवत्‌ १९१७ पृ० ३२–३४०

२—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १४२

अमरवान गाग ११—नाम निधि लीला १२—नीच निपेध लीला १३—नाम गाग १४—निजरूप नागा १५—श्री हरि लाग १६—श्री निवाण लाग १७—ममयणी लीला १८—निधि गाग १९—नद लील २०—नक्षत्र लाग २१—वावता लील २२—विप्रमनी तथा ७ ० क लगभग फुटकल पद।

परशुराम देव की कविता का नाम परमा था। सगुण भक्ति सवधा पदा म राम चरित के पद मिलते हैं—

> लछमण बाण धनुपि ले माँहि जुद्ध की हम रे।
> माया साल का मह सता रूप करि हू असुर विषम रे।
> प्रगटी आदि जुद्ध विद्या बल सुमत मिनु सास्त्र रे।
> परशुराम प्रभ उभगि उठे हरि लाने हाथ अयम रे।

परशुराम के पदा म राजस्थानी का पुट पाया जाता है। एक पद दृष्टव्य है—

> गाविद म वहाजन तरा।
> प्रात मम उठि माहन गाऊ ता मन मान मरा।
> कनम करम भरम कुल करणा ताकी नाला न आसा।
> कहू पुकार द्वार सिर गाऊ वाऊ ब्रह्म विधाता
> परसुराम जन करत वीनती सुणु प्रभु अविगत गाया।

मध्य युग के भक्तों की स्थिति काल विवादग्रस्त है। इस युग के राम भक्त कवियों के सम्बन्ध म खोज रिपार्टों भक्तमाल आदि सूत्रा से सूचनाएँ मिलती हैं किन्तु इनके सम्बन्ध म निभ्रान्त मत स्थिर करने के लिए प्रमाणिक सामग्री सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। इस युग के कवियों के सम्बन्ध म व्यापक खोज काय की अपेक्षा है। तुलसी पूवयुग के कवियों की अप्रकाशित रचनाओं के प्रकाश म आ जाने पर तथा इनके सम्बन्ध म विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध होने पर इस साहित्य का सम्यक विवेचन सम्भव हो सकेगा।

गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व हिन्दी क्षेत्र के बाहर देश के अन्य भागों म विस्तृत राम साहित्य की रचना हुई थी। ये रचनाएँ प्रान्तीय भाषाओं म निबद्ध हैं। कबर कृत रामायण द्रविड भाषाओं म रामचरित सम्बन्धी सब प्राचीन काव्य है। इसकी रचना १२ वी शताब्दी म कबर ने तमिल भाषा म की थी। तेलुगु भाषा म तेरहवी शताब्दी के प्रारम्भ म द्विपद रामायण की रचना हुई थी। इसम लोकप्रिय द्विपद छन्द का प्रयोग किया गया है। इसके रचयिता रंगनाथ कहे जाते हैं। १ वी शताब्दी की दो अन्य रचनाएँ उत्तर रामायण तथा निवचनोत्तर रामायण भी मिलती हैं जिनकी कथावस्तु उत्तरकाण्ड पर आधारित है। मलय का अन्य प्रसिद्ध रामायण भास्कर कृत भास्कर रामायण है जिसकी रचना चौदहवीं शताब्दी म हुई थी। इसी प्रकार

मध्यात्म म रचित राम उग्निम चौन्हवा नताब्दी की रचना है। जा मध्यात्म की सवप्राचीन रचना है। राम सामव कवि न इसकी रचना की था। इसी यग का दूसरा रचना रामरयाप्याट है जिसम राम रावण यद्ध वर्णित है। मध्यात्म म १५ वा नताब्दी म रामचरित सम्बन्धी दो रचनाए मिलती हैं। कणान कृत कणाग रामयण म आदि काव्य का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। दूसरा रचना रामयण चम्पू है। आयभाषाओ म असमिया म हरिविप्र की कृति लवकुश यद्ध की सूचना मिलती है। इसकी रचना १४ वा नताब्दी म हुई थी। इसी नताब्दी म असमिया क उल्लेखप्रिय राम चरित माधव कन्दली कृत रामायण की रचना हुई था। पन्द्रहवा नताब्दी म नकरदेव न उत्तरकाण्ड तथा रामविजय नाटक का रचना की था और उनके शिष्य माधव देव न रामकाव्य का प्रणयन किया था। बगला क कृत्तिवास रामयण की रचना पन्द्रहवा नताब्दी क अंत म हुई थी। उडिया म १५ वा नताब्दी म सिद्धेश्वर परिदा न जो सारलादास क नाम स प्रसिद्ध हैं रामयण की रचना की थी। इनका रामायण अप्राप्य है किन्तु महाभारत और चण्डी पुराण मिलते हैं। मराठी म भावाथ रामायण रामचरित सम्बन्धी विशिष्ट एव प्राचीनतम रचना है। एकनाथ ने इसकी रचना १६ वा नताब्दी क अंत म की था। ... म १४ वा नताब्दी का आमाईत का रामकथा ना पर्व ग्रंथ मिलता है। ... नताब्दी की रचनाए य हैं—भास्कर राम विवाह और राम बाल चरित सखी कमल सीताहरण भीम रामकथा न पच्च भास्कर रामयण। इनक अतिरिक्त राम चरित सबधी और भी रचनाए मिलती हैं। हिन्दी तर प्रदेशीय भाषाओ म रामचरित सबधी कतिपय कवियो की हिन्दी रचनाए भी मिलती हैं। इनक सम्बन्ध म यहा स क्षेप म सूचना दी जा रही है—

नकरदेव—नकरदेव असम प्रदेश क निवासी थ। इनका जन्म सवत १५ २ (१४४९ ई) म असम म नौगाव जिल क बारदोवा ग्राम म हुआ था। नकरदेव असमिया साहित्य के जन्मदाता कहे गये हैं। नकरदेव कायस्थ थ। उनका देहान्त सवत १६२ (सन १५ ९) म हुआ था। उनक गुरु का नाम महेन्द्र कन्दली था।

नकरदेव न सन १४८१ म १२ वष की लम्बी तीर्थयात्रा की। इस यात्रा म व वृन्दावन और मथुरा भी गए। वहा स वे कहाँ गये इसका उल्लेख कुछ विद्वानो न किया है। ... बिरचि कुमार व आ न बताया है कि नकरदेव काशी म कबीर क शिष्य न मिल थ और कबीर की रचनाओ स प्रभावित हुए थ। वृन्दावन म नकरदेव न ब्रजभाषा सीखी थी और वहाँ ण क जन्म स्थान म श्री कृष्ण कथा तथा ब्रजभाषा काव्य का अध्ययन किया था। उन्होने ब्रजभाषा म बरगीतो

की रचना की है।[1] ये बरगीत ब्रजबुलि के प्राचीनतम उदाहरण माने गये हैं। कहा जाता है कि प्रथम बरगीत की रचना शंकरदेव ने बद्रीनाथ में की थी। इनका बरगीत नीचे दिया जाता है—[2]

धुर—मन मेरि राम चरनहिं लागु,
तन्‍ देख न अंतक जागु॥
पद—मन आयू क्षन-क्षन टूटे।
देखो प्रान कौन दिन छूटे॥
मन काल अजगर गिले।
जान तिलेके मरन मिले॥
मन निश्चिय पतन काया।
तइ राम भज तजि माया॥
रे मन इ सब विषय धंधा।
केन देखि न देखत अंधा॥
मन सुख पारके ज बिन्दे।
तुम चलि या चिन गोविन्दे॥
मन जानि या शंकर कह।
दासा राम बिना गति न ह।

शंकरदेव ने माधव कन्दली कृत असमिया रामायण के उत्तर काण्ड की रचना की थी। इसमें सीता बनवास में स्वर्गारोहण पर्यन्त रामकथा का वर्णन किया गया है। कथा वस्तु वाल्मीकि रामायण के अनुसार है।

रामचरित सम्बन्धी शंकरदेव का एक नाटक राम विजय मिलता है। इस रचना में विश्वामित्र के अयोध्या में आगमन से राम विवाह के उपरांत राम के अयोध्या लौटने तक की कथा का वर्णन किया गया है। सीता स्वयंवर के समय अन्य राजाओं का राम पर आक्रमण तथा अयोध्या लौटते समय मार्ग में परशुराम से भेंट का वर्णन गया है जो वाल्मीकि रामायण कथावस्तु में भिन्न है। कुछ विद्वानों ने राम विजय नाटक को मथिली की कृति माना है। उनके अनुसार मिथिला प्रदेश में विद्यापति के समय के आसपास नाटकों की रचना आरम्भ हो गई थी। विद्यापति के पश्चात उमापति उपाध्याय का पारिजात हरण नाटक तथा अन्य नाटक उपलब्ध हैं। मथिली नाटकों की परम्परा आगे प्रदेश में भी पाया जाता है। आसाम में इन

[1]—असमाज लिटरेचर—पृ० ३१ २६
[2]—सूरपूर्व ब्रजभाषा—पृ० ०७

नाटकों को अंकियानाट कहा जाता है। डा० बरुआ ने अंकिया की उत्पत्ति अंकिका अभिनय से बताया है। कतिपय विद्वानों का मत है कि असम के वैष्णव भक्तों ने भक्ति प्रचार के लिए विद्यापति की भाषा को अपनाया। इन भक्तों की कृतियां रामायण महाभारत तथा श्रीमद्भागवत पर आधारित हैं। दिल्लीतर प्रान्तों के कवियों ने भाषा और भाव के माधुर्य से आकृष्ट होकर ब्रजभाषा में ही रचनाएं की थीं यह अन्य विद्वानों का मत है। शंकरदेव के इसी कोटि के दो अन्य नाटक कालियदमन और रुक्मिणी हरण हैं जो कृष्ण कथा पर आधारित है।[1]

शंकर देव के शिष्य माधवदेव ने असमिया रामायण के बालकाण्ड की रचना की थी। इन्होंने शंकरदेव की भांति बरगीत लिखे हैं। ये सूरदास के समकालीन थे। अंकिया नाटक परम्परा में इनके कृष्णकथा पर आधारित नाटक अर्जुन भंजन और भोजन व्यवहार मिलते हैं। इनका जन्म संवत १५८६ में हुआ था। ब्रजभाषा की इनकी रचनाएं प्रौढ़ हैं।

मालण—गुजरात प्राचीन काल से ही भक्ति-क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है। इस प्रदेश में कृष्ण भक्ति को प्रमुखता मिली। गुजराती साहित्य का बहुत बड़ा अंश कृष्णकथा पर आधारित है। यह प्रदेश श्रीकृष्ण का लीलास्थल भी रहा। गुजरात के कवियों की आरम्भ की रचनाएं अपभ्रंश में मिलती हैं। श्रीकृष्ण के जन्म प्रदेश ब्रज की भाषा के प्रति भी यहां जनता में आकर्षण हुआ और कवि समाज में ब्रजभाषा सम्मानित हुई। मध्य युग में ब्रजभाषा अथवा ब्रजभाषा मिश्रित प्राचीन गुजराती में रचनाएं मिलती हैं। इन प्रदेशों के कवियों ने राम चरित संबंधी काव्यों का भी निर्माण किया। इसमें १४ वीं शताब्दी के आसाइत कृत रामलीला ना पदो का उल्लेख किया जा चुका है। इसके पश्चात मालण ने राम विवाह और रामबाल चरित काव्य की रचना की थी। इनके पुत्र उद्धव और विष्णुदास ने सम्पूर्ण रामायण की रचना संवत १५१५ में की थी। मालण का समय विवादग्रस्त है। किन्तु सामान्यतया मान्य मत यह है कि मालण विक्रम की १५ १६ वीं शताब्दी में वर्तमान थे।[2] इस प्रकार ये सूर के पूर्ववर्ती ठहरते हैं।

मालण ने ब्रजभाषा में भी रचनाएं की हैं। कविता में ये अपना नाम मालण जन रखते थे। इनके ब्रजभाषा में प्राप्त पद कृष्ण भक्ति संबंधी हैं। गुजराती में इन्होंने रामकाव्य की रचना की थी। संभव है रामचरित सम्बन्धी हिन्दी के पद भी इन्होंने बनाये हों किन्तु इस प्रकार की रचना अभी प्रकाश में नहीं आयी है।

१—असमिया साहित्य का इतिहास—डा० नवकान्त मिश्र—पृ० ६४, ६५

२—के० मा० मुंशी—गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर।

बड़ौदा विश्वविद्यालय के ओरियंटल इन्स्टीट्यूट के नियामक प्रो० सांडेसरा ने सूचित किया है कि विक्रम की १६ वीं शताब्दी में माडण ने रामायण की रचना की थी। माडण की कृति अमुद्रित है।[1]

राम चरित सम्बन्धी काव्यों की हिन्दी तथा हिन्दीतर प्रदेशों में इस प्रकार विविध सूत्रों से सूचनाएँ मिलती हैं। इनका परिमाण अत्यधिक है। इनसे रामायण की व्यापकता एवं लोकप्रियता सिद्ध होती है और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि राम चरित के आधार पर भक्तों एवं कवियों द्वारा विभिन्न युगों में विस्तृत राम साहित्य की रचना की गयी। ये रचनाएँ विविध साहित्यरूपों में निबद्ध मिलती हैं। इन सूचनाओं में निर्दिष्ट सामग्री के परीक्षण की अपेक्षा है। प्राचीन ग्रंथों के प्रकाश में आ जाने पर तथा उनके परीक्षण-अनुशीलन के पश्चात् गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व रचित हिन्दी राम साहित्य की और अधिक विशद एवं सुशृंखल रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकेगी।



१—प्रो० भो० ज० सांडेसरा का लेखक को पत्र।

परिशिष्ट

हस्तलेखों में प्रचलित कतिपय रचनाएँ

स्वामी रामानन्द

(संवत् १३५६-१४६७ विक्रमी)

राम अष्टक

अवधपुरी निज धाम जहाँ बहति सरजू गंग है।
दसरथ नन्दन असुर गंजन श्रीराम सोई पूरन ब्रह्म है ॥१॥
मध्य माता भ्रात लछमन भरत धारी श्रीराम है
चारबुन तन धारि कराय श्रीराम जोई पुरन ब्रह्म है ॥२॥
रघुपति छत्र माह जोरी एकादश सनतान है
रावन मारा धौ भापन थापा श्रीराम जो पुरन ब्रह्म है ॥३॥
मोरह बरन जुग चारि प्रगट। सात शीप नव खंड है
आदि अंत मध्य राजा रहा श्रीराम जो पुरन ब्रह्म है ॥४॥
भाल तीलक यामान लोचन आनंद कन्द श्रीराम है
स्यामलो मूरति मधुर मुरति श्रीराम पुरन ब्रह्म है ॥५॥
अन्न माया नव नाथ। सिद्धा अस्ति सरना वद नायक
सात जाग नन्द सुन्दर श्रीरामचन्द्र पुरन ब्रह्म है ॥६॥
चरन हरि धन माट धन जाग नन्दा लगा रहा
मरनो पस्तार महा मुनी श्रीराम जो पुरन ब्रह्म है ॥७॥
ब्रह्म विष्णु महेश नारद शारदि रटत रहा
सनकादि सकल गावत श्रीराम जो पुरन ब्रह्म है ॥८॥
राम अष्टक नित नामु नित सुन्दर सदा मोग रहा
रामानन्द अवतार अवधू श्रीराम जो पुरन ब्रह्म है ॥९॥[1]

---

[1]—आर्य भाषा पुस्तकालय नागरी प्रचारिणी सभा हस्तलेख संख्या ९५१।

ग्यान लीला

मूरप तन धर कहा कमायौ। राम भजन बिन जनम गमायौ॥
राम भगति गत जाणी नाही। मद् मूरी घधा माही॥१॥
मरी मरी करता फिरियौ। हरि समिरण ता कछू न करियौ॥
नारा सेती नेह लगायौ। कबहू हिरद राम नहिं आयौ॥२॥
सुप माया मू परा पियारा। कबहू न सिवरयौ सिरजनहारौ॥
स्वारथ माहि चहू न्मि धायौ। गोविन्द का गण कबहू न गायौ॥ ॥
एम एसे करत बहारा। आय साहिब क हरकारा॥
बघ काल कीयौ चारगा। सुत बटी नार काइ नहि सगा॥४॥
जा तुम करम कीया है भारी। सा अब सग सु चल तुमारी॥
जम आग ल ठाग कीनो। धरम राय बूझण कू लानो॥५॥
काया कौन कीया त करमा। सिरजन हार न भज्यौ निमरमा॥
जिण पाणी म पदा कीयौ। नर सी रूप ताहि क दीयौ॥६॥
जा तू बिसरयौ मूरप अधा। तौ तू आयौ जम प बधा॥७॥
हरि की कथा सुनी नही काना। तौ तू नाहा जन सू छाना॥
साध क सगत मैं कछू न रहियौ। मुप सू राम कछू नहिं कहियौ॥८॥
हरि का भगति करी नर नारी। धरम राय यू कहै विचारी॥
मौकू दोस न दाज काई। जिसा करम भगताऊ माई॥९॥
पाप पुन कू न्यारा छाणू। जा तुम करम करा सा जाणू॥
तुमरा करम तुम भगताऊ। आप पुरा का आग्या पाऊ॥१०॥
साहिब की अग्या है मौकू। महा कसौटा दहू ताकू।
घडा घडी का ल्या हू। करमान्ति तरा भर दहू॥११॥
है हरि बिना कूण रपवारा। चित्त द सिवरो गिरजणहारा॥
सकट मैं हरि वह उबारी। निस दिन सिमरी नाम मरारी॥१२॥
नाम निरवल सबन न्यारा। रटत अघट घट हाय उजारा॥
रामानन्द यू कहै ससझाए। हरि सिमरयौ जन न्याव न जाई॥१३॥[1]

राम रक्षा

ओं सप्त जनादि पुरुष सत्य सत्य गुरू
सच्या तारणा सत्र दुख विदारणा।

१—हस्त लेख सख्या ७८ नागरी प्रचारिणी सभा सग्रह

सध्या उच्चर विघ्न टर ।
पिंड प्राण की रक्षा श्री नाथ निरजन करें ॥१॥
नान धूप मन पुष्प इन्द्रिय पच हुताशनम ।
क्षमा जाप समाधि पूजा नमो देव निरजनम ॥२॥
ओं अखड मडलाकार व्याप्त यन चराचरम।
तत्पद दर्शित यन तस्म श्री गुरव नम ॥३॥
परम गुरवे नम परात्पर गुरव नम
परमात्म गुरव नम आत्मा गुरव नम
आदि गुरदेव अनादि गुरव नम
अनत गुरदेव क चरणारविंद को नमो नमस्कारम ॥४॥
हरत सकल सताप दुष दारिद्र राग पीडा कलह कल्पना
सकल विघ्न खड खड तस्म श्रीराम रक्षा निराकार वाणी
जनम तत्त निर्में मुक्ति जानी ॥५॥
वाचिया मूल दखिया अस्थूल
गगन गरजत घुनि ध्यान लाया।
त्रिगुण रहित सीत्र सतोष मैं
श्रीरामरक्षा लिय आकार जागा ॥६॥[1]
पच तत पचभूत पचीस प्रकृति
पच भू आत्मा पच वाई।
सम निधि सम घर आणी प्राण अपान
उदान व्यान मिलि अनहद सब्द की पवरे पाई ॥७॥
उलटिया सूर गगन भेदन किया
नवग्रह डक छदन किया
पीविया चन्द जहा बरसा सारी
अगनि परगट भई जुरा बदन जरी
डकनी सकनी परि भारी ॥८॥
घरनि अकाश विधि पच कल्ना किया
अगम निगम महारस अमृत पिया
भूत प्रेत दैत्य दानव समारा किया

१—राम रक्षा की प्राप्त प्रतियो म पर्याप्त पाठ भिन्नता मिलती है। आदि और अन्त के अश प्राय सभी प्रतियों म भिन्न हैं ।

वज्र की कोठरी वज्र का ढट है
वज्र का खड्ग वार मारा ॥१०॥
गरु पर्या उन्या नाग नागनि डस्या
विष का लहरिस निद्रा न पाप ।
पिंड निरमल हुआ पिंजरे पन्ना सुआ
राग पाठा लिया नहिं दह व्याप ॥११॥
रम रम ररकार उच्चरत बानी
श्रवण सुनता रहै समदृष्टि मति मेला ।
झिलमिल ज्योति रणकार बरखता रहै
नाद विंद मिल भया रग रेला ॥११॥
सनि के नहरा सनि सीमत रहै
आपुस आपु मिलि आप जाग्या ।
मरार सा मरार मिलि मरार निरपना रहै
जाव सौं जाव मिलि ब्रह्म जाग्या ॥१२॥
नन सौ नन मिलि नन निरपत हेर
मप सा मप मिलि बोल वाल्या ।
सवन मिलि नाद साझत रहे
सब्द सौं सब्द मिलि सब्द पाया ॥१ ॥

निरति सा निरति मिलि निरति लागा रहै
सुरति सू सुरति मिलि सुरति आव।
ध्यान सा ध्यान मिलि ध्यान मगन रहै
रग सा रग मिलि रग पाव ॥१४॥
ग्यान मा ग्यान मिलि ध्यान सौ ध्यान मिलि
जाप अजपा जप मन तम जाप जप
चित्त मा चित्त मिलि चित्त चतन भया
उनमना मिलि सा भाव रूप ॥१५॥
सार मा सार मिलि नाम मा नाम मिलि
जाव मा जाव मिलि अन्त बिरह मिल अन मरा॥
मिल गया घाग अन्धार नि सार म
स्वन पन्कि मनि हार बन्ना ॥१६॥
परत नन उचरन बन बन अन सूर गाउ गरिया धार।
लावन गुरुार मचना रहै लखिया मोरिया बावन वार ॥१७॥

गग उल्टी चन्द भानु पच्छिम मिले निवमिया निव परवास कीया।
आमा माहि सीतर समर रहै यू अजगावर हाय आपु जाया ॥१८॥
धुणाधुणा स्वणस्णा वणाझणा नाद नाद सुपसना वाउ दे साज साजा।
चाचरी भूचरी पचरी जागचरी उन्मुनी पाच मुद्रा साघने सिद्ध राजा ॥१९॥
नर डूगर जल और थल वाट औ घाट ओघट निरजन निराकार रक्षा करै।
वाघ वाघिन का कष्ट सुप वाला चौमठ योगिनी काटि कुटका करै।
पचग भूचरा पमपाला नौ ग्रह दून पापड टारै ॥२०॥
अखिल ब्रह्माण्ड सिद्ध लोक म नाद फिरवा करै।
अविगत पुरुष निरजन निराकार का चक्र फिर वाचा आन्या ॥
दृष्टि अरु मुष्टि छल छिद्र म वार वनाए नवग्रह अवध हात पापड वापा ॥२१॥
पथ मैं घार म सार म वार म दस परदस म राज क लज म।
अग्नि क थाह म नावक पमता रक्षा करत श्री राम रक्षा करै ॥
जागता मावना गावना मावना सत क माम प हाय घार रहै ॥२२॥
चक्र लीया राम जाप रक्षा करै गुरु का जाप र गुरु सब।
चन्द सूर दादि एक घर रस्वा करै जानिया सत्राम स्वाविन्वा ॥२ ॥
करि साधा क्रिया नरसिया अमन पिया विपवाद मन दूरि भागा
कमर दर कमर जानि ज्वाला जा ममर गुजार जागता नागा ॥ ४॥[1]

१—नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट—सन्‌ हस्तलिखित प्रकाशित विवरण पृष्ठ २०१ संख्या १८० डी। आदि और अन्त के अंश इस प्रकार है—

आदि—॥ओ गमाय नम—स्तोत्र—आ अस्य आगम रक्षया निराकार वाणी अनभय तर्क निरभै मुक्ति पाना॥ वचिरा मूल नगिया अस्थूल प्रजिया गानि धुनि ध्यान लागा॥ त्रिगुण रस्ता दर मार तनाय मागा॥श्री राम रक्षया माया आकार जान पवन तत पचास प्रकृति गज वाय पचमू आत्मा भूमि सिद्धि धरि धर जाना पान अपान उदान व्यान समान सिद्धि अष्ट गगन का पजरि जाता॥ उलटिया सूर ग्रह चक्र छत्र छाया॥ पपिमा घर तत्त्व कला सारी॥ तनि प्रकार इ गगा यमुन अरी उडिगा॥ राजिनी धरि मागा॥

अन्त—बहुत निज धाम। जहा वसा अच्युत घनश्याम सवा मन हरि सम्त। बयम नवर नगर॥ सम सुनि आनन्द। अन पचार गुणावद॥ महमुद्र पीवा॥ निपि का दरस गर दूरि भागा। पवन सम कपम दरस जानि ज्वाला जगी॥ भवर गुजार जरम गगन राम नाम व्यापि तु पागावत धाजा

योग चिंतामणि

जो अकट विकट रे भाई। काया (गढ़) चढ़ा न जाइ॥
पछिम (दि) सा की घाटी। फौज खड़ी है ठाढ़ी॥१॥
जहा नाद बिंदु का हाथी। मतगर रु चल साथी॥
सतगुर माहि विराजै। नौवत नाम की बाजै॥२॥
जहा अष्ट दल कमल फूला। हंस सरोवर म भूला।
जहा राग रंग होय पास। जहा है हंस के बासे॥ ॥
शब्द को सीखले शब्द का बूझले शब्द से शब्द पहिचान भाइ।
शब्द तो हृदय बसे शब्द तो नयना बसे शब्द की महिमा चार वेद गाई॥४॥
शब्द तो आकाश बसे शब्द तो पाताल बसे शब्द तो पिंड ब्रह्मांड छाई।
आप म देख ले सकल म पेख ले आप मध्य विचार भाइ॥ ॥
कह रामानंद सतगुर दया करि मिलिया सत्य का शब्द सुन भाई॥
फकीरी बदल बादसाही॥६॥

सता बन्दगी दीदार। सहज उतरा सागर पार॥
साह शब्दा कर प्रीत। अनुभव अषड घर जीत॥७॥
अब उल्टा चढ़ना दूर। जहा नगर बसता है पूर॥
तन कर फिकिर कर भाग। जिसम राम रोमनाई॥८॥
मुरत नगर का कर सयल। जिसम आतमा का महल।
इंद्रिया सिंच मूल मिलिया। जिस पर रचना बावा पाव॥९॥
दहिन बो मध्य पर धरना। आसन अमर धर करना॥
द्वादश पद (न) भर पाता। उलट घर शाश को चढ़ना॥१ ॥
दो नना कर बान। भौंह उलटा कम कबान॥
त्रिवना कर असनान। तरा मैल जाय आवा जान॥११॥
बाजा गव का बाज । बाजी सिंधु म राज॥
लगी है गव के बाजा॥१२॥
मना बन्द मवन्द पार। दाह सरवर दोहे पहार॥
जहा पर कुदरत का मार। लगा है नौ लख हार॥१३॥

बन उपरल नन निति पावन सबद त्रिकुटा मारग ॥ स्वामी रामानंद जी ब्रह्मज्ञाना ना राम रख्या शब्द थिर हो ध्याना पय पार सग्राम समु सकट बचन॥ इति श्री गुसाइं जी रामानन्द राम रक्षा सपूर्ण॥

सकल करण मूल। जिन्या बट ता दपना मन फन्द।
माया ब्रह्म का वासा। परा है प्रेम की फासी॥१५॥
बाजन बिना तम तूर। मह ऊग पच्छिम (म) सूर।
भवर है सुगन्ध का प्यासा। किया है कमल का बासा॥१ ॥
इंद्रिया आराम का दाता जिसका चालना न गात।
उनमना भर जदन मसाल॥१६॥
अमहाथ स्या मायी । गगन में बादला छाइ।
अमत निझ (र) ल्याइ। उलट दरियाव निझरिया॥१७॥
यिह विधि चन्ना चौसठ साल्या।
हंसा आन बगा तीर। निरन्ति चुग मोहवन हीरे॥१८॥
राम नना म रम रह मरम न जान कान।
जिसके मिलिया सतगुरु तास पूरा मुहरम हा (ई)॥१९॥
कहे रामानन्द बच्चा अगम पथ का मला।
खडा रापा गयब का हा सरावर के तीर॥२०॥
सापू खेले नखगा दष्टि बन का पन।
जानि अपनी गिलमिगा बिनु वाना बिनु तेल॥२१॥
साव परव नाद का सुरति निरति का पन॥२ ॥
माना का सागर गगा हींग का परवान।
चन्द्र सूय का गम नहा जहा व दान पाव दाग॥२ ॥

भगति जाग ग्रंथ

भगति जाग एक सुणा मायाणा बुधि प्रमाण कछू कन बपाणा।
भगति करण करा आरभ मैल उर जब धरि हाइ थमा॥१॥
प्रथम परइ न्द्रि बगाग गहे बिसवास कर मन त्याग।
इनी जाति रह उगामा अथवा घर अथवा बनवासा। ॥
माया माह कर नहीं साह रह मजन सू बपरवाह।
कनक कामनि का कर न सगा आगा लिना घर न जगा॥ ॥
सील साव छम्या उर धार धारज महन दया मन धार।
दान सगासा राष पागा न्य तिस्य नाह तमासा॥४॥
मानि मनाम कछू न चाहै एक दगा मन निरवाह।
रावगह का गह न आण काडा कुजर पर करि जाण॥ ॥

१—सागर बदन्वान क मघन म।

थर भाव वामू नही करि है गुर की सबद ले हरि धरि है।
सार गहै कूकस सव नापे रमता राम न्ह करि राप॥६॥
आनदेव की कर न सेवा पूज एक निरजन दवा।
मन माही सब सूज ज राप बाहरि क वचन सत्र नाप॥७॥
सुनि स मन्दिर अधिक अनूपा ज्याम मूरति जाति सरूपा।
सहज सिघासन वठ स्वामी आगें सेव कर गन्नामा॥८॥
उन्दर सील सनान कराव प्रेम प्रीति का पाहाम चन्दाव।
भाजन भाव धर ल आगें मनसा बाचा कछू न मागे॥९॥
ग्यान दीप क आरती उतार घटा अनहद सबद उचार।
तन मन सकल अरपन करही दान हाथ फनि पाया परही॥१०॥
मगन होइ नाच अरगावे गद्गद रोम अचल होइ जाव।
सेवा भाव कमू नहि चोर निन निन प्रीति अधिकी जारे॥११॥
ज्य प्रतिव्रता रह पावपासा य साहिब क सिंग रहे दासा।
कोउ दस भूति मति जावा पतिवरता पति न निरवानो॥१२॥
आन दसा पाव मति घारो, गुर को सबद ते हिरदे धारो।
मन्दा अपडत ताली ज्ञावो पूरण ब्रह्म मैं जाइ मिलावो॥१३॥
राह भगति अनति है विरला पाव मव।
भाग हुवो त पाइये कहे रामानन्द गुरदेव॥१४॥[1]

[1]—श्री ―――कर नाम्या व सग्र स।

गोस्वामी विष्णुदास

(रचनाकाल लगभग संवत १४९२ विक्रमी)

भाषा वाल्मीकि रामायण

अथ कथा रामायन की दूसरी बार कथा हनुमान निमित्त।
वाल्मीकि जो कह्यौ पुरान। ताकी कथा जो करौं बखान।
बाल चरित थोरो मन रह्यौ। हनू गये सु सागर के कह्यौ।१।
हनू गये सु सुनहु धरि ध्यान। बाढ भेटि आव मतान।
सिय लछि न व्यापै रागु। हाथन नघा नारि वियोगु।२।
लंकी गुनि अगम गम्य गह्यो। मनु जामवन्त सौं कह्यौ।
सा सो कहौ कौन बरवार। नाघि जाइ साइर की नार।३।
या साइर को वार न पार। सुर नर कौन उल्लंघन हार।
सर हाय भयौ संदेह। हम सौं कह्यौ अजावुधि एह।४।
ताके जामवंत तहि ठाइ। मन संदेह करहु तुम काइ।
यह जु एक बन्दर हनिवंत। सकि पारिय नाही अंत।५।
तीनि बार एकहि दिन जाइ। र आव स्या उचकाइ।
हरु हरु स्मवु रविम दल वहै। यह सुनत अचायो कहै।६।
अगम अचिरज करयो वहारि। जामवन्त दूज नर जारि।
साइ पारिय कह्यो यहून। या हनिवंत वचन की पून।७।
तासौ हरि बात जामवन्त। पवन पूत कहीय हनिवंत।
सब कथा तिहि धारन कह्यौ। जग वर दर्शि मह रह्यौ।८।
माता जनम जबहि हो भयौ। तबहि कूदि सूरज पहि गयौ।
तान गम्य आजा परवान। तरहै छाडि गयौ सो भान।९।
यह हनिवन्त गिल्यौ जब भान। तब सुरराज भयौ अवमान।
हैरान अथ जब लयौ। सुरपति वज्र पवनसुत हयौ।१०।
हन्यौ लिलाट हनिवंत परयौ। निकसत प्रान पिता सम्हरयौ।
नधिर आया पवर सुरन। पायौ तहाँ मूया हनिवंत।११।
पुत्र माग तब उर लगाउ। कौन बन्धनौ ता पाव।
एसौ पुत न गरयौ सहारि। अब सम्भूरन पानी सपारि।१२।

इतनी साचि पवन थिर भयौ। नारद कहन ब्रह्म मौं गयौ।
तवही कही पिना सौ वात। मिरिर मिघार हातु ह तान।१ ।
त्रभूवन रापो करौ पमाउ। पुन वियोग रिमानौ वा।
ता बिनु सा बिनमन लाग। दान देव जच्छ बर नाग।१४।
सव कारन नारद तप कह्यौ। मुनि ब्रह्मा जु हस आरन्या।
इद्र आदि मव गौहनि भय। मव मिलि तहाँ पवन पह गय।१५।
हरि हस ब्रह्मा अरु सुर साय। मव मिलि पवन कौं जार हाय।
ब्रह्मा करयौ पूरज तप साधि। पुन जिवाउ त्रभुवन राषि।१६।
इतनौ सुनि तव वाल्यौ बाउ। साइ जन कौं एहु सुनाउ।
पाछ हू जौं घाउ मारि। पुत्र माग क्यौं सकौं सहारि।१७।
चित्रगुप्त जम एह कहत। हम थ मीचु नहा हनिवन।
ब्रह्मा असिप कह्यौ अभाच। प्रकार ज्यौं नाही मावु।१८।
सव देवनि मिलि कही असास। ना भेदहि आवध छनीम।
अगिनि नार थ विया न हाइ। रन सग्राम न जान कोई।१९।
वाचावत बाउ सा भयो। हन मूए त बहुरि जायो।
जव यह रिषि आमि क भाइ। कछु आपन न जान काइ।२
अव तुम यामहु जाइसु दहु। साया सुधि ल आव एह।
सुग पताल लहै कौ मार। आवन जात न हव है वार। १।
अगद सुनि अजा की वात। हन हकारयौ हर्ष्यौ गात।
ता मौ विनव वारवार। तुम विन और न ज है पार।२ ।
कहिहु कहा राम सौं जाइ। कम सकिहैं मोह छिपाइ।
जौ साता की पाव सार। तुम थ जमु करिहैं गमार।२ ।
उत्तिष्ठ हरिमार्दूल उपयस्व महार्णव।
वर्यै सापिगतिनाय हतमामा गतिस्तव।२४।
इति श्री वाल्मीकरन रामायन भाषा वनन हनूमान स्तोत्र नाम प्रथमा सग।१।

× × ×

पहिर कपरा तिनि रुवग। अन्धकार माजायौ मत जग।
माथ अगर मवनि परिन्रा। पिता वचन ज राषा धरा।१२ ।
रामहि अरथ कौया मगाइ। मत्रघन लछिमना कुमार।
कौशल्या गिगारा माया। अन्धकार मब भामुनि ल्याया।१ १।
ज सुधाव रा का नारि। न कौसल्या रूप हकारि।
दान ग्हन मानिनि जर। गजमाला हारा गारर॥

गम गयो महूरतु एकु। मत्रा कर करी अभिषपु।
मत्रधन सों कह्यो हुकारि। गड़ु सिंघासन अवधि मझार॥
सुनत मत्रधन सुपमा हाय। राषी पाम गया रघु लाय।
ता ऊपर वठ रघनाय। गहिमन गायी उपयो गाय॥
श्री राम जब रथ आरूढ्यो। ल्पन गग मव गहगह्यो।
श्री राम क रथ क नाम। मरवग स्या नान॥
स्वारथो भग्य कुवार सों भयो। श्रमन रथ मत्रधन ल्यो।
चार मत्रापन कपिपति गह। यहि विधि राम अजध्या गए॥
चन्न ल्पु कर अति वासु। हाया चले चन चौं पासु।
भया अवासह ज ज वार। राया अवनि वरयो पसार॥
उतिम मगुन भए ता तन। पन्चे राम ग्रह आपन।
जमरथ मन्दिर गयो कहैं। ताहि कपिराउ मभापन रहैं॥
मन घरा ग्यु न्ति गयो। तव कपिराउ भरथ बानयो।
अवकैं विरमैं वाजु न हाइ। तारय कौं पठवावहु वाइ॥
न आवहि तारथ कौं नार। हाइ अभिषेकु राम मरोर।
पवन पूतु पूरित निसि गयो। दक्षिन दिसि भुपहिम नउ भयो॥
उत्तर मान्दर अगन गयो। कायो पयानो तवहिं सुमन।
कायो पयानो तवहिं सुमन। य पग्य तारथ का ल्न॥
उ जहु वन्द आए बहारि। हाउ तारथ मतमन वारि।
भया अभिषेकु राम नरनाय। डार ल्पाय पीमर की हाय॥
मत्रा चारि विराहित साय। उनि अभिषकु कायो रघुनाय।
गाय कुसुम माथ छाडीयो। मन्च मात्र वन धनि नयो।
जाइं कौमन्या बरवई। गन्दरि वीहन सुमित्रा गइ।
मातावन हार निनि हाय। बर निन्न आरतनि साय॥
माय बिना आवहि न नारि। कामिनि गावहिं मगन्चार।
उग लाग बग्नि ज बाजु। राम कहैं अभिषकहु आजु॥
माव जब भग्य कौं राजु। मैं सुर दय चाहौं आजु।
अर गन्धि जगतु कौन कों आनि। ग्नना सुनि तव भरथ बग्वाद॥
सुन्दर गाय गहिमन दुरा स या। माउ छत्र भरथ पौं वत्सा।
राजु आजु लन्मिन कौं न्द। गरि गहिमन तव निन्द मद॥
गदा गाज कम्न करौ गह। अन्दिनि मगनि राम का करें।
माहि राज बुवार न न्यो। गिरि अभिषेकु राम कौं कायो॥

तव सो छत्र भभीपन हाथ। मन चौंर आपुन कपिनाथ।
दीनो मित्र भभीपन हाथ। उन भए मन इक साथ॥
रिपि आसिप कहै अति चाव। गवत्र कानो गान सुभाव।
अछरि नाचहिं तारहिं तार। नेपन सभा मन भुवार॥
सब काहू मन भयो अनदु। जनकु चकोर प्रकास्यो चदु।
कनयरमाल कुसुम की भई। देवराज माला नर्मई॥
द पठई पवन के हाथ। पहिरी तबहिं कठ रघनाथ।
भ्रमउ कर रतननि जरे। कवन हार कन सूदर॥
तहा सुग्रीव भभीपन राइ। दर्श राम भेंट गर लाइ॥
जगन्‌ कवर और कपि साथ। दीन बीहन रतन रघुनाथ॥
पूज बारबार। भली वस्त रापी न भडार।
सीता कठ नमालि हार। कर जार बूझीयो भ्रतार॥
आइस दिह्सि कहै तव राउ। वहि न्हि ज जापर भाउ॥
सुनि जानकी बौहत सुप भयौ। तबहि हकारि पवनसुत ल्यौ॥
घाली माल कठ ता तन। बौहत बचन बाल आपन॥
जब ह्रौ साग समन मह परा। तब हनिवन आपी मून्रा॥
साई भई तरौना माहि। तान डरन न ह्न हौं ताहि।
बौहत भगति करि समने राइ। राम अजुध्या राज कराइ॥
ग्यारह महम वरम वन्दिन। भूआ सब धरनि नी पन।
बन्यो राज अवधिपुरि वर। ता सिर सेत छत्र फरन्नर॥
तरवर सेव फूल नित मान। सपत शेष राघो की आन।
अरु दी जहि विप्रनि कौ नान। नाप धन ता एक ममान॥
दहि अमप भर आमरन। विप्रनि मवा नाग करन।
राग साग आपना न हाइ। विपवा नारि न शाग कान॥१७०॥
परजा नाग धरम व्यौंपर। पाप निमि न राजा घर॥
माच न कान हाइ अरान। बिन माग बरम जन्यार॥
करि अनानि न काज कान। मवत शाप रघों का गान।
मन न रामचन्ति जा मुन। नाम पार विम्म कवि मन॥
क दरिद्र नित्ति शन। राग व्यापि भ्यावार न कन।
पुत्र कन्ति मन सुप रहैं। छत्रा सुन म्वन बन रहैं॥
जन्मि वानो न धरन शन। राम चरित मन गाय कान॥
राम नाम जो नाम कनान। मु नर नर न करन जाइ॥

जाग जुगति मन राप ध्यान। कचन बौंहन गाज दान।
तीरथ मल कर जो न्हान। तिनि कौं राम नाम परवान ॥१५७६॥
पृथ्मी काउ राउ न आहि। स्वारथ कारन विनउ जाहि।
त्रिसनाम मन राषी रहै। राम चरितु धम लगि कहैं॥
पिता वचन मयौ वनपडु। मारयौ दस कघर वलिवडु।
सुर तेतीम छारि जम ल्यो। मा श्रीराम सभा कौं जया।१५७७।इनि श्री वाल्मीक कृत रामाइन भाषा वनन लका रावन वधा भभीपन अभिषक करनो भरद्वाज समागमनो मरथ राम लछिमन सत्रुघन जटा उतारना भरत मिलाप वरनना अजुध्या प्रवस करना श्री राम जा राज अवषेक करना नाम एक चालास मो स्वग।४१। इति हनूमाटे सपूरन सुभमस्त जथाप्रति लिषत मम दाप न दीयन॥[1]

१—हस्तलेख संख्या २२२।२८६ स्थानिमिपल संग्रहालय इलाहाबाद।

ईश्वरदास

(रचनाकाल लगभग संवत १५५८ विक्रमी)

भरत विलाप

दोहा—

सरस्वती चरन मनावौ मनमह बहुत उछाह।
रामकथा बहु गावौ जाके गुन अवगाह॥

चौपाई—

रामचंद्र बन कीन्ह पयाना। राजा दसरथ मन पछिताना।
रामचंद्र छाड़ा अस्थाना। राव सकल नगर परधाना।
रावहि सिआ सती वर नारी। राम लखन बिन अवध उजारी।
रचि रचि केकइ पत्र लिखावा। दूत हाथ दे नेहर पठावा।
जाहु दूत भरथ के पासा। अवधपुरी कै भया निरासा।
चारि दूत बिदा तब भएउ। उतर बसि जाजन मन गएऊ।
जहँवा भरथ चतुरगुन रहेउ। जाइ सो दूत दंडवत कएउ।
कहौ सो दूत अवध कुसलाई। कस कौसिल्या दसरथ राई।
कस राम लखन दुवौ भाई। घर घर राजनीति ठकुराई।
तिनके पुत्र भाग अनुरागा। विधि कर लिखा भए बरागी।
का हम भाग छत्र कर भगा। का धौं दसरथ पाएउ गगा।
एमन मोर न मन पतिआई। अबता अजोध्या लखहु जाइ।
चले सो दूत अवध घरि पाऊ। अवधपुरी कर भगि सुभाऊ।
आतुर चलेउ न बसन सभारा। आगे पाछे न एक बिचारा।
चलि चलि आए अवध प्रवेसा। नगर समार पाग सिर केसा।
पवन बन्दन रावन जाई। पुनि कहु नगर लाग कुसलाई।
जब सो दूत कहा कुसलाई। हम आज कहे अहे गासाई।
बलि चला अब दूना भाई। मय बचन मैं कहौ उपाई।
मन उदास मन्त्री नव दूना। मोर मन हारे पछताना।
बसुधा देखा मन व गाना। पसु पछी सब दूत मलीना।

दोहा—

सत्य वचन तुम भाखहु कुसल छेम की बात।
राम लखन घर है की नाही मन मह बहुत उत्पात।

चौपाई—

अवधपुरी तहा दसरथ राजा। उहनी अठारह बाजन बाजा।
अवध निकट जब पहुचे आई। सुधर्म सब दसा जाई।
नगर के लोग सब मन मारा। अवध निकट कान्ह पगारा।
घर घर रोव पुरुस वर नारी। राह बाट रोवहि पनिहारी।
वन मह राव पसु औ पछी। हाहाकार रावहि जलमछी।
भरथहि देखि लोग सब धाए। कुसल भरत पूछ मन लाए।
कहा मो नाम अवध कुसलाई। नहि तो प्रान तजत हौं भाई।
निस्च वचन कहा समझाई। वापति घरि मानि बडि आई।
कवइ माइ भल न कीन्हा। राम लखन सीता वन दीन्हा।
राम लखन बन दान पठाई। भल ना कीन्ह तुम ककइ माई।
सुननहि भरत परे मुरझाई। वर न चन अचेत होइ जाई।

दोहा—

बारहिबार मोह्रम भमि परे मुरछाइ।
नि सुमिरि रघुनायकहि बहुरि उठ सुधि पाए।

चौपाई—

सुमिरि राम लछमन दोउ भाई। रावन भरत कौसिला मह जाई।
तब सुमित्रा बडि बिलखाई। भरथहि देखि विकल उठि धाई।
भरथ के चरन परा मुरझाई। भरथ उठाइ अंक मह लाई।
भरथ सुमित्रा राव गल लाई। पुनि सुमित्रा बोध कराए।
कौसल्या तब रावति आई। भरथहि देखि विकल होइ धाई।
रावहि भरथ बहुत बिलखाई। पुनि कौसिल्या बोध कराइ।
पूछ भरत कहा तुम माई। कहवा लखन कहा रघुराई।
जिन दसरथ मार नत जुडाई। पुनि कौसिल्या कहा बिलखाइ।
राम लखन माहि न बिसराए। पुन्हु आइ कहहु माई।
जिन दसकोस सार पठाई। अग्य राउ रावन गम भाई।
सुन्दर भात महल मन जाई। बिकल आइ मग राउ लगाई।
राम लखन वन जान पठाई। कौसिल्या गयनि चितलाई।
अब कासिल सुख अमराई। जग तुम्हार परे गोसा जगाई।

दोहा—

बन विनि वाह प्रवन्न मन कौसिल्या सब माइ।
बहुरि चल निज मातु गह करना बरनि न जाइ॥

चौपाई—

रोवत भरथ चल पुनि ताहा। बठा कवइ मन्दिर जाहा।
भरथहि देखि कवइ उठि धाई। कहा भरथ ठाढ़ी रहु माई।
जब ताहि मिन्न कैकई माई। राम लखन जब देस बताई।
कहत कवई वचन भारा। राम लखन गए बन के आरा।
आपन कहो भरथ कुसलाई। राज करा अपन घर आई।
सुनतहि भरथ परे मुरछाइ। छाता फारि मरहि किन माई।
राम लखन बन दीन पठाए। जिन देखन मोर नन जुड़ाई।
कवइ पापिन आगल कीन्हा। राम लखन साता बन दान्हा।
बधु विराध बहुता दुख दीन्ह। सो करम कहा तुम कीन्हा।
धिग जीवन कवल तोहारी। मरतउ जा न हेति महतारी।
मनइ राज करा घर आई। हम जाब बन जहा रघुराई।
अहिनीनी अकरम कीन त माइ। सो तो भरथ बनहि अब जाई।

दोहा—

भरथ बचन सुनि केवल भर्म बरत खभार।
पुत्र चला बन राज तजि विथा करक हमार।

चौपाइ—

भरथ देखि रोवहि विलखाई। कहा कवई सुनि समझाई।
धिग धिग तार राज औ पाप। राम लखन बिन अवलम्पाप।
राम चरन बिन जग हमारा। राज करा धिग तुम तुमारी।
जा तुम चला बन भरथ सियाई। पिता मात लाग उ तुम जाई।
सुनतहि भरथ पर मरगाई। कर न चल अवन होइ जाई।
कर धरि आगन मन आइ। का अरथ करा पहनाई।
ता पर रावन मन भरि जाई। नरिह अरथ तन चरि जाइ।
सतहि उठ मन मन मरछाई। छाता फारन तिता मर जाई।
मन तिता तुम प्रान गवइ। कवन करक तुरत मिटि जाई।
अन्दिर पनम मात मत ताई।
रम तिता रग नरावा। राह बान रम करम कराव।

दोहा—

दछिना दान पुन्य बहु पितुहिन सब विधि दीन्ह।
बहुरि जाए निज मातु महं पुनि गा गावर कीन्ह।

चौपाई—

तुम ककइ बड अजगुत कीन्हा। सुत का वहत भाँति दुख दीन्हा।
स्वामी मारउ कवन ग्याना। जहि सुत लागि राख प्राना।
का मुख लै कै बोल्हु बना। लाज न आवत तुमरे नना।
समुझि सो राम वास वन सला। रोवत भरथ भए मन मला।
गुरु वसिष्ठ तब बोलेउ जाई। धीरज धरो सभलखि भाई।
तब उठि भरथ गुरहिं सिर नाई। द असीस तब गुर समुझाई।
बेगि राम कह आन वालाइ। ककइ कलक तुरित मिटि जाई।
तब उठि भरथ सो वनहि सिधारा। जहिं वन राम लखन पगुधारा।
रोवत कलपत चलत जाई। वन महं दुख काटा अधिकाइ।
कस सिधारेहु श्री रघुराइ। तुम दरसे बिन जीव मोर जाई।
यहि विधि ते तुम वन पगु धारा। कठिन पथ पग है सुकुमारा।
महिपर पाव राम कर चाहा। देखत भरथ दडवत कीन्हा।
कहा राम लछमन दुवा भाई। धरती मातु मोहिं देहु बताई।
चरन न पाव पथ केहि ओरा। परउ दाउ तल पाए न फारा।
पसु पछी सब देखी परेउ। राम के पत्रकुटी लगि गएउ।
देखि राम लछिमनहिं बोलाई। सुनत लखन अए तब धाई।
कहा राम देखा को आई। सुनत बचन आए तब धाई।
चरन वखि उचे वखि धाए। चारो ओर निहारत भए।
पूरब दिसा दिस्टि तब दीएउ।
देखा सन अपार जो आवा। वन पर सकल महं तबि धावा।
जाना भरथ फौज ले आवा। राज निसकट करन सो आवा।

दोहा—

लछिमन मन अति त्रास करि कहा राम मन जान।
भरथ मिलन प्रभु आए रघुवनी मन लाइ।

चौपाई—

देखा भरथ मारि दल आवा। लखमन सना मग लावा।
ककइ हमरा मन पठावा। राम कजाव सग महं आवा।
जब हिरदय महं का हेउ ग्याना। भरथ मिलन आए अस जाना।

भरथ हृद की गति जब पाई। लछिमन का तब लेन पठाई।
कोह मोह ममिता जन राखो। मधुर वचन बय मन भाखो।
भरथ समान न सील सुधाई। सम्पुरा भुवन जाना भाई।
रामचन्द्र वर अएसु पाई। लछिमन गए भरथ के ठाईं।
दंड प्रनाम कीन मन लाई। धाए भरथ अंक मह लाई।
रोवत भरथ आगे बिलखाई। ल तब गए राम के ठाईं।
धाए राम गहि अंक मह लाई। भरथ परे पुनि राम के पाइ।
रघुहि राम बहुत समभाए। क्वन कुमत जा तुम चलि आए।
प्रिय परिवार सकल दुख पाए।
अस कहि भरत परे पुनि रचना। उपजा प्रम जाय नहिं बरना।
रोवहिं भरथ नयन झरि लाइ। राम उठाइ बहुरि उर लाइ।

दोहा—

अति प्रिय बहुरि वचन कहि भरथ कीन्ह परवाव।
देस बात गुन दोस कहि वद प्रय मति सीव।

चौपाई—

प्रथम कुसल भरथ समझाइ। कहा कौसल्यादि सब माइ।
दसरथ अइसा प्रान गवाइ। साची बात कहा समुझाइ।
तब भरथ कहन अस लागे। तुम बिन गामा सब अभागे।
मन बिरतन कहै अस लागे। तबहा सुनत राम दुख भागे।
दसरथ पिता प्रान क हाना। कौसिल्या रोवहिं निसि दाना।
सुमिना बहुत रिस्याई। निन्च वचन कहो समझाई।
तजिए वचन अयोध्या जा। नहिं ता प्रान सब लाग गवाइ।
कक पापिन य दुख दाहा। सुन पर बन पनि जिउ लीन्हा।
रामचन्द्र तब कन्ह ताहा। तात सुनौ बिधना दुख दाहा।
ककइ माता अति भल काहा। स्त मित्र सब हारि क चाहा।
पिता क वचन मानि हम आए। मुन न बन मून फल खाए।
मन वचन माता हम लाए। अब मैं कहा सुना तुरो भाई।
तुम घर कस जाए का हाना। प्रजा लाग सब सहित समाना।
चौन्ह बसर मन बन पाए। तनन भरथ न्ह चहि आए।

दोहा—

न्ह सब जय रहै बन पिता गए सुरधाम।
कहि बिधि माम काम पुर राज प्रजा प्रिय काम।

चौपाई—

कहा भरथ सुनिए रघुराई। हम नहिं अवधहिं जाइब भाइ।
संग रहहिं हम विपिन गवाई। न्पति चरन नाथ लौ ठाई।
कहा भरथ तुम मारहिं काजा। भजहु राज अवधपुर राजा।
माइन मह हम सवक ताहारा। करि सवा पारहिं निमतारा।
भरथ वचन सुनि प्रभु सुख माना। कहा भरथ तुम साधु सुजाना।
दसरथ पिता भरथ अस भाई। सत्य कहा जग काउ न पाई।
कर धरि भरथहिं लान उठाइ। जाहु भरथ अब मारि दोहाई।
प्रजा लाग सब बाधहु जाइ। महता मत्री सब बठाई।
निज निज काज सब सपराए। राजकाज सब साधहु जाइ।
कौसील्या सुमीत्रा माइ। कहेव प्रनाम सब सिर नाई।

दोहा—

पिता वचन हम मानिके चौन्ह बरस प्रमान।
तब लगि राम सभारा मार वचन हित मान।

चौपाई—

चौन्ह बरस अवधि सुनि पाइ। तबहिं भरथ रावहिं गल लाई।
बहुरि राम बहु भाति बताई। दम काउ गति कहि समझाई।
राजनाति मन कहि समुझाई। तुरित पान्का आनि पराई।
रामचन्द्र की आउस पाइ। चल भरथ चरनन सिर नाइ।
सबक धरम जानि मुन माना। आग भरथ अवध अमयाना।
नगर क लाग पूछहि सब धाइ। कहा राम लछिमन दुवा भाई।
राव मन कहा भरथ समुझाइ। राम क चरन पर हम जाइ।
जारि पानि बहु विनि सुनाई। निस्व वचन कहा समताई।
निस्व वचन कहा समुझाई। नहिं आए लछिमन रघराई।
चौन्ह बरस राम नहिं आए। अस कहि लागन बाघ कराए।
कौसिल्या पहु गए दाउ भाई। मुन क चरन परा मुरछाई।
भरथ उठाइ अंग महु लाई। पाव पकरि बहुविधि समुझाई।
नहिं आए लछिमन रघराई। तब पौआ गिर लीन चढ़ाए।
राम लखन गिय बन मुर पाए। चरन मात भरि सज बनाए।
हमहु रहब पुर बाहर जाइ। नन्दिग्राम मुइ खावरा मनाइ।
सुन प्रिन ल गायरा बनाइ। बन आगन प्रभु मन लाए।
आग पौआ धरि गिर नाइ। रामहि जन्त मन मुर पाए।

निज प्रति पूजा ताकी करही। अवध अगार प्रान तन धरही।

दोहा—

भरथ विलाप कथा विमल सुरजदास कवि गाइ।
जो नर सुन जो गावही जनम सुफल होइ जाइ।[1]

१—श्री उदयशंकर शास्त्री की प्रति से। कवि का नाम सूरजदास है। नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलेख संख्या १३८।२ ०१ लिपिकाल संवत १८८० में अन्तिम दोहा इस प्रकार है —
भरथ मिलाप कथा विमल सूरदास कही गाय।
जो नर सुनही जो गावही जनम जनम अघ जाइ॥
इसी प्रकार खोज रिपोर्ट २ — १ संख्या १३१ पृ० ६६८ में उल्लिखित संवत १९ की प्रति के विवरण में अन्तिम दोहा निम्नलिखित है—
भरथ मिलाप कथा विमल सूरदास कवि गाई।
जो नर पढ़ै सुचित्त मन तासु पाप छै जाई॥

स्वामी अग्रदास

(सूरदास के समसामयिक)

ध्यान मंजरी

श्रीरामचन्द्राय नमः

सुमिरौं श्री रघुवीर धीर रघुवंश विभूषण।
शरण गहे सुख रासि हरन अघसागर दूषण।१।
सुंदर श्याम उदार राम कर सारंग धारी।
हिय धरि प्रभु को ध्यान विबुधजन आनन्दकारी।२।
अवधपुरी निज धाम परम अति सुंदर राजै।
हाटक मणिमय सदन रतन की कांति विराजै।३।
पौरि द्वार अति चारु सुहावनि चित्रित सोहैं।
चंपतार मंदार कल्पतरु देखत मोहैं।४।
भवन भवन विश्राम चित्र की रचना सोहै।
बनज सुमन की पांति कांति शोभन मन मोहै।५।
तोरण बंदनु पताक ध्वजा तहँ विमल सुहाई।
मनो रघुवर हित स्वर्ग आई त्रिभुवन छवि छाई।६।
वीथी नगर बजार रतन रचि भांति उजासा।
रहन न पावै तिमिर सहज ह्वै होत प्रकासा।७।
दरसि पुरी छवि भरी मध्य के अटकन रथ रवि।
हरषि बरषहिं कुसुम विबुध जन निरखि पुरी छवि।८।
श्री रघुवर जस भरी पुरावर चर को दायन।
घमगाहन नर नारि बस प्रभु सुजस परायन।९।
गावत रघुवर चरित विचित्र जिन तिन के भामिनि।
सुर उर बाढ़ति लाज रूप जनु दमकत दामिनि।१०।
तिन सुकृतिन को भाग बरनि कोउ सकहिं आई।
सबी सारद नागसुता दधि के मन उत्साह।११।

अवधपुरिन को अवधि यहै जनि स्मनि बरना।
ध्यान धरै सुप करनि नाम उचरत अघहरना।१३।
करि करि वर्नन के म कहत उपमा जो गनीजन।
जय उक्ति मय जत्य अवध सम अवध भले वन।१ ।
वापा कूप तड़ाग रत्न मापान बनाय।
रहै अमल जल पूरि विगसि कल्हार जु छाय।१४।
सातल तरु की छाह विहग कजन मन भाय।
चहू ओर आराम रगत उपवन ज सुहाय।१ ।
तिन पर कोकि करात कार कोकिल किलकारन।
सुरधरि तिहू को म्हू मनल प्रभ सुजसु उचारत।१६।
झूमि रहे लगि भार डार फल फूलन भारा।
पथिक जनन फल दन मनहू यह भुजा पसारी।१७।
निकटहि सरजू सरित घरे अस उजल धारा।
भवसागर को तरन विन्ति यह पान उतारा।१८।
हरन पाप भय ताप जना चिनित फल दना।
सुहनी जनन आराह सुख नाकन निसनी।१९।
तीर नरल को मार त्यन अम परम सुहाय।
मनहु व्योम हो त्यागि अमरगन सवन आय।२ ।
कर जो मज्जन पान धन्य बड़ भाग जनन को।
विविध भाति के घाट तहा मन यत्रिन मुनिन को।२१।
नार परम गभार चल्न गहिर सुर गाज।
जहा तार बन सघन कमल अति मन्द राज।२ ।
कमल कमल के मध्य जत्य मिलि भवन गजार।
मानहु मनि जन वृन्द वद घुनि नाद उचार।२ ।
त्रिविध बयारि विहार चहनि निमि दिन अघहारा।
मातल मन्द सुगन्ध परम अति आनन्दकारा।२४।
वारन वरवाव कन्हार मनमान बनाव।
मन्द परम सुगन्ध निकर मिलि गजत गाव।२५।
कानन तल अगार साव तलि त्यन भाज।
विविध भाति के वो सब वनानव राज।२६।
सारा पत्र अनूप कन्त कर्नी साभा उनहा।
प कुसुम न त न निरखि मुनि रहत न तनहा।२७।

कल्पवृक्ष के निकट तहा एक धाम मनिन जुत।
कंचनमय सब भूमि परम अति राजत अदभुत।२८।
स्वर्णवेदिका मध्य तहा एक रत्न सिंहासन।
सिंहासन के मध्य परम अति पद्म सुआसन।२९।
ताके मध्य सुरस कर्णिका सुन्दर राजै।
अति अद्भुत तहा तड वह्नि सम उपमा भ्राजै।३०।
तामधि सोभित राम नील इन्द्रीवर जोभा।
अखिल रूप अतोल सजलघन तन की साभा।३१।
सिर पर दिव्य किरीट जटित मजुल मणि मोती।
निरखि रविरता लजित निकर दिनकर की जोती।३२।
कुन्डल ललित कपोल जुगल अम परम सुरेखा।
तिनको निरखि प्रकास लजित राकेश निसमा। ।
मेचक कुटिल सुचारु सरोरुह नयन सुहाय।
मुख पकज के निकट मनहु अलि छौना जाय। ४।
भकुटी मध्य पर द्गुल मनहु अलि अवलि विराज।
नासा परम सुदम वदन रुचि पकज लाज।३५।।
दीरघ दिप्त लिलार पान सुगादर घारा।
सुदर तिलक उदार अधिक छबि साभित भारी।३६।
परम ललित वनमाल हार मुक्ता छवि राजै।
उर श्रीवत्स सुचीह्न कठ कौस्तुम मणि भ्राजै।-३।
जज्ञापवीत सुरस मध्यवारा जु विराजै।
उभय भुजा आजान नगन जटि ककण राजै।-८।
चूनी रत्न जराव मुन्दिका अधिक सवारी।
सोभित अद्भुत रूप अरुन की छवि अनुहारी।३९।
भूषण विविध अनक पीतपट साभित भारी।
रसन चार चतुवार छार कल कचन धारी।४०।
रोमावलि बनि आइ नाभि अग स्पत सुहाई।
त्रिवली तारा मधि ललित रेखामय अति छबि छाई।४१।
कटि परदेश सुन्दर अधिक छवि दिसित राजै।
जानु पुष्ट घन गूढ़ गुल्फ अति ललित विराजै।४ ।
नूपुर पुरट सुगाद रचित मणि मानिक मा।
रणक्त सुर सगा सुना पुरजन मन मा।४।

जुगल अरुण पद पद्म चिह्न ध्वजादिक मण्डित।
पद्मा निय निकेत शरणगत भवमय खण्डित।४४।
दक्षिण भुज शर सुभग सुहावण सुन्दर राज।
ब्यायुध सुविशाल वाम कर धनुष विराज।४५।
षोडस वरस किशोर राम नित सुन्दर राज।
राम रूप को निरखि विभाकर कोटिक लाज।४६।
रूप सच्चिदानन्द वाम दिसि जनक दुलारी।
अस राजत रघुवीर वीर आसन सुपकारी।४७।
नगन जरे छवि भरे विविध भूषण अस सोहै।
सुदर अग उदार विदित चामीकर को है।४८।
अलक झलिकता स्याम पीठि सोभित कच बनी।
सुदरता की सीव किधौं राजत अति सनी।४९।
रचित सुविविध प्रकार माग गजतार सवारी।
मनहु सुरसरी धार बनी सोभा अति भारी।५ ।
पाटन का लर और बडे र उज्वल मानी।
सघन तिमिर के मध्य मनहु उरगन की जाती।५१।
रतन रचित मनि जटित सास पर बिन्द छाज।
ललित कपोल सुजुगल करण ताटक विराज।५२।
उज्वल भाल सुचारु अमित उपमा अस सोहै।
राजत चरण सुहाग भाग को भवन किधौं है।५३।
गारोचन क तिलक ललित रचा बनि आई।
उयत नासा ज्यात सुभग बनारी सुन्दाई।५४।
नकुटा नयन विशाल सौमि चितवनि जग पावनि।
मानहु विगसत कमल बदन अस ज्यात सुन्दावनि।५५।
रदन अधर तर लसत पानि अस ज्यात सुहाइ।
नार बिरक विचनार बिच मगर छवि छाइ।५६।
कठ पानि अति ज्याति सुजति मस्ता वरमाला।
पन्ति रचित बर पीत विराजत हृदय विशाला।५७।
लम तन कर रचित अग्न सारा रा गाता।
कचकि विचित चतुर विचित्र साभित रग भाना।५८।
वर अगद छवि लस बाहु अति लसत सुहाई।

पद्मराग मनिमाल जटित कंचन जुग राजै।
मनहु बनज के फूल दुहुँ फनि पंक्ति बिराजै।६०।
लेंहगा कटि पर लसत भाँति सामिन अति गहरी।
लसत अमित सित पीत मध्य नाना रंग लहरी।६१।
हरित नगन करि जरा जुगल जहरी अस राजै।
तिन तर घुंघरू और अग्र बिछिया जु बिराजै।६२।
तिन पर नग जु अमोल-ललित चूनि गन लाए।
चरन चारु तल अरुन सहजहिं लगत सुहाए।६३।
अतुलित जुगल सरूप भौन अस उपमा जिनकी।
जतिक उपमा लिप्त सकल करि भासन तिनकी।६४।
इहि विधि राजत राम अवधपुर अवध बिहारी।
दंपति चरण उदार सुजस सकल सुखकारी।६५।
दक्षिण भुज रिपु दलन गोर तन तज उदारा।
उभय हेत अनुसार धर व्रत अखंडित धारा।६६।
सेम लिए कर छत्र भरत लिए चंवर डुलावै।
अनिल सुवन कर जोरि सुप्रभु की कीरति गावै।६७।
अज अपने निज ठौर नित्य परि करि बन भारी।
सुरनि सक्ति विमलादि रहत नित अग्याकारी।६८।
जो जो जेहि अधिकार सचिव सखा मन वास।
नाना धर गुरुतान गान करि प्रभुहिं उपास।६९।
यहि ध्यान उर धर स्वय तन सरल करेवा।
भव चतुरानन आदि चपू वन्दित सब देवा।७०।
यह अद्भुत वर ध्यान रसिक जन निज प्रति ध्यावै।
रसिक बिना यह ध्यान और न सुपन नहिं पावै।७१।
परम अनूप रसधार रसिक जो सदि रस पागे।
तासौं निरस रस मान याग तप छाडि त्यागे।७२।
परम सार यह चरित सुखद धनजन उदारा।
ध्यान धरण कल्यान जनको आनन्दारा।७ ।
जिहिं मुनि जिन कही कुल्लिसा पद मन्दिर मन।
यह उज्ज्वल गनि मान परिरिभे परम रसिक जन।
जगत ईश का हर वर्षा बहु बदरा अमिट मनि।
यहां अन्य पद्मा भानु क निकट बर दुति।७४।

कहा चात्रिक की शक्ति अखिल जल चोंच समाव।
कछुक बुंद मुख परे ताहिते आनंद पाव।७६।
सुनि आगम विधि जथ कछक जो मनहिं सुहायौ।
यह मंगलवर ध्यान जयामति वरनि सुनायौ।७७।
श्री गुरु संत अनग्रहते अस गो पुरवासी।
रसिक जनन हित करन रहसि यह ताहि प्रकासी।७८।
ध्यान मंजरी नाम सुनत मन मोद बढ़ाव।
श्री रघुवर को दास मन्ति जन अग्र सुगाव।७९।

इति श्री अग्रदास कृत ध्यान मंजरी सम्पूर्णम। शुभमस्त। संवत १९१४। वैसाष शुक्ल।[1]

१—हस्तलेख संख्या ५३२ नागरी प्रचारिणी सभा संग्रह। प्रति के अंतिम पत्र पर लिखा है—पं महेन्द्र त्रिपाठी समता नगराम लखनऊ।

जैमिनीय अश्वमेध भाषा पुरुषोत्तमदास

ऋषियों की परम्परा से महर्षि जैमिनि का नाम प्राचीन काल से आदर के साथ लिया जाता रहा है। महर्षि व्यास के पाँच प्रधान शिष्यों में उनकी गणना की गयी है महाभारत के शान्ति पर्व (३।२७।२७) में इसका उल्लेख है। श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण में उन्हें सामवेद का आचार्य बताया गया है। महर्षि जैमिनि मीमांसा दर्शन के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। उनके नाम से ज्योतिष ग्रंथ जैमिनीय सूत्रम भी मिलता है।

परम्परा में यह प्रसिद्ध है कि महर्षि जैमिनी ने विशाल ग्रंथ जैमिनीय महाभारत की रचना की थी। कालान्तर में यह ग्रंथ अप्राप्य हो गया। अब इसका केवल एक पर्व जैमिनीयाश्वमेध पर्व उपलब्ध है। इस पर्व में महाभारत युद्ध के उपरांत युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है। व्यास प्रणीत प्रचलित महाभारत के अश्वमेधिक पर्व से आकार में जैमिनीयाश्वमेध पर्व बड़ा है तथा कुछ अंशों में भिन्न भी है। इसमें कुल ६८ अध्याय हैं। अर्जुन तथा अर्जुनपुत्र बभ्रुवाहन में यज्ञिय अश्व के लिये युद्ध के प्रसंग में रामाश्वमेध कथा का कुशलव वीराख्यान के रूप में जैमिनीयाश्वमेध पर्व में २५वें अध्याय से ३६ वें अध्याय तक वर्णन किया गया है।

जैमिनीयाश्वमेध पर्व भारतीय समाज में समादृत रहा है। देश की विभिन्न भाषाओं में इसके अनेक रूपान्तर मिलते हैं। दक्षिण में कन्नड़ में लक्ष्मीश द्वारा १६ वीं शताब्दी में रचित जैमिनि भारत बहुत प्रसिद्ध हुआ। जैमिनीयाश्वमेध पर्व के हिन्दी रूपान्तर की एक विशद परम्परा मिलती है। इस ग्रन्थ के हिन्दी रूपान्तर यथाधिक उपलब्ध हुए हैं। यह इसकी लोकप्रियता का द्योतक है। हिन्दी में उपलब्ध प्राचीनतम रूपान्तर जैमिनीय अश्वमेध भाषा है। पुरुषोत्तमदास की यह कृति अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसकी रचना रामचरितमानस के पूर्व विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में हुई थी।

पुरुषोत्तमदास का उल्लेख हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में नहीं हुआ है। ये अयोध्या से लगभग तीस मील दूर गोमती तट पर स्थित दादुर (दन्री)

ग्राम के निवासी थे। इनके पितामह का नाम रामविभूति तथा पिता का नाम क्षमानन्द था। इन्होंने काशी में अपने गुरु से वेद पुराण व्याकरण आदि का अध्ययन किया था। पुरुषोत्तमदास विरक्त थे। गुरु की कृपा से इनके हृदय में राम भक्ति का स्फुरण हुआ था। कवि ने ग्रन्थ की रचना तिथि संवत् १५९८ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा चन्द्रवार दिया है। उपलब्ध प्रति का लिपिकाल संवत् १८९९ है। इस ग्रन्थ में ६९ अध्याय हैं। सत्ताइसवें अध्याय से अड़तीसवें अध्याय तक के बारह अध्यायों में कुशलवोपाख्यान का वर्णन किया गया है। कुशलवोपाख्यान में धात्री वृत्तान्त लोकापवाद के भय से सीता का निर्वासन वाल्मीकि आश्रम में लव कुश का जन्म ब्रह्महत्या दोष निवारण के हेतु सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा के साथ राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान यज्ञिय अश्व के लिए कुश लव का गतबन्धन लक्ष्मण भरत तथा राम के साथ युद्ध वाल्मीकि द्वारा सेना को जीवित करना तथा कुश लव के राम का सन्तान होने की सूचना देना सीता के साथ राम का अयोध्या लौटना तथा अश्वमेध यज्ञ पूर्ण करना वर्णित है। कुशलवोपाख्यान की कथा सुखान्त है। अड़तीसवें अध्याय के कुछ अंश नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

वाल्मीकिरुवाच—

सुनहु राम एक बोल हमारा। कुश लव दोनों पुत्र तुम्हारा॥
तुमहिं रामरचना रनवाई। पुत्रन के तुम जीति बड़ाई॥
सीता कहँ दीनेउ बनजारा। तुम जो कहहु नहीं प्रतिपारा॥
हमरे तपन तुमहिं साखा। तुमही हमरे सीता रामा॥
रामप्रसाद भयउ दोउ बीरा। तुम्हरा कृपा अभय नरागा॥
सीता भवन रामरत जागा। कहन लगे पुरुषोत्तम रामा॥
वाल्मीकि ऋषि सीता आनी। दिखिनि चरण कमल मनवानी॥
अनयामा पश्चात जना। राम कहत माता समाना॥
वाल्मीकि ऋषि सब परिवारा। कुश लव राम चरण पुनि लागा॥
रामहिं अस कहेउ मन लाई। राम सुतन कहँ लाल बड़ाई॥
कुश लव राम अकसा लाए। रामचन्द्र करुणा अति पाए॥
गज रथ साजि लिया मँगाई। चढ़े मग कुश लव दोउ भाई॥
वाल्मीकि ऋषिहिं सुत संगा। लिहि कन्या कर सुरभंगा॥
रामचन्द्र सिर छत्र बिराजा। भरत शत्रुघ्न लछिमन साजा॥
तानि भुवन बाजन बजवाए। इहि विधि राम अयोध्या आए॥

अब कौसलपुर सब समाज। गात नाच व माग गाव॥
जनता के बाच दुख फन्ना। बहुविधि नियम सब बन्ना॥
सदा स्वर्ग दुख स गाऊ। प्रभुवर राज अपारा नाऊ॥
सुनु अब तुम जनमेजय राजा। कृपा स्व राम युद्ध कर साजा॥
यहि विधि लपन कर समथाई। सुनत दुर्गति सब जाहि नशाई॥
लव कुश गावहिं सदा समुझा। ग्रन्थ बभ्रुवाहन अस पूना॥
कुश लव रामचन्द्र संग्रामा। सुनतहिं नर जिय सो विश्रामा॥
निशिदिन कराय कर हुलासा। शशि अवध रवि करहि प्रकाशा॥
राम सुयश जगन्नि गावा। निशि दिन बाजन बाज बजावा॥
समानहित स्वर गान सावा। मतिराम पुराणम पाना॥
यहि विधि कै सुन नदवारा। सुनत कथा निराश लगाया।
रामचरित्र सुनउ मन लाई। नहिं पाप तन हरब जाई॥
कल्याणमय प्रभुवर नामा। सकल सिद्धि महा विश्रामा॥
य गुन मन प्रभुवर माई। मनभावित फल तिनहूँ हर्षै॥
राम महाप्रभु अगम अपारा। जग नचिव कर ज्ञान पसारा॥
डार व वनिता व माई। नारद व निज पुत्र गाई॥
मनुज तनु धरि अस कउ काना। नचितनु सनन सुर गाना॥
कम अराग कहूँ धरिय रगा। का किार प उपनि तरगा॥
कर नरिय कुसुमाकर कमा। कर्मविधि गरिय नम्मन चना॥
ब्रह्मादिक जहँ रहैं मुनाइ। मति हमारि कत नहिं जाइ॥
सकलवेद प्रभ रहै न पारा। मनुज तनु धरि मय निस्तारा॥
उत्पति प्रलय निमिष म करई। वर्णि न जाइ लागा जा करइ॥
जमिनि मुनगन कै पुराना। कछु पुराणिन शह बखाना॥
इच्छा जबन कर जा पाव। कथा सुनहिं राम चित लाव॥
काटि तप फल हाय पुरा। गान यानि तप कर अनन्ता॥
जिन लाय ज गुनहिं पुराना। पावा सुख बहुत निदाना॥
पुत्र कलत्र गाय धन हाई। गुन न राम कथा नर गाई॥
सुनहिं कथा हर ननुरागा। बढ़ तार न गाम विरागा॥
राम कुमार मन्ना कर भाव। कौ गुन गावहि चित लाव॥
सब धाता उत्तम एता। जाया राम नाम सो रता॥
गुनागार हरा हरा मुरारा। तुम्हरा कृपा कथा अनुसारा॥
मैं निर्गुण पाऊं कृपा दाता। जियत जनि विसरो सन्ताना॥

दोहा—

पुरुषोत्तम जन चातक स्वाति सलिल घनश्याम ॥
जह तह कितह राखहू जनि बिसरो भगवान ॥।३०॥

इति श्री महाभारते अश्वमेधपर्वणि रवकुशोपाख्यान नाम अष्टत्रिंशतमोऽध्याय ॥३८॥

परिशिष्ट—ख

सहायक-ग्रन्थ

अगस्त्य संहिता—सं० पं० रामनारायण दास, अयोध्या १८९८ वि०

अध्यात्म रामायण—गीता प्रेस, गोरखपुर संवत २०१३

अपभ्रंश साहित्य—डा० हरिवंश कोछड़ हिन्दी अनुसंधान परिषद् दिल्ली विश्व विद्यालय २०१२ वि०

अभिज्ञान शाकुन्तल—कालिदास सं० श्री एम० आर० काले बम्बई १९२४ ई०

अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० दीनदयालु गुप्त हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग सं० २००४

अष्टयाम—स्वामी अग्रदास सं० रामवल्लभाशरण जानकीघाट अयोध्या १९८० विक्रमी

अष्टयाम—रामचरणदास छोटेलाल लक्ष्मीचन्द्र अयोध्या १९५७

आदिग्रन्थ (गुरुग्रन्थ साहब)—तरणतारण संस्करण, भाई मोहनसिंह

आनन्द मानस्य—रघुवर प्रसाद गमानन्दीय वैष्णव महामण्डल अयोध्या १९८६ विक्रमी

आमेर भंडार की हस्तलिखित ग्रंथों की सूची—डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल जयपुर १९५ ई०

आल्वार चरितामृत—लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १९८९ विक्रमी

उत्तर रामचरित—भवभूति सं० श्री एम० आर० काले बम्बई १९३४ ई०

उत्तरी भारत की संत परम्परा—पं० परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार प्रयाग संवत् २००८

कबीर—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी बम्बई १९५०

कल्याण—गीताप्रेस तीर्थांक भक्त चरितांक संतांक हिन्दू संस्कृति अंक

गीत गोविन्द—श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १९६१ विक्रमी

घनआनंद और उनका काव्य—पं० विपिन बिहारी त्रिवेदी प्रयाग १९

जन गुजर कवि (गुजराती)—सं० मोहनलाल दलीचन्द देसाई, बंबई सं० १९

जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी बंबई १९४२ ई०

तुलसीदास—डा० माताप्रसाद गुप्त हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय १९५३ ई०

तुलसी दर्शन—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र साहित्य सम्मेलन प्रयाग १९३८

तुलसी ग्रंथावली—नागरी प्रचारिणी सभा १९८० विक्रमी

दशावतार चरितम्—क्षेमेन्द्र निर्णय सागर प्रेस १९३० ई०

पउम चरिउ—स्वयंभू स० हरिवल्लभ भायाणी भारतीय विद्या भवन बम्बई संवत २००९

पउम चरिउ—स्वयंभू भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण काशी १०४४

पउम चरियं—विमल सूरि भावनगर १९१४ ई०

पद्म पुराण—रविषेण माणिक चन्द्र जैन ग्रंथमाला बंबई सं १९८५

प्रसंग पारिजात—चेतनदास सम्पादक—भगवद्दास अयोध्या १९५१ ई० और रामरथा त्रिपाठी अयोध्या सं० २००५ वि

प्राकृत पैंगलम्—सं० भोलाशंकर व्यास प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी वाराणसी १९५९ ई

प्राकृत साहित्य का इतिहास—डा० जगदीश चन्द्र जैन चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी १९६१ ई०

प्राचीन गुजर काव्य—गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज सं० १३ १९२० ई०

पृथ्वीराज रासो—नागरी प्रचारिणी सभा सं० मोहनलाल विष्णुलाल पाड्या काशी १९१२ ई

पृथ्वीराज रासो—एक समालोचना—डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी [illegible] प्रकाशन प्रथम संस्करण लखनऊ १९६४ ई

पुरातन प्रबंध संग्रह—सम्पादक मुनि जिनविजय सिंघी जैन ग्रंथमाला बंबई

भक्तमाल—रूपकला नवलकिशोर प्रेस लखनऊ १९२१

भक्तमाल राम रसिकावली—रघुराज सिंह वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १०७१ विक्रमी

भविष्य पुराण—निर्णय सागर प्रेस

भागवत—गीताप्रेस गोरखपुर संवत [illegible]

भागवत सम्प्रदाय—डा० बलदेव उपाध्याय नागरी प्रचारिणी सभा [illegible]१० विक्रमी

भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी—डा० सुनीतिकुमार चटर्जी (हिन्दी संस्करण) दिल्ली १९५४

मिश्रबन्धु विनोद—मिश्रबन्धु गंगा पुस्तक माला लखनऊ १००१ वि०

मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ—प्रधान सम्पादक डा० वासुदेवशरण अग्रवाल कलकत्ता [illegible]

मथिला साहित्य का इतिहास २ भाग—डा० जयकान्त मिश्र
युगल सत—श्री भट्टदेव स० श्री ब्रजविहारीशरण वृन्दावन, २००९ वि०
रदयू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन—डा० राजाराम जन (शोध प्रबन्ध)
प्राकृत रिसच इन्स्टिट्यूट मुजफ्फरपुर (बिहार) १९६४
रघुवंश—कालिदास निर्णय सागर प्रेस बम्बई
रहस्यत्रय—अग्रदास स० रामनाभादास अयोध्या १९९१ वि०
राग कल्पद्रुम—सकलनकर्ता कृष्णानन्द राग सागर बंगीय साहित्य परिषद
कलकत्ता १९१४ १९१६ ई०
राग रत्नाकर—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
राजस्थान के जन-शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ प्रशस्ति—डा० कासलीवाल जयपुर
१९५४ ई०
राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया प्रयाग २००६ विक्रमी
रामनाम मुक्तावलि—हरिदास राम जन्मभूमि जानकीघाट अयोध्या
रामार्चन पद्धति—स्वामी रामानन्द स० रामकृष्णदास नयाघाट सरयू भवन
अयोध्या १९८८ विक्रमी
रामार्चन पद्धति—स्वामी रामानन्द स० राम नारायण दास अयोध्या
१९१८ ई०
रामकथा (उत्पत्ति और विकास)—डा० कामिल बुल्के हिन्दी परिषद प्रयाग
१९६२ ई०
रामगीत गोविन्द—जयदेव श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १ ६६ विक्रमी
रामचरितमानस—स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र काशिराज संस्करण १९६२ ई०
रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ—स० डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल नागरी प्रचारिणी
सभा काशी २ १२ विक्रमी
रामभक्ति शाखा—डा० रामनिरंजन पाण्डेय हैदराबाद १९६० ई०
रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—डा० भगवतीप्रसाद सिंह बलरामपुर स० २०१४
रामभक्ति म मधुर उपासना—श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र पटना १९५३ ई०
रामायणम्—पुण्डरीक स० पी० एस० वद माणिकचन्द्र जन ग्रंथमाला बम्बई
१९६ ई०
रामाष्टयाम—नाभादास जनकराजकिशोरीशरण अयोध्या १ ९ ई०
रावणवहो-सेतुबन्ध—कलकत्ता १८८० ई०
वर्णरत्नाकर—स० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या और बबुआ मिश्र रायल एशियाटिक
सोसायटी बंगाल कलकत्ता १९४० ई०

वाल्मीकीय रामायणम—स० पाण्डेय रामतेज शास्त्री पण्डित पुस्तकालय काशी १९५१ ई०
वैष्णवधर्म—प० परशुराम चतुर्वेदी प्रयाग १९५३ ई
वैष्णवधर्मना संक्षिप्त इतिहास—दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री बम्बई १९३९ ई०
वैष्णवधर्म रत्नाकर—गोपालदास वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
वैष्णव मताब्जभास्कर—स्वामी रामानन्द स०रामटहल दास नयाघाट सरयू भावन अयोध्या
वैष्णव मताब्जभास्कर—स्वामी रामानन्द स० भगवदाचार्य अहमदाबाद १९८६ वि०
शिवसिंह सरोज—शिवसिंह सेंगर स० रूपनारायण पाण्डे लखनऊ १९२६ ई०
सीताराम चौपाई—स० अगरचन्द नाहटा बीकानेर स० २ १९
सूरसारावली एक अप्रमाणिक रचना—डा प्रेमनारायण टण्डन लखनऊ १९६१ ई०
सूररामचरितावली—गीताप्रेस गोरखपुर संवत २०१४
सूरसागर—स नन्द दुलारे वाजपेयी नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण स० २०१५
सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—डा शिव प्रसाद सिंह हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी १९५८ ई
सूरदास—डा० ब्रजेश्वर वर्मा हिन्दी परिषद प्रयाग १९५० ई
संस्कृत साहित्य का इतिहास—स० बल्देव उपाध्याय काशी २०१२ विक्रमी
हनुमन्नाटक—रामानन्द मिश्र लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई स० २०१५ वि०
हरिरस—ईश्वरदास राजस्थान रिसर्च सोसायटी कलकत्ता स० १९९५ वि०
हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज का विवरण—नागरी प्रचारिणी सभा काशी १९००–१९४६ ई
हिन्दी के मध्यकालीन खण्ड काव्य—डा० सियाराम तिवारी हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली १९६४
हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा काशी स २० ७ वि०
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा संशोधित संस्करण स० १९४ ई
हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा हजारी प्रसाद द्विवेदी बम्बई १९४० ई०

हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी पटना १९५२ ई०
हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डा० बड़थ्वाल अनु० परशुराम चतुर्वेदी अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, २००७ वि०
हिन्दी साहित्य (द्वितीय खंड)—भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग १९५९ ई०
हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—नागरी प्रचारिणी सभा काशी
हिन्दी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन प्रयाग १९४५ ई०
हिन्दी साहित्य कोश—ज्ञानमण्डल काशी
हिन्दुई साहित्य का इतिहास—(तासी) हिन्दी संस्करण डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
हिन्दुत्व—रामदास गौड़ काशी सं० १९९५

हस्त लिखित ग्रंथों की सूची

अगद पद—[illegible] रचनाकाल संवत् १ ५८ प० आनन्द त्रिपाठी ग्राम दरवापुर डा० मरवारी जिला [illegible] के पास सुरक्षित।
कुंडलिया—स्वामी अग्रदास (सूरदास व मदनमोहन) नागरी प्रचारिणी सभा संग्रह में।
ध्यान [illegible]—स्वामी रामानन्द रचनाकाल [illegible] [illegible] विक्रमी नागरी प्रचारिणी सभा संग्रह में।
ध्यान मंजरी—स्वामी अग्रदास नागरी प्रचारिणी सभा संग्रह में।
पदावली—स्वामी अग्रदास प्रति डा० भगवती प्रसाद सिंह गोरखपुर विश्वविद्यालय के पास सुरक्षित।
पद्म चरित—विनय समुद्र रचनाकाल संवत् १६०४ गौड़ी जी भण्डार उदयपुर में।
पद्म पुराण—रइधू रचनाकाल संवत् १४०६ आमेर शास्त्रभण्डार जयपुर में सुरक्षित।
परशुराम सागर—परशुराम देव १६वीं शती प्रति नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित।
भक्त विरुदावली—[illegible]रदास रचनाकाल १ १८ वि० नागरी प्रचारिणी सभा संग्रह में।
भाषा वाल्मीकि रामायण—विष्णुदास रचनाकाल सं० १४९२ म्यूनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद में सुरक्षित।
महाभारत कथा—विष्णुदास रचनाकाल सं० १४९२ प्रति इण्डिया राज पुस्तकालय में।
रामायण—[illegible] रचनाकाल [illegible] १८०८ प्रति श्री मन्दिर [illegible]पुर में।

राममाला रास—गणकीर्ति प्रति नेनवा जैन भण्डार जयपुर में सुरक्षित।

रावण मन्दोदरी संवाद—मुनि लावण्य रचनाकाल १५०० वि० ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन बम्बई में सुरक्षित।

रुक्मिणी मंगल—विष्णुदास रचनाकाल संवत १४९२ नागरी प्रचारिणी सभा संग्रह में सुरक्षित।

सरस्वती कथा—ईश्वरदास रचनाकाल संवत १५५८ नागरी प्रचारिणी सभा संग्रह में।

सूरसागर—नागरी प्रचारिणी सभा संग्रह में संग्रह ग्रन्थ।

सीता चउपई—समयध्वज रचनाकाल संवत १६११ हंसविजय लाइब्रेरी बड़ौदा में सुरक्षित।

सीता प्रबंध—रचनाकाल संवत १६२८ प्रति नाहटा जी के संग्रह में कलकत्ता।

सीता चरित्र—हेमरत्न सूरि महावीर जैन विद्यालय तथा अनन्त भण्डार बम्बई एवं बड़ौदा में सुरक्षित।

सीता चरित भाषा—रचनाकाल १६वी शताब्दी प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में।

सेवादास की बानी—नागरी प्रचारिणी सभा संग्रह में। संग्रह ग्रन्थ।

हनुमान चौपाई—ब्रह्मराय मल्ल रचनाकाल संवत १६१६ जैन पंचायती मन्दिर दिल्ली में सुरक्षित।

हनुमान चरित—सुन्दरदास रचनाकाल संवत १६१६ जैन पंचायती मन्दिर दिल्ली में सुरक्षित।

हनुमंत कथा—रायमल्ल रचनाकाल संवत १६१६ जैन शास्त्र भण्डार जयपुर में प्रति सुरक्षित।

विदेशी भाषाओं के ग्रन्थ

अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट—राय चौधरी कलकत्ता १ २

असमीज लिटरेचर—डा० विरंचिकुमार बरुआ ... १ ४१ [illegible] पाल मिल्स वसु [illegible] आफ अर्ली असमीज लिटरेचर गुवाहाटी विश्वविद्यालय १ ९

[illegible] रिलीजस [illegible] आफ बंगाल—डा० एस० दासगुप्त कलकत्ता विश्वविद्यालय १ ६० ई०

इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स—सम्पादक हेस्टिंग्ज एडिनबरा १९२१

उबर डास रामायण—ए० वेबर बर्लिन १८७०

ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर भाग दोनों—एम० विंटरनित्स कलकत्ता १९३३ ई०

ए स्केच आफ हिन्दी लिटरेचर—ए० ग्रीब्ज १९१८

ए हिस्ट्री आफ हिंदी लिटरेचर—एफ० ई० के० हेरिटेज आफ इंडिया सीरीज १९२०

एन आउटलाइन आफ रिलीजस लिटरेचर आफ इंडिया—जे० एन० फर्कुहर १९२०

एसेज आन दि रिलीजस सेक्ट्स आफ हिंदूज—एच० एच० विल्सन

भाण्डारकर कमेमोरेशन वाल्यूम—पूना १९४१

गुजरात एंड इट्स लिटरेचर—क० मा० मुंशी भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९५४ ई०

दि जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी जुलाई १९०७—जी० ग्रियर्सन

दि सिख रिलीजन—मेकालिफ आक्सफोर्ड १९०९ ई०

पुराणिक रेकार्ड्स आन हिंदू राइट्स एंड कस्टम्स—आर० सी० हाजरा ढाका १९४०

भक्तिकल्ट इन ऐंशेंट इंडिया—बी० के० गोस्वामी कलकत्ता १९२२

ब्राह्मनिज्म एंड हिंदूइज्म—मानियर विलियम्स १८९१

माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान—सर जार्ज ग्रियर्सन रायल एशियाटिक सोसायटी १८८९ ई०

वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स आफ इंडिया—आर० जी० भण्डारकर पूना १९२८

संस्कृत लिटरेचर—ए० बी० कीथ आक्सफोर्ड १९२८

रामसीता रास—गुणकीर्ति प्रति ननवा जन भण्डार जयपुर म सुरक्षित।

रावण मन्दोदरी सवाद—मुनि लावण्य रचनाकाल १५ ० वि ऐलकपन्नालाल दिगम्बर जन सरस्वती भवन बम्बई म सुरक्षित।

रुक्मिणी मगल—विष्णुदास रचनाकाल सवत १४९२ नागरी प्रचारिणी सभा सग्रह म सुरक्षित।

सरस्वती कथा—ईश्वरदास रचनाकाल सवत १५५८ नागरी प्रचारिणी सभा सग्रह म।

शब्दसागर—नागरी प्रचारिणी सभा सग्रह म सग्रह ग्रन्थ।

सीता चउपई—समयध्वज रचनाकाल सवत १६११ हसविजय लाइब्रेरी बडौदा म सुरक्षित।

सीता प्रबध—रचनाकाल सवत १६२८ प्रति नाहर जी के सग्रह म कलकत्ता।

सीता चरित—हेमरत्न सूरि महावीर जन विद्यालय तथा अनन्त भण्डार बम्बई एव बडौदा मे सुरक्षित।

सीता चरित भाषा—रचनाकाल १६वी शताब्दी प्रति श्री अगरचन्द नाहटा क सग्रह म।

सवादास की वानी—नागरी प्रचारिणी सभा सग्रह म। सग्रह ग्रन्थ।

हनुमान चौपाई—ब्रह्मराय मल्ल रचनाकाल सवत १६१६ जन पचायती मन्दिर दिल्ली म सुरक्षित।

हनुमान चरित—सुन्दरदास रचनाकाल सवत १६१६ जन पचायती मन्दिर दिल्ली म सुरक्षित।

हनुमत कथा—रायमल्ल रचनाकाल सवत १६१६ जन शास्त्र भण्डार जयपुर म प्रति सुरक्षित।

विदेशी भाषाओं के ग्रन्थ

अर्ली हिस्ट्री आफ वष्णव सक्ट—राय चौधरी कलकत्ता १ २

असमीज लिटरेचर—डा० बिरचिकुमार बरुआ बम्बई १९४१ तथा स्टडीज इन दि अर्ली असमीज लिटरेचर गवाहाटी विश्वविद्यालय १ ५०

आस्पेक्ट्स रिलीजस सक्ट्स आफ बगाल—डा० एस दासगुप्त कलकत्ता विश्वविद्यालय १९४० ई०

साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स—सम्पादक हेस्टिंग्स एडिनबरा १९२१

उत्तर राम रामायण—ए० वेबर बर्लिन, १८७०

ए हिस्ट्री आफ इन्डियन लिटरेचर भाग दूसरा—एम० विन्टरनित्स, कलकत्ता, १९३३ ई०

ए स्केच आफ हिन्दी लिटरेचर—ए० ग्राज १९१८

ए हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर—एफ० ई० के० हेरिटेज आफ इन्डिया सीरीज १९२०

एन आउट लाइन आफ रिलीजस लिटरेचर आफ इंडिया—जे० एन० फर्कुहर, १९२०

एसेज आन दि रिलीजस सेक्ट्स आफ हिन्दूज—एच० एच० विल्सन

भाण्डारकर कमेमोरेशन वाल्यूम—पूना, १९४१

गुजरात एंड इट्स लिटरेचर—के० मा मुन्शी भारतीय विद्या भवन बम्बई, १९५४ ई०

दि जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी जुलाई १९०७—ग्रा० ग्रियर्सन

दि सिख रिलीजन—मेकालिफ आक्सफोर्ड १९०९ ई०

पुराणिक रेकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एंड कस्टम्स—आर० सी० हाजरा ढाका, १९४०

भक्ति कल्ट इन एन्शेंट इन्डिया—बी० के० गोस्वामी कलकत्ता १९२२

वैष्णविज्म एंड हिन्दूइज्म—मानियर विलियम्स १८९१

माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान—सर जार्ज ग्रियर्सन रायल एशियाटिक सोसायटी १८८९ ई०

वैष्णविज्म शैविज्म एंड माइनर रिलीजस सिस्टम्स आफ इन्डिया—आर० जी० भण्डारकर पूना १९२८

संस्कृत लिटरेचर—ए० बी० कीथ आक्सफोर्ड १९२८

रामगाना राग—गुणशानि प्रति ननवा जन भण्डार जयपुर म सुरक्षित।

रावण मन्दोदरी सवाद—मुनि लावण्य रचनाकाल १५ वि० एन्डपन्नालाल दिगम्बर जन सरस्वती भवन बम्बई म सुरक्षित।

रुक्मिणी मगल—विष्णुदास रचनाकाल सवत १४९२ नागरी प्रचारिणी सभा सग्रह म सुरक्षित।

सरस्वती कथा—ईश्वरदास रचनाकाल सवत १५५८ नागरी प्रचारिणी सभा सग्रह म।

सत्सागर—नागरी प्रचारिणी सभा सग्रह म सग्रह ग्रन्थ।

सीता चउपई—समयध्वज रचनाकाल सवत १६११ हमविजय लाइब्ररी बडौदा म सुरक्षित।

सीता प्रबन्ध—रचनाकाल सवत १६२८ प्रति नाहर जी क सग्रह म कलकत्ता।

सीता चरित्र—हेमरत्न सूरि महावीर जन विद्यालय तथा अनन्त भण्डार बम्बई एव बडौदा म सुरक्षित।

सीता चरित भाषा—रचनाकाल १६वी शताब्दी प्रति श्री अगरचन्द नाहटा क सग्रह म।

सवादास की बानी—नागरी प्रचारिणी सभा सग्रह म। सग्रह ग्रन्थ।

हनुमान चौपाई—ब्रह्मराय मल्ल रचनाकाल सवत १६१६ जन पचायती मन्दिर दिल्ली म सुरक्षित।

हनमान चरित—सुन्दरदास रचनाकाल सवत १६१६ जन पचायती मन्दिर दिल्ली म सुरक्षित।

हनमन कथा—रायमल रचनाकाल सवत १६१६ जन शास्त्र भण्डार जयपुर म प्रति सुरक्षित।

विदेशी भाषाओ के ग्रन्थ

अर्ली हिस्ट्री आफ वष्णव सक्ट—राय चौधरी कलकत्ता १९२

असमाज लिटरेचर—डा० विरचिकुमार बरुआ बम्बई १९४१ शकरदेव प्राण टिज वक्स आम्पक्ट्स आफ अर्ली असमाज लिटरेचर गुवाहाटी विश्वविद्यालय १९५९

आस्पक्ट्स रिलीजन सक्स आफ बगाल—डा० एस० दासगुप्त कलकत्ता विश्वविद्यालय १९४ ई०

इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स—सम्पादक हेस्टिंग्ज एडिनबरा १०२१

न्यू राम रामायण—ए० वजर बर्लिन १८७०

ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर भाग २—एम० विन्टरनिट्ज कलकत्ता १०३३ ई०

ए स्केच आफ हिन्दी लिटरेचर—ए० ग्राज १९१८

ए हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर—एफ० ई० के० हेरिटेज आफ इण्डिया सीरीज १९२०

एन आउट लाइन आफ रिलीजस लिटरेचर आफ इंडिया—जे० एन० फर्कुहर, १०२०

एसेज आन दि रिलीजस सेक्ट्स आफ हिन्दूज—एच० एच० विल्सन

काणे कममोरेशन वाल्यूम—पूना १९४१

गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर—के० मा० मुंशी भारतीय विद्या भवन बम्बई, १९५४ ई०

दि जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी जुलाई १९०७—जी० ग्रियर्सन

दि सिख रिलीजन—मैकालिफ आक्सफर्ड १९०९ ई०

पुराणिक रेकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एंड कस्टम्स—आर० सी० हाजरा ढाका १९४०

भक्ति कल्ट इन एन्शेंट इंडिया—बी० के० गोस्वामी कलकत्ता १९२२

ब्राह्मणिज्म एण्ड हिन्दूइज्म—मोनियर विलियम्स १८९१

माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान—सर जार्ज ग्रियर्सन रायल एशियाटिक सोसायटी १८८० ई०

वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स आफ इण्डिया—आर० जी० भंडारकर पूना १०२८

रामायत लिटरेचर—डा० बी० माथुर अलीगढ़ १ २८